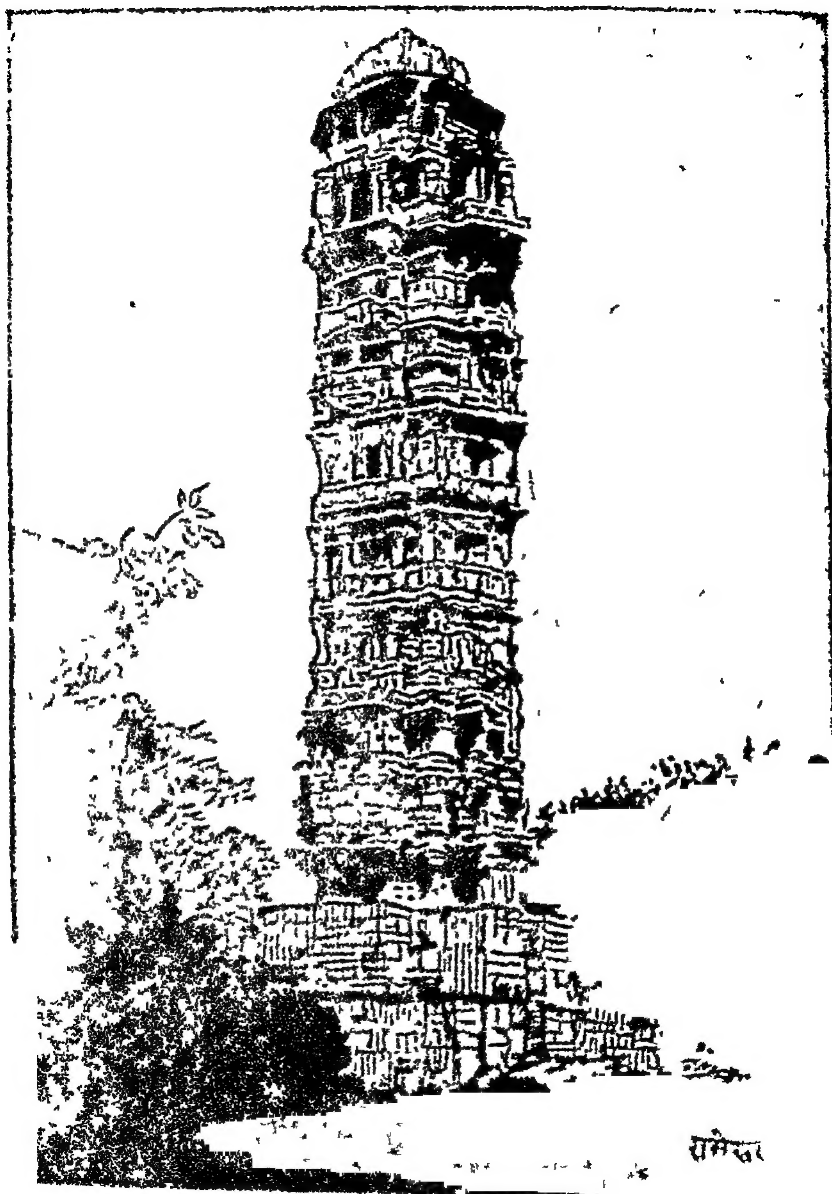


चित्तौर का कीर्ति-स्तम्भ

साहित्य-दिवाकर

चौथा भाग

[ऐंग्लो-वर्नाक्यूलर स्कूलों की ८ वीं कक्षा के निमित्त]

विश्वम्भरनाथ मेहरोत्रा, एम० ए०

भूतपूर्व रिसर्च-स्कालर, हिन्दी-विभाग, प्रयाग-विश्वविद्यालय

सारस्वत खत्री पाठशाला, इलाहाबाद

आगरा

लक्ष्मीनारायण अग्रवाल

बुकसेलर एण्ड पब्लिशर

मुद्रक—
राजनरायन अग्रवाल, बी० ए०, मौडर्न प्रेस, नमकमण्डी, आगरा।

प्रस्तावना

इन पाठ्य-पुस्तकों में शिक्षा-विभाग द्वारा निर्धारित पाठ्य-क्रम तथा उसके उद्देश्य को ध्यान में रख कर पाठों का सङ्कलन किया गया है।

१—पाठ्य-क्रम में दिये हुए प्राय: समस्त विषयों पर चुनी हुई गद्य और पद्य रचनाएँ देने का उद्योग किया गया है।

२—पाठों के चुनाव में विद्यार्थियों की आयु और उनके शब्द-ज्ञान का विशेष ध्यान रक्खा गया है।

३—पाठों के चुनाव में यह भी ध्यान रक्खा गया है कि हिन्दी के समस्त प्रतिष्ठित लेखकों की रचनाओं का समावेश हो जाय, जिससे बालकों के सामने शैली की दृष्टि से आदर्श गद्य और पद्य उपस्थित हो सकें।

४—सातवीं और आठवी कक्षाओ की पुस्तकों में लेखकों तथा उनकी रचनाओं के परिचय बहुत ध्यान से लिखे गये हैं। उनकी सामग्री इस ढङ्ग से लिखी गई है कि समस्त आवश्यक बातों का समावेश हो जाय, साथ ही आगे जानने के लिए बालकों के हृदय में उत्सुकता उत्पन्न हो जाय।

५—इनमे लब्ध-प्रतिष्ठ हिन्दी लेखकों के चित्र भी दिए गए हैं। पाठों के विषयो से सम्बन्ध रखने वाले भी काफी चित्र दिए गये हैं। इनका चुनाव भी बालको के ज्ञान-वर्धन तथा आवश्यकताओं को ध्यान में रख कर किया गया है।

६—प्रत्येक पाठ के अभ्यास को अधिक से अधिक उपयोगी बनाने के लिए पूर्ण उद्योग किया गया है।

अभ्यास में नीचे लिखे ढङ्ग की सामग्री है :—

क—पाठ से सम्बन्ध रखने वाले कुछ ऐसे प्रश्न जो पाठ को हृदयङ्गम करने में सहायक हों।

ख—पाठ के विषय से सम्बन्ध रखने वाले कुछ ऐसे प्रश्न, जो बालकों के साधारण ज्ञान को बढ़ाने में सहायक हों।

ग—कुछ ऐसे प्रश्न दिए गए हैं, जो बालकों को स्वतन्त्रता-पूर्वक निर्दिष्ट विषय पर सोचने को उत्तेजित करें।

घ—भाषा पर अधिकार कराने के लिए मिलते-जुलते शब्दों की सूची, मुहावरे, शब्दों का वाक्यों में प्रयोग आदि अनेक प्रकार के प्रश्नों का समावेश किया गया है।

ङ—व्याकरण का ज्ञान पुष्ट करने के उद्देश्य से समास, पदव्याख्या, वाक्य-विग्रह आदि विषयों पर प्रश्नों के रूप में बहुत-सी सामग्री दी गई है।

च—पुस्तकों के आरम्भ में पाठ्य-क्रम में दिए हुए विषयों के अनुसार पाठों की सूची भी दे दी गई है। इससे शिक्षक पाठ्य-क्रम के उद्देश्य तथा पाठों के चुनाव के सिद्धान्त को समझ सकेंगे।

विश्वास है कि इन पाठ्य-पुस्तकों को विद्यार्थी तथा शिक्षक दोनों ही आकर्षक तथा उपयोगी पायेंगे।

———

CLASSIFIED LIST OF CONTENTS

PROSE

According to the Syllabus prescribed

6. Moral, reflective pieces :

आत्मबल ; आँसू ; सम्भाषण कुशलता ; शिष्टाचार का लक्षण और महत्त्व ; सदाचार।

Co-operative Societies :

देहाती पञ्चायतें।

POETRY

1. Imaginative—lyric and ballad :

रंग में भंग ; मीराबाई के पद ; सूरदास के पद ; ये गजरे तारोंवाले ; भारत नारद सम्मिलन।

2 Descriptive—natural scenes, phenomena, buildings etc. :

शरद ; काश्मीर सुषमा।

3. Narrative. :

सुदामा-चरित्र ; यशोदा का विलाप ; भरत-मिलाप ; बालिका का परिचय ; बालि-वध ; पवित्र तीर्थ ; चित्रकूट में श्रीराम।

4. Patriotic :

भारत-माता की स्तुति।

5. Didactic :

दीनदयालगिरि की अन्योक्तियाँ ; बिहारी के दोहे।

❋ विषय-सूची ❋

साहित्य-दिवाकर

चौथा भाग

१—अशिक्षित का हृदय

(लेखक—पं० विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक')

[कौशिकजी कानपुर के रहने वाले हैं। आप हिन्दी के सुप्रसिद्ध कहानी-लेखक हैं। आपकी कहानियाँ बडे आदर और प्रेम से पढ़ी जाती हैं। आपकी भाषा बड़ी ही सरल और मुहावरेदार होती है। आपकी शैली भी बहुत ही भावपूर्ण और हृदय को प्रभावित करने वाली है। आपकी कहानियाँ बहुधा मासिक-पत्रिकाओं मे निकला करती है। 'चित्रशाला' नामक पुस्तक में आपकी छोटी-छोटी कहानियों का बहुत ही अच्छा संग्रह प्रकाशित हुआ है।]

[१]

बूढ़ा मनोहरसिह विनीत भाव से बोला—"सरकार अभी तो मेरे पास रुपए हैं नहीं, होते तो दे देता, ऋण का पाप तो देने ही से कटेगा। फिर, आपके रुपए को कोई जोखिम नहीं। मेरा नीम का पेड़ गिरवीं धरा हुआ है। वह पेड़ कुछ न होगा,

नो पचीस-तीस रुपए का होगा। इतना पुराना पेड़ गाँव भर में दूसरा नहीं।"

ठाकुर शिवपालसिंह बोले—"डेढ़ साल का ब्याज मिला कर २५) होते हैं। यह रुपया अदा कर दो, नहीं तो हम तुम्हारा पेड़ कटवा लेंगे।"

मनोहरसिंह कुछ घबरा कर बोला—"अरे सरकार ऐसा अंधेर न कीजिएगा, पेड़ न कटवाइएगा। रुपया मैं देही दूंगा, यदि न भी दे सकूंगा तो पेड़ आपका हो जायगा। पर मेरे ऊपर इतनी दया कीजिएगा कि उसे कटवाइएगा नहीं।"

ठाकुर शिवपालसिंह मुसकरा कर बोले—"मनोहर, तुम, सठिया गए हो, तभी तो ऐसी ऊल-जलूल बातें करते हो। भला पेड़ कटाया न जायगा, तो हमारे रुपए कैसे निकलेंगे?"

मनोहरसिंह बोला—"अन्नदाता, आपके रुपए जहाँ तक होगा, मैं दे ही दूँगा।"

ठाकुर—"अच्छा अब ठीक ठीक बताओ कि रुपए कब तक दे दोगे?"

मनोहर—कुछ देर सोच कर बोला—"एक सप्ताह मे अवश्य दे दूंगा।"

ठाकुर—"अच्छा स्वीकार है। एक सप्ताह मे दे देना, नहीं तो फिर पेड़ हमारा हो जायगा। हमारी जो इच्छा होगी, वह करेंगे—चाहे कटावेंगे चाहे रक्खेंगे।"

मनोहर—"और चाहे जो कीजिएगा, उसे कटवाइएगा नहीं, इतनी आपसे प्रार्थना है।"

ठाकुर—"खैर, हमारा जो जी चाहेगा करेंगे, तुम्हे फिर कुछ कहने का अधिकार नहीं रहेगा।"

[२]

मनोहरसिंह की आयु ५५ वर्ष के लगभग है। अपनी जवानी उसने फ़ौज मे व्यतीत की थी। इस समय वह संसार में अकेला है। उसके परिवार में कोई नहीं। गाँव में दो एक दूर के रिश्तेदार रहते हैं, उन्हीं के यहाँ अपना भोजन बनवा लेता है। कहीं आता है, न जाता है। दिन-रात अपने टूटे-फूटे मकान में पड़ा ईश्वर-भजन किया करता है।

एक वर्ष पूर्व उसे कुछ खेती कराने की सनक सवार हुई थी। उसने ठाकुर शिवपालसिंह की कुछ भूमि लगान पर लेकर खेती कराई भी थी। पर उसके दुर्भाग्य से उस साल अनावृष्टि के कारण कुछ पैदावार न हुई। ठाकुर शिवपालसिंह का लगान न पहुँचा। मनोहरसिंह को जो कुछ पेंशन मिलती थी, वह उसके भोजन-वस्त्र भर को ही होती थी। अन्त मे जब ठाकुर साहब को लगान न मिला, तो उन्होंने उसका एक नीम का वृक्ष जो उसकी झोंपड़ी के द्वार पर लगा था, गिरवीं रख लिया। यह नीम का वृक्ष बहुत पुराना था और उसके पिता के हाथ का लगाया हुआ था।

मनोहरसिंह को एक सप्ताह का अवकाश दिया गया। उसने बहुत कुछ दौड़ धूप की, दो चार आदमियों से कर्ज़ माँगा, पर किसी ने उसे रुपए न दिए। लोगों ने सोचा वृद्ध आदमी है, न जाने कब ढुलक जाय। ऐसी दशा में रुपया किससे वसूल होगा? मनोहर चारों ओर से हताश हो कर बैठ रहा, और धड़कते हुए हृदय से सप्ताह व्यतीत होने की राह देखने लगा।

दोपहर का समय है। मनोहरसिंह एक चारपाई पर नीम के नीचे लेटा हुआ है। नीम की शीतल वायु के झोकों से उसे बड़ा सुख मिल रहा है। वह पड़ा-पड़ा सोच रहा है कि परसों तक यदि रुपए न पहुंचेंगे, तो ठाकुर साहब इस पेड़ को कटवा डालेंगे।

यह पेड़ मेरे पिता के हाथ का लगाया हुआ है। मुझे और मेरे परिवार को दतून और छाया देता रहा है। इसको ठाकुर साहब कटवा डालेंगे।

यह विचार मनोहरसिंह को ऐसा दुःखदाई प्रतीत हुआ कि वह चारपाई पर उठ कर बैठ गया और वृक्ष की ओर मुंह करके बोला "यदि संसार में किसी ने मेरा साथ दिया है तो तूने! अब भी मेरी आँखों के आगे वह दृश्य आ जाता है, जब मेरे पिता तुझे सींचा करते थे। तू उस समय बिलकुल बच्चा था। मैं तेरे लिए तालाब से पानी भर कर लाया करता था। पिता कहा करते थे—'बेटा मनोहर, यह मेरे हाथ की निशानी है। इससे जब-जब तुझे और तेरे बाल-बच्चों को सुख पहुँचेगा, तब-तब मेरी याद आवेगी।' पिता का देहांत हुए चालीस वर्ष व्यतीत हो गए। उनके कहने के अनुसार, तू सदैव उनकी कीर्ति का स्मरण कराता रहा, और जब तक रहेगा, उनकी याद दिलाता रहेगा। मुझे वह दिन अच्छी तरह याद है, जब मैं अपने मित्रों सहित तेरी डालियों पर चढ़ कर खेला करता था। इस समय संसार मे तू ही एक मेरा पुराना मित्र है। तुझे वह दुष्ट काटना चाहता है। हाँ, काटेगा क्यों नहीं। देखूं कैसे काटता है।"

उसी समय उधर से एक पन्द्रह-सोलह वर्ष का लड़का निकला। वृद्ध मनोहर को बड़बड़ाते देख उसने पूछा—"चाचा, किससे बातें करते हो? यहाँ तो कोई है भी नहीं।"

बूढ्ढे ने चौंक कर लड़के की ओर देखा, और कहा—"क्या कहूँ बेटा तेजा, अपने कर्म से बातें कर रहा हूँ। ठाकुर शिवपाल-सिंह के मुझ पर कुछ रुपए चाहिए। तुझे तो बेटा मालूम ही है पारसाल खेतों में एक दाना भी नहीं हुआ। होता, तो क्या मैं उनका लगान रख लेता? अब वह कहते हैं, लगान के रुपए दो,

नहीं पेड़ कटवा लेंगे। इस पेड़ को कठवा लेंगे, जो मेरे बाप के हाथ का लगाया हुआ है। यह बात तो देखो। समय का फेर है, जो आज ऐसी-ऐसी बातें सुननी पड़ती है। बेटा, मैंने सारी उमर फौज में बिताई है। बड़ी-बड़ी लड़ाइयाँ और मैदान देखे हैं। यह बेचारे हैं किस खेत की मूली ? आज़ मेरे शरीर मे बल होता तो मजाल थी कि मेरे पेड़ के लिए ऐसा कहते। मुंह नोच लेता। मैंने कभी नाक पर मक्खी नहीं बैठने दी है। बड़े-बड़े साहब बहादुरों से लड़ पड़ता था। यह बेचारे हैं क्या ? बड़े ठाकुर की दुम बने घूमते हैं। मैं सच कहता हूँ कि अभी इस गाँव के डाँड़े पर गोली चलने लगे तो ठाकुर साहब का कहीं पता न लगे। मैंने तो तोप के मुंह पर डट कर बंदूकें चलाई हैं। पर बेटा, समय सब कुछ करा लेता है। जिन्होंने कभी तोप की सूरत भी नहीं देखी वह वीर और ठाकुर बने घूमते हैं। हमें आँखें दिखाते हैं कि रुपए दो, नहीं पेड़ कटवा लेंगे। देखें कैसे पेड़ कटवाते है। लाख बुड्ढा हूँ पर अब भी चार छ: के लिए बहुत हूँ। जब तलवार लेकर डट जाऊँगा, तो भागते ही दिखलाई पड़ेंगे। और बेटा, सौ बात की एक बात तो यह है कि मुझे तो अब मरना ही है, चल चलाव लग रहा है। मैं बड़ी-बड़ी लड़ाइयों से जीता लौट आया। समझूँगा, यह भी एक लड़ाई ही है। अब इस लड़ाई मे मेरा अंत है। पर इतना समझ रखना कि मेरे जीते जी इस पेड़ की डाल भी कोई काटने नहीं पावेगा। उनका रुपया गले बराबर है। भगवान् जाने, मेरे पास होता तो मैं दे देता। नहीं है, तो क्या किया जाय ? पर यह भी नहीं हो सकता कि ठाकुर साहब मेरा पेड़ कटवा लें और मैं बैठे टुकुर-टुकुर देखा करूँ।"

तेजा बोला—"चाचा, जाने भी दो, इन बातों में क्या रक्खा है ? पेड़ कटवाने कहते हैं, काट लेने दो। इस पेड़ में तुम्हारा रक्खा ही क्या है ? पेड़ तो नित्य ही कटा करते हैं।"

मनोहरसिंह बिगड़ कर बोला—"आखिर लड़के ही हो न ? अरे बेटा यह पेड़ ऐसा वैसा नहीं है। यह पेड़ मेरे भाई के बराबर है। मैं इसे सगा भाई समझता हूँ। यह मेरे पिता के हाथ का लगाया हुआ है। किसी और के हाथ का नहीं। जब मैं तुमसे भी छोटा था, तब से इसका और मेरा साथ है। मैं बरसों इस पर खेला हूँ, बरसो इसकी मीठी-मीठी निबौलियाँ खाई हैं। इसकी दतून आज तक करता हूँ। गाँव मे सैकड़ो पेड़ हैं; पर मुझ से कसम ले लो जो मैंने कभी उनकी एक पत्ती भी छुई हो। जब मेरे घर में आप ही इतना बड़ा पेड़ खड़ा हुआ है, तब मुझे दूसरे पेड़ मे हाथ लगाने की क्या पड़ी है, दूसरे, मुझे किसी और पेड़ की दतून अच्छी ही नहीं लगती।"

तेजा बोला—"चाचा बिना रुपए दिए तो यह पेड़ बच नहीं सकता।"

मनोहर—"बेटा, ईश्वर जानता है, मेरे पास रुपए होते तो मैं आज ही दे देता। पर क्या करूँ लाचार हूँ। मेरे घर में कोई ऐसी चीज भी नहीं जो बेचकर दे दूँ। मुझे आप ही इस बात का बड़ा दुःख है। गाँव भर में घूम आया, किसी ने उधार न दिए। क्या करूँ ? बेटा तेजा, सच जानना, जो यह पेड़ कट गया, तो मुझे बड़ा दुःख होगा, मेरा बुढ़ापा बिगड़ जायगा। अभी तक मुझे कोई दुःख नहीं था, खाता था, ईश्वर-भजन करता था, पर अब घोर दुःख हो जायगा।"

यह कह कर वृद्ध मनोहरसिह ने आँखो मे आँसू भर लिए।

तेजा वृद्ध मनोहरसिह का कष्ट देख सुन कर बड़ा दुखी हुआ। तेजासिह गाँव के एक प्रतिष्ठित किसान का लड़का था। उसका पिता डेढ़-दो सौ बीघे भूमि की खेती कराता था। मनोहरसिंह को तेजासिंह चाचा कहता था।

तेजा ने कहा—"चाचा, बापू से यह हाल कहा है ?"

मनोहर—"सब से कह चुका बेटा। तेरा बापू तो अब बड़ा आदमी हो गया है। वह मेरे जैसे गरीबो की बात क्यों सुनने लगा? एक ज़माना था, जब वह दिन-दिन भर मेरे द्वार पर पड़ा रहता था। घर में लड़ाई होती थी, तो मेरे ही यहाँ भाग आता था, और दो-दो तीन-तीन दिन तक बना रहता था। वही तुम्हारा बापू अब सीधे बात नहीं करता। इसी से कहता हूँ, समय की बात है।"

तेजा ने पूछा—"कितने रुपए देने से पेड़ बच सकता है ?"

मनोहर—"पचीस रुपए देने पड़ेंगे।"

तेजा—"पचीस तो बहुत हैं चाचा।"

मनोहर—"पास नही हैं तो बहुत हैं। होते, तो थोड़े थे।"

तेजा—' दस-पाँच की बात होती तो मैं ही कहीं से ला देता।"

मनोहर—"बेटा, ईश्वर तुझे चिरंजीव रक्खे। तूने एक बात तो कही। गाँव वालो ने तो इतना भी नहीं कहा। खैर देखा जायगा। पर इतना तू याद रखना कि मेरे जीते जी इस पेड़ को कोई हाथ नहीं लगाने पायेगा।"

एक सप्ताह बीत गया। आज आठवाँ दिन है। मनोहरसिंह रुपयों का प्रबंध नहीं कर सका। वह समझ गया कि अब पेड़ का बचना कठिन है। पर साथ ही वह यह भी निश्चित कर चुका था कि उसके जीते जी कोई उसको नहीं काट सकता। उसने अपनी तलवार भी निकाल ली थी और साफ करके रख ली थी। अब वह हर समय पेड़ के नीचे ही पड़ा रहता था तलवार सिरहाने रक्खी रहती थी।

आठवें दिन दोपहर के समय शिवपालसिंह ने मनोहरसिंह को बुलवाया। मनोहरसिंह तलवार बगल में दाबे अकड़ता हुआ ठाकुर साहब के सामने पहुँचा।

शिवपालसिंह और उनके पास बैठे हुए लोग बुड्ढे की इस सज-धज को देख कर मुसकराए। शिवपाल ने कहा—"सुनते हो मनोहरसिंह, एक सप्ताह बीत गया, अब पेड़ हमारा हो गया। आज हम उसको कटाई शुरू कराते हैं।"

मनोहर—"आपको अधिकार है। मुझे रुपया मिलता तो दे ही देता। और अब भी यदि मिल जायगा तो दे दूँगा। मेरी नीयत मे बेईमानी नहीं है। मैं फौज मे रहा हूँ। बेईमानी का नाम नहीं जानता।"

शिवपाल—"तो अब हम उसे कटवा लें न ?"

मनोहर—"यह मैं कैसे कहूँ; आपका जो जी चाहे, कीजिए।"

यह कह कर मनोहरसिंह उसी प्रकार अकड़ता हुआ ठाकुर शिवपालसिंह के सामने से चला आया और अपने पेड़ के नीचे चारपाई पर आकर बैठ गया।

दोपहर ढलने पर चार-पाँच आदमी कुल्हाड़ियाँ लेकर आते हुए दिखलाई पड़े। मनोहरसिंह झट म्यान से तलवार निकाल डट कर खड़ा हो गया और ललकार कर बोला—"सँभल कर आगे बढ़ना! जो किसी ने पेड़ मे कुल्हाड़ी लगाई, तो उसकी और अपनी जान एक कर दूँगा।"

मज़दूर बुड्ढे की ललकार सुन और तलवार देख कर भाग खड़े हुए।

जब शिवपालसिंह को यह बात मालूम हुई, तब पहले तो वह बहुत हँसे, परन्तु पीछे सोच कर उनका चेहरा क्रोध के मारे लाल हो गया। वह बोले—"इस बुड्ढे की शामत आई है। हमारा माल है, हम चाहे काटें चाहे रक्खें, वह कौन होता है ? चलो तो मेरे साथ, देखूँ वह क्या करता है ?"

शिवपालसिह मज़दूरों तथा दो लट्ठबन्द आदमियों को लेकर पहुँचे। उन्हें आते देख बुड्ढा फिर तलवार निकाल कर खड़ा हो गया।

शिवपालसिह उसके सामने पहुँच कर बोले—"क्यो मनोहर यह क्या बात है ?"

मनोहरसिह बोला—"बात केवल इतनी है कि मेरे रहते इसे कोई हाथ नहीं लगा सकता। यह मैं जानता हूँ कि अब पेड़ आपका है; मगर यह होने पर भी मैं इसे कटता हुआ नहीं देख सकता।"

शिवपालसिंह—"पर हम तो इसे कटवाये बिना न मानेंगे।"

मनोहरसिंह को भी क्रोध आ गया। वह बोला—"ठाकुर साहब जो आप सच्चे बहादुर है तो इस पेड़ को कटवा लें। जो मैं असली ठाकुर हूँगा तो इसे न कटने दूँगा।"

ठाकुर शिवपालसिह अपने आदमियों से बोले—"देखते क्या हो ? इस बुड्ढे को पकड़ लो और पेड़ काटना शुरू कर दो।"

ठीक उसी समय तेजासिंह दौड़ता हुआ आया और मनोहर-सिह को कुछ रुपए देकर बोला—"लो चाचा ये रुपए ; अब तुम्हारा पेड़ बच गया।"

मनोहरसिंह ने रुपए गिन कर ठाकुर शिवपालसिंह से पूछा—कहिए ठाकुर साहब रुपए लेना हो तो ये हाज़िर हैं, और जो पेड़ कटवाना हो, तो आगे बढ़िये।"

ठाकुर—"रुपए अब हम नहीं ले सकते। रुपए देने की मियाद बीत गई। अब तो पेड़ कटेगा।"

मनोहरसिंह अकड़ कर बोला—"ठीक है, अब मालूम हुआ कि आप केवल मुझे दुःख पहुंचाने के लिए पेड़ कटवा

रहे हैं। अच्छा, कटवाइए। मुझे भी देखना है, आप किस तरह पेड़ कटवाते हैं।"

इतनी ही देर मे गाँव भर मे यह खबर फैल गई कि शिवपालसिंह मनोहरसिंह का पेड़ कटवाते हैं; पर मनोहरसिंह तलवार खींचे खड़ा है; किसी को पेड़ के पास जाने नहीं देता। यह खबर फैलते ही गाँव भर जमा हो गया।

गाँव के दो-चार प्रतिष्ठित आदमियो ने मनोहरसिंह से पूछा—"क्या बात है मनोहरसिंह ?"

मनोहरसिंह सब हाल कह कर बोला—"मैं रुपए देता हूँ, ठाकुर नहीं लेते। कहते हैं, कल तक मियाद थी, अब तो पेड़ कटेगा।"

शिवपालसिंह बोले—"कल तक यह रुपए दे देता, तो पेड़ पर हमारा कोई अधिकार न होता। अब उस पर हमारा पूरा अधिकार है। हम पेड़ अवश्य कटवाएँगे।"

एक व्यक्ति बोला—"जब कल तक उसके पास रुपए नहीं थे, तो आज कहाँ से आ गए ?"

शिवपालसिंह का एक आदमी बोला—"तेजा ने अभी लाकर दिए हैं।"

गाँव वालों के साथ तेजा का पिता भी आया था। उसने यह सुन कर तेजा को पकड़ा, और कहा,—"क्यों रे, तूने ही रुपए चुराए थे ? मैंने दोपहर को पूछा तो तीन तेरह बकने लगा था।"

इसके बाद मनोहरसिंह से कहा—"मनोहर, ये रुपए तेजा मेरी सन्दूक से चुरा लाया है। ये रुपए मेरे हैं।"

मनोहर रुपए फेंक कर बोला—"तेरे हैं तो लेजा। मैंने तेरे लड़के से रुपए नहीं माँगे थे।"

फिर मनोहरसिंह ने तेजा से कहा—"बेटा, तूने यह बुरा काम किया ! चोरी की ! राम-राम ! बुढ़ापे में मेरी नाक काटने का काम किया था। ये लोग समझेंगे, मैंने ही चुराने के लिए तुझसे कहा होगा।"

तेजा बोला—"चाचा मैं गंगा उठा कर कहता हूँ कि तुमने मुझसे रुपए माँगे तक नहीं, चुराने के लिए कहना तो बड़ी दूर की बात है।"

शिवपालसिंह ने हँस कर कहा—"क्यों मनोहर, अब रुपए कहाँ हैं ? लाओ, रुपए ही लाओ। मैं रुपए लेने को तैयार हूँ। अब या तो अभी रुपए दे दो, या सामने से हट जाओ। झगड़ा करने से कोई लाभ नहीं होगा।"

मनोहरसिंह बोला—"ठाकुर साहब, इन सब बातों से क्या फ़ायदा ? रुपए मेरे पास नहीं हैं, लेकिन पेड़ मैं काटने नहीं दूँगा।"

शिवपालसिंह उपस्थित लोगों से बोले—"आप लोग इस बात को देखिए और न्याय कीजिए। मियाद कल तक की थी, मैं आज भी रुपए लेने को तैयार हूँ। अब मेरा अपराध नहीं, यह बुड्ढा व्यर्थ झगड़ा कर रहा है।"

तेजासिंह यह सुनते ही आगे बढ़ा और अपनी उँगली से सोने की अँगूठी उतार कर शिवपालसिंह से बोला—"ठाकुर साहब, यह अँगूठी एक तोले की है, आपके रुपए इससे निकल आवेंगे। आप यह अँगूठी ले जाइए। इस अँगूठी पर बापू का कोई अधिकार नहीं। यह अँगूठी मुझे मेरी नानी ने दी थी।"

सब लोग लड़के की बात सुन कर दंग रह गए। यह देख कर तेजासिंह का पिता आगे बढ़ा और बोला—"ठाकुर साहब, लीजिए ये पचीस रुपए और इस पेड़ को छोड़ दीजिए। आप

अभी कह चुके हैं कि रुपए मिल जायँ तो पेड़ छोड़ देंगे। अतएव अपने वचन का पालन कीजिए।"

ठाकुर साहब के चेहरे का रंग उड़ गया। उन्हें विश्वास हो गया था कि अब मनोहरसिंह को रुपए मिलना असम्भव है। इसी से केवल अपनी उदारता दिखाने के लिए रुपए लेना स्वीकार किया था। अब वह कुछ न कह सके। कारण, उन्होंने पचीस-तीस आदमियों के सामने रुपए लेना स्वीकार कर लिया था। वह रुपए लेकर चुपचाप चले गए।

ठाकुर साहब के चले जाने के बाद मनोहरसिंह ने तेजा को बुला कर छाती से लगाया और कहा—"बेटा, इस पेड़ को तूने ही बचाया, अतएव मैं तुझी को यह पेड़ देता हूँ। मुझे विश्वास हो गया कि मेरे पीछे इस पेड़ की तू पूरी रक्षा कर सकेगा।"

तेजा से यह कह कर उसने उपस्थित लोगों से कहा—"भाइयो, मैं तुम सब के सामने यह पेड़ तेजासिंह को देता हूँ। तेजा को छोड़ कर इस पर किसी का कोई अधिकार न रहेगा।"

फिर तलवार म्यान में रखते हुए आप ही आप कहा "पर मेरे जीते जी कोई पेड़ में हाथ नहीं लगा सकता था, अपनी और उसकी जान एक कर देता। मैंने फौज में नौकरी की है। बड़ी लड़ाइयाँ जीती हैं। यह बेचारे हैं क्या चीज़?"

प्रश्न और अभ्यास

१—नीचे लिखे मुहावरों का प्रयोग करो:—

सनक सवार होना; पाप कटना; आँखें दिखाना; सौ बात की एक बात; नाक पर मक्खी न बैठने देना।

२—मनोहरसिंह को पेड़ कटवाने में क्यों आपत्ति थी?

३—तेजासिंह के व्यवहार से उसका कैसा चरित्र व्यक्त होता है ? उसके तथा उसके पिता के हृदय की तुलना करो।

४—यदि तुम ठाकुर शिवपालसिंह के स्थान पर होते तो मनोहरसिंह के साथ कैसा व्यवहार करते ?

५—मनोहरसिंह ने वृक्ष को सम्बोधन कर जो भाव व्यक्त किया, उसे संक्षेप में लिखो।

६—इतना समझ रखना कि मेरे* जीते जी— इस* पेड की एक* डाल* भी कोई काटने नहीं पाएगा।' इस वाक्य में पुष्पांकित शब्दों की पदव्याख्या करो।

२—सुदामा-चरित्र

(लेखक—श्रीनरोत्तमदास)

[जिस प्रकार हिन्दी के अन्य प्राचीन महाकवियों का विस्तृत वृत्तान्त अज्ञात है, उसी प्रकार नरोत्तमदासजी का भी विस्तृत वृत्तान्त अज्ञात है। कब जन्म हुआ था, कहाँ जन्म हुआ था, कौन माता-पिता थे, इन सब बातों का ठीक-ठीक पता नहीं चलता। केवल जन-श्रुति के आधार पर ऐसा प्रसिद्ध है कि आप जाति के ब्राह्मण थे और आपका जन्म ज़िला सीतापुर के बाड़ी गाँव में हुआ था। आप के रचे हुए ग्रन्थों में सुदामा-चरित्र बहुत ही प्रसिद्ध है। उसी में से यह अंश लिया गया है।]

स्त्री—

लोचन कमल दुख-मोचन तिलक भाल,
मनिमय कुण्डल मुकुट धरे माथ हैं।
ओढ़े पीत बसन गरे में वैजयन्ती माल,
संख चक्र गदा और पद्म लिए हाथ है।

नरोत्तम कहै सुभ रूप संदीपन* के,
तुमही कहौं हम वे पढ़ैया एक साथ हैं।
द्वारिका के गए दूर दारिद करैंगे पिय,
द्वारिका के नाथ वे अनाथन के नाथ हैं॥

सुदामा—
सिच्छक हौं सिगरे जग को तिय!
ताको कहा अब देति है सिच्छा।
जा तप कै परलोक सुधारत,
सम्पति की तिनके नहीं इच्छा।
मेरे हिए हरि के पद-पंकज,
वार हजार लै देखु परिच्छा।
औरनि को धन चाहिए वावरि,
वाँभन को धन केवल भिच्छा॥

स्त्री—
कोदों सवाँ जुरतो भरि पेट,
न चाहति हौं दधि दूध मिठौती।
सीत वितीत भयौ सिसियातहिं,
हौं हटती पै तुम्हे न हठौती॥
जो जनती न हितू हरि सों,
तो मैं काहे को द्वारिका ठेलि पठौती।
या घर ते न गयौ कबहूँ,
पिय फूटो तवा अरु टूटी कठौती॥

सुदामा—
तै तो कही नीकी, सुन वात हित ही की,
यह रीति मित्रई की नित प्रीति सरसाइए।
चित्त के मिले ते वित्त चाहिए परसपर,
मित्र के जो जेंइये तो आपहू जिमाइए॥

---

*कृष्ण और सुदामा के गुरु।

वे हैं महाराज जोरि बैठत समाज भूप,
तहाँ यहि रूप जाय कहा सकुचाइए।
दुख सुख सब दिन काटे हो बनेगी भूलि,
बिपति परे पै द्वार मित्र के न जाइए॥

स्त्री—

बिप्र के भगत हरि जगत-बिदित बंधु,
लेत सबही की सुधि ऐसे महादानि हैं।
पढ़े एक ‡चटसार, कही तुम कैयौ बार,
लोचन अपार वै तुम्हें न पहिचानि है॥
एक दीनबंधु कृपासिंधु फेर गुरुबंधु,
तुम सम कौन दीन जाको जिय जानि हैं।
नाम लेत चौगुनी, गये तो द्वार सौगुनी,
बिलोकत सहस गुनी प्रीति प्रभु मानि हैं॥

सुदामा—

द्वारिका जाहु जू, द्वारिका जाहु जू,
आठहू जाम यही झक तेरे।
जौ न कहौ करिए तो बड़ो दुख,
जावै कहाँ अपनी गति हेरे॥
द्वार खड़े प्रभु के छड़िया,
जहँ भूपति जान न पावत नेरे।
पाँच सुपारी विचारु तू देखि कै,
भेंट को चार न चामर मेरे॥

यह सुनि के तिय हर्ष सो, गई परोसिन पास।
पाव सेर चामर लिए, आई सहित हुलास॥

---

‡ पाठशाला

सिद्ध करौ गनपति सुमिरि, बाँधि दुपटिया खूट* ।
चले जाहु तेहि मारगहिं, माँगत बाली† बूट‡ ॥

[सुदामा द्वारिकापुरी में प्रवेश करते हैं और चकित हो इधर-उधर देखते हैं ।]

दृष्टि चकचौंधि गई देख सब सुवरन मई,
एक ते सरस एक द्वारिका के भौन हैं ।
पूछे विन कोऊ कहूँ काहू सो न करै बात ,
देवता से बैठे सब साधि साधि मौन हैं ॥
देखत सुदामा धाय पुरजन गहैं पाय,
कृपा करि कहौ कहाँ कीनो विप्र गोन है ।
धीरज अधीर के, हरन पर पीर के,
बताओ बलबीर के रे ! भौन यहाँ कोन हैं ॥
द्वारपाल चलि तहँ गयो, जहाँ कृष्ण जदुराय ।
हाथ जोरि ठाढ़ो भयो, बोल्यो सीस नवाय ॥

द्वारपाल—

सीस पगा न झगा§ तन में प्रभु,
जानै को आहि बसै केहि ग्रामा ।
धोती फटी-सी लटी दुपटी अरु,
पाँय उपानह की नहिं सामा ।
द्वार खड़ो द्विज दुर्बल देखि,
रह्यो चकि सो वसुधा अभिरामा ।
दीनदयालु को पूछत धाम,
बतावत आपुनो नाम सुदामा ॥

[द्वारपाल के मुख से सुदामा का नाम सुन कर श्रीकृष्णजी दौड कर द्वार पर आते हैं और बड़े प्रेम से सुदामा को गले लगा कर मिलते हैं

---

*कोने में । † गेहूँ, जौ की बाल । ‡ चने के कच्चे होले । § अंगरखा ।

मिल चुकने पर उन्हें महल में ले जाकर मणि-जड़ित सुवर्ण की चौकी पर बैठाते हैं।]

श्रीकृष्ण—

ऐसे बिहाल बिवायन सो भए,
कंटक-जाल लगे पुनि जोए।
हाय महा दुख पायो सखा,
तुम आये इतै न कितै दिन खोए॥
देखि सुदामा की दीन दशा,
करुना करिकै करुनानिधि रोए।
पानी परात को हाथ छुओ नहि,
नैनन के जलसों पग धोए॥

प्रश्न और अभ्यास

१—कृष्ण और सुदामा की कथा संक्षेप मे बताओ।

२—मित्र के पास जाने में सुदामा इतना संकोच क्यों करते थे?

३—कृष्ण-सुदामा चरित्र से तुमको क्या शिक्षा मिलती है?

४—भेंट होने पर श्रीकृष्ण ने सुदामा को क्या उलाहना दिया?

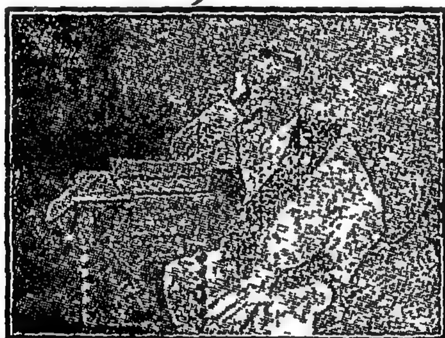
५—दारिद, सिच्छक, बाँभन, बितीत, परसपर, भगत, चामर, सुवरनमई, भौन, धीरज—इन शब्दों के शुद्ध रूप लिखो।

३—आचार्य पण्डित महावीरप्रसादजी द्विवेदी

वर्तमान हिन्दी को प्रतिष्ठित करके पण्डित महावीरप्रसादजी द्विवेदी ने हिन्दी के क्षेत्र में गौरव-पूर्ण स्थान प्राप्त किया है, और वे अपने जीवन-काल मे ही हिन्दी के युग-निर्माता के रूप मे समादृत हुए हैं। यह सौभाग्य भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के बाद अब तक अकेले इन्हीं को प्राप्त हुआ है और निस्सन्देह ये उसके सर्वथा अधिकारी भी है। सन् १८८५ की जनवरी मे भारतेन्दु के अस्तंगत होने पर किसे इस बात की आशा थी कि उनकी मृत्यु के केवल बीस वर्ष बाद ही बैसवाड़े के देहात का एक प्रतिभाशाली ब्राह्मण हिन्दी के क्षेत्र मे आकर ऐसा चमत्कार प्रकट करेगा कि वह उसका प्रधान बन बैठेगा और उसके अभ्युत्थान और समुन्नति के मार्ग को ऐसा परिष्कृत स्वरूप प्रदान करेगा कि उस पर उसकी स्थायी छाप लग जायगी। 'सरस्वती' का सम्पादन-भार ग्रहण करने के पूर्व यद्यपि द्विवेदीजी हिन्दी के क्षेत्र मे अपरिचित नहीं थे, तथापि उनके इस भव्य-रूप का उस समय किसी को ज्ञान न था। परन्तु 'सरस्वती' के सम्पादक के रूप मे उन्होंने हिन्दी का जो उत्कर्ष साधन किया है वह हिन्दी के इतिहास मे स्वर्णाक्षरों में लिखा गया है और अपनी इसी महत्तम साहित्य-सेवा के लिए वे हिन्दी-साहित्य के निर्मातारूप में लोकमान्यता को प्राप्त हुए है जो हिन्दी और द्विवेदीजी दोनों के लिए अत्यन्त गौरव की बात है।

द्विवेदीजी का जन्म सन् १८६४ (संवत् १९२१ वैशाख शुक्ला ४) मे रायबरेली जिले के दौलतपुर नाम के ग्राम मे एक सम्पन्न कान्यकुब्ज ब्राह्मण के घर मे हुआ था। इनके चाचा पं० दुर्गाप्रसाद ने इनको प्रारम्भ मे संस्कृत, व्याकरण, कोश आदि की शिक्षा दी। इसके बाद ये गॉव के मदरसे मे भर्ती किए गए। उन दिनों

अवध मे नई-नई अँगरेज़ी अमलदारी क़ायम हुई थी, अतएव अँगरेज़ी का पढ़ना अधिक लाभदायक समझा जाने लगा था। इसके सिवा इनके पिता पण्डित रामसहायजी सन् १८५७ के ग़दर के पहले अँगरेज़ी फौज में नौकर रहे थे और वे अँगरेज़ी के पढ़ने का महत्त्व भी जानते थे। अतएव ये अपने १३ वर्ष के वय मे अँगरेज़ी पढ़ने के लिए रायबरेली भेजे गए और वहाँ के स्कूल मे इनका नाम लिखाया गया। परन्तु रायबरेली दौलतपुर से ३२ मील दूर था। अतएव ये वहाँ से हटाकर अधिक समीप के उन्नाव जिले के पुरवा के अँगरेज़ी स्कूल में भर्ती कराये गए।



आचार्य पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदी

परन्तु यह स्कूल शीघ्र ही बन्द हो गया। तब इन्हें पुरवा छोड़ कर फतेहपुर और फतेहपुर से उन्नाव को जाना पड़ा। इनके पढ़ने की इस अव्यवस्था तथा असुविधा को देखकर इनके पिताजी ने इनको अपने पास बम्बई में बुला लिया। वहाँ वे गोस्वामियों के यहाँ नौकर थे। बम्बई में इन्होंने अँगरेज़ी और संस्कृत पढ़ी, साथ ही मरहठी और गुजराती भी सीख ली। पढ़ने में ये बहुत तेज़ थे और अपने अध्यवसाय तथा प्रतिभा के द्वारा कुछ ही समय में इन्होंने अँगरेज़ी की आवश्यक योग्यता प्राप्त कर ली। इसके बाद रेलवे में नौकर हो गए।

रेलवे की नौकरी मे द्विवेदीजी को इधर-उधर वहुत चक्कर लगाने पड़े। अन्त मे जव इनकी कार्य-कुशलता और योग्यता पता अधिकारियों को हो गया तव इन्हे इनके उपयुक्त पद दिया गया और धीरे-धीरे पदोन्नति करते-करते ये उत्तरदायी पद पर पहुँच गए और इन्हे पुष्कल वेतन भी मिलने लगा। परन्तु इनका जन्म रेलवे का कोई उच्चाधिकारी वनने के लिए नहीं हुआ था, विधाता को इनके द्वारा कोई और भी महत्तर कार्य किया जाना अभीष्ट था, अतएव इनकी प्रवृत्ति उसी ओर वनी रही।

द्विवेदीजी को पढ़ने लिखने का चाव पहले से ही था। कहा जाता है कि जव इनका जन्म हुआ था तव इनकी जीभ पर सरस्वती का वीज मन्त्र लिख दिया गया था। जान पड़ता है कि इस तान्त्रिक संस्कार ने अपना पूरा काम किया क्योंकि रेलवे के उच्च पद पर पहुँच कर ये अधिक गम्भीर दृष्टि से, भिन्न-भिन्न विपयों का अधिक संलग्नता के साथ अध्ययन करने लगे। शिक्षितों के नित्य के सत्सङ्ग और पठन-पाठन की अभिरुचि से इनमे हिन्दी का प्रेम और भी अधिक जाग्रत हो उठा। हिन्दी मे पद्य-रचना ये पहले से ही कर रहे थे। अव ये इस ओर अधिक अनुराग के साथ प्रवृत्त हो गए। 'गंगा-लहरी', 'देवी-स्तुति', विनय-विनोद' आदि रचनायें इसी समय लिखी गई थीं और कविता-प्रेमियो ने इनका आदर भी किया था।

अव क्या था, द्विवेदीजी इस ओर अधिकाधिक प्रवृत्त होते गए। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम दशक मे इन्होंने संस्कृत और हिन्दी मे वहुसंख्यक कविताऍ लिखीं और वे उस समय के प्रसिद्ध-प्रसिद्ध मासिक तथा साप्ताहिक पत्रों मे धूम के साथ छापी गईं। इस समय की इनकी मुख्य-मुख्य रचनाओं का संग्रह 'काव्य-मंजूषा' के नाम से प्रकाशित हुआ था।

इस समय तक द्विवेदीजी हिन्दी के क्षेत्र मे कवि के रूप में यथेष्ट ख्याति प्राप्त कर चुके थे। परन्तु अब इन्होंने कविता के अतिरिक्त गद्य लिखना भी प्रारम्भ कर दिया। इस सम्बन्ध में इन्होंने तीन-चार समालोचनाये लिखीं, जो पुस्तक-रूप मे प्रकाशित हुईं। इन रचनाओं से हिन्दी के क्षेत्र मे द्विवेदीजी की धाक बँध गई और इनका लोहा माना जाने लगा।

इसके बाद बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ होते ही काशी मे 'नागरी-प्रचारिणी-सभा' की स्थापना हुई और उसके तत्त्वावधान में इण्डियन प्रेस से 'सरस्वती' नाम की एक सुन्दर मासिक-पत्रिका प्रकाशित की। इन दोनों नए आयोजनों से हिन्दी के क्षेत्र मे एक प्रकार की अभिनय स्फूर्ति उत्पन्न हो गई। इन दोनों से द्विवेदीजी ने उत्साह-पूर्वक सहयोग किया और ये 'सरस्वती' मे नियमित रूप से लिखने लगे। इस प्रकार इन्होंने अन्य मातृ-भाषा प्रेमी नवयुवकों के साथ भारतेन्दु-युग के लेखकों क छोटे से दल से सहयोग ही नहीं किया, किन्तु उसमे नूतन प्राणों का भी सञ्चार किया।

इधर जब तीन वर्ष के बाद 'सरस्वती' की दशा संभलती न दिखाई दी और उसके तत्कालीन सम्पादक बाबू श्यामसुन्दर-दास नागरी-प्रचारिणीसभा के कार्याधिक्य के कारण उसके लिए अधिक समय न दे सके, तब 'सरस्वती' के स्वामी स्वर्गीय बाबू चिन्तामणि घोष उसकी दशा सुधारने के लिए चिन्तित हुए और उन्होंने भले प्रकार सोच समझ कर द्विवेदीजी को उसका सम्पादन भार सौंपने का निश्चय किया। उस समय ये झाँसी मे डिस्ट्रिक्ट ट्रैफिक सुपरिटेंडेंट के दफ्तर में चीफ-क्लर्क थे और इन्हे सम्भवतः डेढ़-सौ रुपए मासिक वेतन मिलता था। इन्होंने 'सरस्वती' के स्वामी के प्रस्ताव को सहर्ष स्वीकार कर लिया।

इसके कुछ ही समय वाद इनसे ट्रैफिक सुपरिंटेडेंट से कुछ अनवन हो गई और इन्होने नौकरी से त्याग-पत्र दे दिया।

इस प्रकार द्विवेदीजी ने ४० वर्ष की उम्र मे ऊँचे वेतन की नौकरी छोड़ कर 'सरस्वती' के सम्पादन का कार्य-भार सँभाला और कानपुर आकर 'सरस्वती' का सम्पादन-कार्य ऐसी तेजस्विता के साथ करना प्रारम्भ कर दिया कि दो ही वर्ष के भीतर 'सरस्वती' ही कुछ की कुछ हो गई, किन्तु ये स्वयं भी हिन्दी के प्रधान नियन्ता हो गए। इन्होंने हिन्दी के क्षेत्र मे जो उदासी छाई हुई थी, उसे तत्काल दूर ही नहीं कर दिया, वरन् उसको नूतन जीवन प्रदान कर दिया। 'सरस्वती' का सम्पादन इन्होंने जिस उत्कृष्ट पद्धति के साथ प्रारम्भ किया था उससे ये एक आदर्श सम्पादक तो हो ही गए, साथ ही ये हिन्दी-साहित्य का अभ्युदय करने के लिए जो घोर परिश्रम करने लगे, उससे हिन्दी में जो साहित्यिक उत्क्रान्ति सम्भव हुई, उसके ये हिन्दी के क्षेत्र के सर्वेसर्वा हो गए।

सरस्वती के सम्पादन का प्रारम्भिक काल द्विवेदीजी के लिए कड़ी परीक्षा का समय था। कुछ ग़लत फ़हमियों के कारण कई मित्र इनके विरोधी वन गए। जिन मित्रों से इन्हे सहायता मिलनी चाहिए थी, अब उन्हीं के विरोध का सामना करना पड़ा। ऐसा समय किसी के लिए भी कठिन परीक्षा का हो सकता है। पर द्विवेदीजी अध्यवसायी थे, लगन औ धुन के पक्के थे। अपने न्याय-सिद्धान्त से रत्ती भर भी टलना नहीं जानते थे। ऐसे ही तेजस्वी तो परीक्षा मे सफलता प्राप्त करते हैं द्विवेदीजी ने सफलता प्राप्त की, मार्ग की वाधाएँ हट गईं। द्विवेदीजी का मार्ग निष्कण्टक हो गया। परन्तु इन्होंने इन सव वाधाओ की तनिक भी चिन्ता न की, वरन् अपने कर्त्तव्य का पालन और भी ओजस्विता के साथ किया और अन्त मे विजयी हुए।

'सरस्वती' के सम्पादक के रूप मे द्विवेदीजी ने लोक-रञ्जन तथा उपयोगिता को ही अपना ध्येय बनाने में अपने कर्त्तव्य की इतिश्री नहीं समझो, किन्तु हिन्दी मे जो अनस्थिरता थो, सबसे पहले उसी को दूर करने का इन्होने उपक्रम किया। इस सिलसिले मे इन्होंने अपना 'भाषा और व्याकरण' शीर्षक लेख लिखा। इस लेख के प्रकाशित होते ही हिन्दी में जो वाद-विवाद उस समय उठ खड़ा हुआ था, उसके फल-स्वरूप हिन्दी ने स्थिरता की ओर अपना पग आगे बढ़ाया और कुछ ही वर्षों के भीतर द्विवेदीजी द्वारा निर्दिष्ट किए गए सिद्धान्तों को प्राय: सभी लेखकों ने अपने ही आप स्वीकार कर लिया, जिससे हिन्दी में स्थिरता आगई और उसकी परिपुष्टता को प्राप्त हो गई।

इस प्रकार भाषा और व्याकरण का प्रश्न उठा कर तथा तत्सम्बन्धी कार्य मे निरत रह कर ही द्विवेदीजी शान्ति नहीं हो गए, किन्तु हिन्दी के साहित्य-भाण्डार को लाकोपयोगी कृतियो से अलंकृत करने का काम भी इन्होने अपने हाथ में लिया। 'स्वाधीनता', 'शिक्षा', 'कविता-कलाप', 'सम्पत्ति-शास्त्र' जैसे उत्कृष्ट ग्रन्थ इसी ध्येय को सामने रख कर इन्होंने लिखे थे।

बीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक में अपनी संहारात्मक एवं रचनात्मक कृतियों से द्विवेदीजी ने हिन्दी मे जिस साहित्यिक सुरुचि का सञ्चार किया, उससे हिन्दी मे स्थिरता और प्राञ्जलता आ गई और उनके लिए आगे का कार्य करने को मार्ग भी साफ हो गया। इस शताब्दी के दूसरे दशक मे द्विवेदीजी 'सरस्वती' तथा अपनी महत्त्वपूर्ण रचनाओ के द्वारा हिन्दी की रूप-रेखा तथा उसके साहित्य-भाण्डार को पूर्ण रूप से साहित्यक रूप प्रदान करने मे समर्थ हुए। इस दशक मे वे हिंदी के विना तिलक के राजा रहे और यह समय 'द्विवेदी-युग' के

नाम से ही इतिहास में अभिहत किया जायगा। 'कालिदास की निरंकुशता' लिखकर इन्होंने हिन्दी वालों को काव्याभिरुचि की ओर आकृष्ट किया, साथ ही उस अभिरुचि के परितोष के लिए इन्होंने मेघदूत, कुमारसम्भव, रघुवंश, किरातार्जुनीय जैसे उत्कृष्ट काव्यों को हिन्दी में लिखकर उन्हें हिन्दी वालों को सुलभ कर दिया। इन ग्रन्थों के पढ़ने वाले संस्कृतज्ञ द्विवेदीजी के महत्त्व और पाण्डित्य के परिष्कृत रूप का दर्शन कर सकते हैं।

परन्तु इस साहित्य-रचना के साथ ही द्विवेदीजी ने 'सरस्वती' को देश-काल के अनुरूप बनाये रखने के कार्य में तनिक भी शिथिलता नहीं आने दी, वरन् ये उसे दिन-प्रति-दिन उत्कृष्ट और लोकोपयोगी ही बनाते गए। बीसवीं शताब्दी के इस दूसरे दशक में इन्होंने 'सरस्वती' को पूर्ण रूप से सामयिक पत्रिका का रूप दे दिया था—वह साहित्यिक पत्रिका की अपेक्षा सार्वजनिक विषयों की पत्रिका हो गई थी और 'सरस्वती' को इस रूप में लाकर ही वे एक सर्वश्रेष्ठ सम्पादक के पद पर अधिष्ठित हुए।

इस तरह अठारह वर्ष तक सरस्वती का घोर परिश्रम के साथ सम्पादन करते रहने तथा बड़े-बड़े ग्रन्थ लिख-लिख कर हिन्दी के साहित्य-भण्डार की वृद्धि करते रहने से द्विवेदीजी के स्वास्थ्य ने अन्त में जवाब दे दिया और वे सरस्वती के सम्पादन-कार्य से अवकाश ग्रहण करने को सन् १६२१ में बाध्य हुए। यद्यपि इन्होंने 'सरस्वती' से विदा ले ली, तथापि इनका लिखना नहीं छूटा। यही नहीं, इस काल में इन्होंने पहले की अपेक्षा कहीं अधिक तीव्रता के साथ लिखने-पढ़ने का काम जारी रक्खा। 'सरस्वती' में इसके बाद ये कल्पित नाम से नियमित रूप से सन् १६२६ तक बराबर लिखते रहे। इसके अतिरिक्त इन्हें अन्य पत्र-पत्रिकाओं में भी

लिखना पड़ा। इस परिश्रम का यह परिणाम हुआ कि ये ऐसे रोग-ग्रस्त हो गए कि बड़ा प्रयत्न करने पर नीरोग हो सके। स्वस्थ हो जाने पर इनके चिकित्सकों ने इन्हें आग्रह-पूर्वक लिखने-पढ़ने का निषेध किया। तब से इन्होंने अपनी लेखनी रख दी है और ये अब अपना जीवन एक वानप्रस्थी की भाँति व्यतीत कर रहे हैं।

हिन्दी के आचार्य द्विवेदीजी का ऐसा ही साहित्यिक जीवन रहा है। इनको लड़कपन से हिन्दी का प्रेम था। हिन्दी के अपने समय के आचार्य कविराज सुखदेव मिश्र इनके गाँव के थे और इन्होंने सुखदेवजी की कीर्ति-गाथाओं तथा मुखस्थ रचनायें बचपन में खूब सुनी होंगी। ऐसी परिस्थिति में इनका हिन्दी से प्रेम हो जाना सर्वथा स्वाभाविक है। यह उसी संस्कार का परिणाम हुआ कि ये भी अपनी हिन्दी-सेवा के द्वारा अपने समय के हिन्दी के आचार्य गिने गए।

द्विवेदीजी ने अपनी अलौकिक प्रतिभा द्वारा हिन्दी के क्षेत्र में नूतन युद्ध का आविर्भाव किया है। ये अपनी खरी समालोचनाओं से अनधिकारियों की खबर लेने से कभी नहीं विमुख हुए। इसका यह प्रभाव पड़ा कि अनधिकारी लोगों ने साहित्य के क्षेत्र में अनधिकार चर्चा करनी छोड़ दी और इसके साथ ही समालोचना का एक प्रकार ही चल पड़ा। हिन्दी के नए युग के द्विवेदीजी पहले तेजस्वी समालोचक हैं। इसके बाद इन्होंने गद्य-शैली को परिमार्जित किया और उसी गद्य में पद्य लिखे जाने का आदर्श उपस्थित किया। इस समय कविता में खड़ी बोली का जो प्राधान्य स्थापित है उसका श्रेय इन्हीं को प्राप्त है।

हिन्दी के अभ्युत्थान के लिए द्विवेदीजी ने जो भारी प्रयत्न किया है उसके कारण वे युग-प्रवर्तक माने गए

हैं। विद्वानों को अपनी ओर आकृष्ट कर लेने तथा शिक्षित युवकों का सहयोग प्राप्त कर लेने की इनमें अद्भुत क्षमता है। 'सरस्वती' के सम्पादक के रूप मे इन्होने अपने समय के अच्छे अच्छे विद्वानों को आकृष्ट कर लेने मे सफलता प्राप्त की थी और समय-समय पर वे 'सरस्वती' मे लिखते रहे थे। और शिक्षित नवयुवक तो द्विवेदीजी को घेरे ही रहते थे। हिन्दी मे इस समय जो बहुसंख्यक नामी-नामी कवि, लेखक और ग्रन्थकार दिखाई दे रहे हैं और उनमें अनेक को इनका प्रोत्साहन मिलता रहा है और आज की उनकी इस प्रसिद्धि के कारण बहुत कुछ द्विवेदीजी ही हैं। इस प्रकार इन्होंने साहित्य की द्विगुणित सेवा की है। अपने विद्यावल से इन्होंने हिन्दी की अनस्थिरता को दूर कर उसकी शैली को परिष्कृत किया और उसके रिक्त भण्डार को अपने ग्रंथ-रत्नों से पूर्ण किया। दूसरे यह कि इन्होने हिन्दी में अनेक सुलेखक, कवि और ग्रन्थकार पैदा कर दिए। यही नहीं, जो विद्वान हिन्दी को तुच्छ समझते थे उनको भी ये हिन्दी मे खींच लाने में समर्थ हुए। इनके इस अध्यवसाय और परिश्रम से हिन्दी को बहुत अधिक उन्नति हुई, जिससे उसके गौरव की वृद्धि हुई है।

द्विवेदीजी हिन्दी के ऐसे ही महिमावान् आचार्य हैं। परन्तु इनका यह संक्षिप्त परिचय अधूरा ही रह जायगा, यदि हम इनके शील-स्वभाव का उल्लेख न करेंगे।

द्विवेदीजी ब्राह्मण जाति के उज्ज्वल रत्न हैं। इनमें सत्यनिष्ठा, उदारता और स्वाभिमान, ये तीनों गुण कूट-कूट कर भरे हैं। इन गुणों का परिचय इन्होंने अपने जीवन के पग-पग पर दिया है। डेढ़-सौ मासिक वेतन की

नौकरी इन्होंने स्वाभिमान की झोंक में आकर एक क्षण मे छोड़ी थी। जो बात कह दी, वज्र की लीक हो गई और फिर जीवन भर उसका निर्वाह किया। धन को सदा मिट्टी का ठीकरा ही समझा। यथारुचि खाया-पहना और दूसरों को दिया। अंत मे इस वृद्धावस्था मे इन्होंने अपनी सारी कमाई हिंदू-विश्वविद्यालय को और अपना प्रिय महत्त्वपूर्ण पुस्तकालय नागरी-प्रचारिणी-सभा को दे दिया। रेलवे मे जब ये ऊँचे पद पर थे तब सैकड़ो को नौकरी दी, यहाँ तक कि यह उनकी आदत बन गई। अब जब रेलवे से सम्बन्ध भंग हो गया तब दूसरो से कह-कह कर लोगों को जीविका से लगाते रहे। पर-दुख देख कर आँखों में तत्क्षण आँसू भर आते हैं। द्विवेदीजी का ऐसा ही ऋषिजनोचित चरित्र है। यही कारण है कि ये अपने जीवन में ही लोक-पूजित हुए हैं।

प्रश्न और अभ्यास

१–द्विवेदीजी हिन्दी के युग-निर्माता क्यों माने जाते हैं ?

२–हिन्दी की ओर द्विवेदीजी का इतना अनुराग किस प्रकार जाग्रत हुआ ?

३–'सरस्वती' का सम्पादन करके द्विवेदीजी ने किस प्रकार हिन्दी-साहित्य की सेवा की ?

४–किन विशेषताओं के कारण द्विवेदीजी का रचना-काल हिन्दी-इतिहास में 'द्विवेदी-युग' के नाम से विख्यात है ?

५–द्विवेदीजी के शील-स्वभाव के सम्बन्ध में क्या जानते हो ? संक्षेप में लिखो।

६–धाक बँध जाना; लोहा जानना; धुन का पक्का होना; वज्र की लीक हो जाना–इनके अर्थ लिखो और इनका प्रयोग अपने वाक्यों में करो।

७–द्विवेदीजी की आलोचना किस ढंग की होती थी ? उसका अनधिकारी लेखकों पर क्या प्रभाव पड़ा ?

८–द्विवेदीजी ने अपनी अलौकिक प्रतिभा के द्वारा हिंदी के क्षेत्र में नूतन युग का आविर्भाव किया है–इस वाक्य में संज्ञा और विशेषण की पदव्याख्या करो।

—:o:—

४—शरद

(लेखक—पं० रामनरेश त्रिपाठी)

[खड़ी बोली के कवियों में त्रिपाठीजी का नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है। आपकी कविता बड़ी सरल, सरस और भाव-पूर्ण होती है। भाषा भी बहुत साफ-सुथरी होती है। आपने हिंदी में "मिलन", "पथिक" तथा "स्वप्न" नामक तीन खण्ड-काव्यों की रचना की है। इनमें से "स्वप्न शीर्षक पुस्तक पर आपको हिंदुस्तानी एकेडेमी से ५००) रु० का पुरस्कार भी मिल चुका है। आपकी फुटकर रचनाएँ भी बड़ी मनोहारिणी हैं। ये रचनाएँ "मानसी शीर्षक पुस्तक में संग्रहीत हैं। "कविता-कौमुदी नामक हिंदी-काव्यों के दो बड़े संग्रह निकालने के अतिरिक्त आपने ग्राम्य-गीतों के संग्रह भी प्रकाशित किए हैं। आप बालोपयोगी गद्य लिखने में भी बड़े सिद्धहस्त हैं।]

(१)

बीत गई बरसात अहा ! कैसी छवि छाई।
रोचकता का साज शरद ऋतु सजकर आई॥
हुये प्रफुल्लित जीव जन्तु जड़ चेतन सारे।
सुन्दर, हरित, सचित्र वेश धरणी ने धारे॥

(२)

श्वेत रूप अति स्वच्छ काशकुल मञ्जुल फूले।
देख मनोहर दृश्य न उपमा सत्कवि भूले ॥
पावस में जलधार पड़ी अविराम प्रकृति पर।
मानो वस्त्र पसार सुखाती है वह क्षिति पर ॥

(३)

अथवा जग में शरद प्रजाप्रिय भूप पधारे।
ऋतुम्भरा ने श्वेत चारु चामर कर धारे ॥
या पड़ते जो रङ्ग श्वेत दिखलाई अब हैं।
वे पावस के चिन्ह वृद्धता-सूचक सब हैं ॥

(४)

उड़-उड़ अगणित झुण्ड खञ्जरीटों के आये।
संदेशा सुखमूल शरद आने का लाये ॥
सरिता-सागर, झील, तड़ाग जलाशय सारे।
जो थे एकाकार प्रथम अब हैं सब न्यारे ॥

(५)

जलाशयों में स्वच्छ अमल दर्पण-सा जल है।
बहते हुये सुमधुर शब्द होता कल-कल है ॥
खिले अखिल अरविन्द मिलिन्द वृन्द मँडराते।
पी पी मधु मकरन्द अतुल आनन्द मनाते ॥

(६)

शीतल पवन सुगंध-सना बहता है धीरे।
मिलता है आनंद किसी सरिता के तीरे ॥
शुभ्र चाँदनी छिटक ताप तन का हरती है।
ओज भरी मुसकान प्रफुल्लित मन करती है ॥

(७)

अवनी पै रमणीय घास की है हरियाली।
नूतन पल्लव-धार छदन की छटा निराली॥
ऊपर नीला गगन हरी नीचे क्षिति सारी।
यह शोभा क्यों लगे न इन आँखों को प्यारी॥

(८)

कीर, कपोत, मराल, कोकिला, सारस, श्यामा।
कोक, महोक, चकोर, मोर, सारिका ललामा॥
तरु-शाखा पर बैठ मुदित हरि-गुण गाते हैं।
अनुपम ईश्वरदत्त प्राकृतिक सुख पाते हैं॥



प्रश्न और अभ्यास

१—निम्नलिखित शब्दों के अर्थ बताओ:—

रोचकता, मन्जुल, अविराम, अरविन्द, मकरन्द, मिलिन्द, रमणीय और ईश्वरदत्त।

२—शरद् ऋतु किस महीने में होती है ?

३—शरद् की शोभा का संक्षिप्त वर्णन अपने शब्दों में करो।

४— पावस में जलधार पड़ी अविराम प्रकृति पर।
मानों वस्त्र पसार सुखाती है वह क्षिति पर॥
अथवा जग में शरद प्रजाप्रिय भूप पधारे।
ऋतुम्भरा ने श्वेत चारु चामर कर धारे॥

इन पंक्तियों का आशय सरल भाषा में बताओ।



५—बलकारक लड्डू (१)

(लेखक—श्री० पं० बदरीनाथ भट्ट बी० ए०)

[पण्डित बदरीनाथ भट्ट शहर आगरा, मोहल्ला गोकुलपुरा के रहने वाले थे। आपको संस्कृत तथा गुजराती का अभ्यास था। आप हिन्दी के अच्छे विद्वान् और लेखक थे। आपको हास्यरस का आचार्य कहा जाय तो अत्युक्ति नही। आपने गद्य में कई पुस्तकें लिखी हैं, जिनमें चंद्रगुप्त, दुर्गादास नाटक तथा चुंगी की उम्मेदवारी, हिंदी, तुलसीदास आदि ग्रंथ बहुत प्रसिद्ध हैं। बहुत काल तक आप लखनऊ यूनीवर्सिटी मे हिंदी के अध्यापक रहे। अभी हाल ही में आपका स्वर्गवास हो गया।]

पन्दह-बीस जगह अर्जियाँ भेजीं, ससुराल के उच्च-पदस्थ सम्बन्धियो तक का जोर डलवाया, पर फिर भी काम न बना—हाईस्कूल की परीक्षा मे तीन बार फेल होने पर अभागचन्द को कहीं १५) रु० की भी नौकरी नहीं मिली। अन्त मे झुँझलाकर अभागचन्द ने सोचा—"भगवान् की बाहें लम्बी हैं, वह पत्थर के भीतर रहनेवाले कीड़ो को भी भोजन देता है, फिर मैं ही क्यो अपने मन को दुर्बल होने दूं। दुनिया नौकरी ही करके पेट पालन नहीं करती; और भी बहुत-से काम हैं जो किए जा सकते हैं।"

अब अभागचन्द कुछ स्वतन्त्र व्यवसाय करने की चिन्ता मे लगे। एक दिन उन्होने एक हिन्दी का समाचार-पत्र उठाया और विज्ञापनो पर दृष्टि दौड़ाई,—"जाड़ा आ गया, हमारा पाक सेवन करके बुढ़ापा भगाइए", हमारे लड्डू सेवन करके वर्ष भर के लिए बल-संचय कर लीजिए" आदि शीर्षकों पर इनकी तबियत कुछ जमती-सी दिखाई दी। इन्होंने सोचा—"मैं भी इसी तरह विज्ञापनबाज़ी क्यो न करूँ। इसी विज्ञापनबाज़ी की

बदौलत आज दुःख-संहारक कम्पनी वाला लखपती हो गया। पीयूप प्याले वाले ने सड़क पर अपना नाम लिखवा लिया, केश-गंजनवाले ने मोटर रख ली और बुद्धि-भंजनवाला नया मकान बनवा रहा है।"

विज्ञापनबाजी के लिए पहले कुछ रुपया चाहिए। इसके नाम पर यहाँ शून्य था; यह भी एक कठिनाई थी। अन्त में बहुत सोच-विचार करने के बाद अभागचन्द इस परिणाम पर पहुँचे कि जाड़ा सचमुच आ रहा है, इसलिए बलकारक लड्डू बनाकर पहले अपने मुहल्ले के धनी आदमियों के हाथ बेचूँ और बाद को उसी रुपए से विज्ञापनबाजी शुरू कर दूँ। अभागचन्द ने असली घी मे आटे को खूब भूना; यहाँ तक कि वह काला हो गया। उसमें जलाँद आने लगी और बिलकुल ही स्वाद बदल गया। तब उसमें थोड़ा-सा भुना खोया डाला और फिर भूना। लड्डू बाँधते समय बादाम, पिस्ते, इलायची आदि की भरमार कर दी। अब इन्होंने टीन के चार डिब्बे लिए, उनमें पाव-पाव भर बोझ रखा। मूल्य ८) रु० सेर लगाया।

× × × ×

मुहल्ले में एक चुँगी के मेम्बर रहते थे—यानी म्यूनिस्पल कमिश्नर। पहले अभागचन्द एक डिब्बा लेकर उनके यहाँ गए। सवेरे कोई ६ बजे जब झाड़ूवाला कभी का सड़क साफ करके चला गया था, मेम्बर साहब टूटे तख्त पर बैठे लम्बी दतून लिए, लगभग चौबीस घन्टे के लिए, अपनी बैठक का आगा, अंधाधुन्ध थूक-थूक कर बिगाड़ रहे थे। वे इनको देखते ही उठ खड़े हुए और आदर के साथ उसी तख्त पर बैठा लिया। अभागचन्द बोले, "जी काम तो कुछ नहीं, वैसे ही इधर घूमता-घामता चला आया। जाड़ा आ गया है, कुछ बलकारक

लड्डू उस लड़की की माँ ने बनाए हैं। बोली कि मेम्बर साहब के यहाँ जरूर दे आओ।"

मेम्बर—"आपकी बड़ी मेहरबानी है, मैं कहाँ तक… "

अभागचन्द—"जी कहाँ तक की कोई बात नहीं है, सिर्फ ८) रु० सेर के हैं इस डिब्बे में पाव भर हैं; २) के हुए।"

मेम्बर—(गर्दन हिला कर) "जरूर-जरूर, भला दो रुपए से भी कम के क्या होंगे। अबे बुधुआ, जा ये लड्डू तो भीतर दे आ।"

बुधुआ के भीतर जाने के बाद मेम्बर साहब ने कहा—"पण्डितजी आप तो कभी मिलते-जुलते ही नहीं और न आपने आज तक हमसे कोई सेवा ही ली। कहिए, आपकी मेहतरानी ठीक तौर से काम करती है न। न करती हो तो जमादार से उसके दो-चार लीतड़े लगवा दूँ।"

अभागचन्द को मेहतरानी से कोई शिकायत न थी।

मेम्बर साहब बोले—"अबकी बार जब आपके घर पर टैक्स लगने लगे तो आप उज्रदारी करने से पहले मुझसे सलाह ले लीजिएगा। मैं आपका टैक्स बहुत कम करा दूँगा।"

अभागचन्द बड़े प्रसन्न हुए और इधर-उधर की दो-चार बातें करके अपने घर लौटे। चलते समय मेम्बर साहब से संसार का कटु अनुभव होने के कारण, यह कहना भूल गये कि लड्डुओं के दाम की विशेष चिन्ता न कीजिएगा, दाम तो घर में है।

× × × ×

उस दिन साँझ को लड्डुओं का दूसरा पौवा लेकर अभागचन्द एक आनरेरी मजिस्ट्रेट के यहाँ गए। मजिस्ट्रेट साहब ने भी आवभगत की और लड्डुओं का डिब्बा भीतर भेजते हुए कहा—"मेरे योग्य कोई सेवा हो तो बताइए। कोई आपके घर

में ईंट फेंकता हो या किसी एक्केवाले ने आपसे पैसे ज्यादा ले लिए हों तो वताइए।"

अभागचन्द ने कहा कि ऐसी कोई बात नहीं है। मजिस्ट्रेट साहब सुनी-अनसुनी करके बोले—"हाँ, इस समय इस नगर में आप ही की धाक समझिए, अब की बड़े दिन पर मैंने कलक्टर साहब को वह डाली दी कि जितने तहसीलदार और डिप्टी-कलक्टर थे सब देख कर दंग रह गए।"

अभागचन्द ने कहा—"क्यों नहीं, भला आपकी कोई बराबरी कर सकता है?"

कुछ और इधर-उधर की बातें होने के बाद अभागचन्द बोले—"अच्छा तो अब चलता हूँ। आप दाम की चिन्ता न कीजिएगा, चाहे जब भिजवा दीजिएगा और यदि लाभ-कारक जँचे तो और भी मँगा लीजिएगा।"

बीच में अनाड़ी मजिस्ट्रेट को याद आ गई थी कि एक पोस्टकार्ड बिना पढ़ा परसों से जेब मे पड़ा है। जब अभागचन्द ने पिछली बात कही तब उनका ध्यान उसी कार्ड मे लगा था; अतएव बिना इनकी बात अच्छी तरह सुने वे बोले, "आपका घर है, चाहे जब तशरीफ लाइए।

× × × ×

तीसरा पौवा प्रान्तीय कौंसिल के मेम्बर के भाग्य मे बदा था। ये मेम्बर महाशय देखने में तो मरियल थे, पर धन और बुद्धि में बड़े ही मोटे थे। लड्डू लेकर बोले—"पण्डितजी! आपने, सच पूछिए तो मुझे बचा लिया। इस इतने बड़े शहर मे मैं अकेला पतला-दुबला मेम्बर। सबका काम करूँ; पर मेरे स्वास्थ्य की चिन्ता किसी को भी नहीं। एक आप ही ऐसे निकले कि मेरी आवश्यकता अपने आप समझ गए। इधर तीन महीने मलेरिया ने झँझोड़ा, कभी खाँसी, कभी बुखार—

आप जानते हैं यही झगड़ा लगा रहता है। कमज़ोरी तो खूब ही है। बोलते-बोलते हँफनी होने लगती है।"

अभागचन्द—"इन लड्डुओं से आपको शर्तिया लाभ होगा और जितने चाहें मँगा लीजिएगा। केवल आठ ही रुपए सेर के तो हैं।"

मेम्बर—"अच्छा पण्डितजी ! अब आप यह बतलाइए कि मैं आपकी क्या सेवा करूँ? अगर आपको पुलिस ने तंग किया हो तो कहिए? मैं कौंसिल मे यह सवाल कर दूँ कि शारदा नहर मे कुल कितने रुपए खर्च हुए? अगर आपकी नौकरी कहीं से अन्यायपूर्वक छुड़ा दी गई हो तो कहिए? मैं यह सवाल कर दूँ कि खेती की उन्नति के लिए सरकार ने पिछले दस वर्षों में क्या किया?"

अभागचन्द—"मुझे आपकी दया से अभी ......।"

मेम्बर—(बीच ही में) "क्योंकि सरकारी मेम्बर मुझसे बहुत डरते है। जब देखो तब वोट के लिए हाथ जोड़े मेरी खुशामद ही किया करते हैं। मैं उनके लिए वोट देता हूँ तो मेरा उनसे काम क्यो न निकलेगा।"

अभागचन्द—'अवश्य, अवश्य, आप क्या कोई ऐसे-वैसे हैं। इसीलिए तो मैं आया था। लड्डू जितने चाहिएँ और मँगा लीजिएगा। आठ ही रुपए सेर हैं; दाम फिर देते रहिएगा।"

मेम्बर साहब ने कहा—"जी, बहुत अच्छा।"

× × × ×

चौथा पौवा एक सम्पादक को दिया गया। सम्पादकजी एक हिन्दी-साप्ताहिक पत्र निकालते थे। जनम-रोगी थे। एक ओर नोन तेल लकड़ी की चिन्ता; दूसरी ओर देश की, तीसरी ओर लड़के की जो बक्स मे से टिकट चुरा कर बेच आता था।

इन चिन्ताओं के मारे सम्पादकजी घुने बाँस हो गए थे। लड्डू पाकर वे बड़े प्रसन्न हुए और बोले—"मैं अपने पत्रों में इनकी बढ़िया समालोचना करूँगा।"

अभागचन्द—"दाम केवल आठ रुपए सेर रक्खा है।"

सम्पादक—"दामों का भी उल्लेख कर दूँगा, कुछ न कुछ बिक्री अवश्य होगी।"

अभागचन्द—"आवश्यकतानुसार और मँगा लीजिएगा; दाम चाहे जब मिल जायँगे।"

सम्पादक—"ठीक है; अवश्य मँगाऊँगा। मैं गृहस्थी की चिन्ता के मारे आधा सिड़ी हो गया हूँ।"

अभागचन्द—इनमें ब्राह्मी भी पड़ी है।

सम्पादक—रात को नींद नहीं आती।

अभागचन्द—विजया की भी पुट है।

सम्पादक—यह सब अजीर्ण और कोष्ठबद्धता की कृपा है।

अभागचन्द—त्रिफला शुद्ध करके डाला है; मेदा, महा-मेदा, कौंची, अवन्तिका, विदारीकन्द, खरेटी, गंगेरन, असगंध, गंधारी, पिंडारी आदि सभी चीजें पड़ी हैं।

सम्पादक—तब अवश्य लाभ होगा।

अभागचन्द—लाभ ही के तो दाम हैं।

सम्पादक—कहिए तो आपका विज्ञापन छाप दूँ।

अभागचन्द—अभी तो थोड़े ही लड्डू बनाए हैं। खैर, छाप दीजिए, और बना लिए जायँगे। बात यह है कि परिश्रम बहुत पड़ता है।

सम्पादक—"क्यों नहीं।"

(२) बलकारक लड्डू

कुछ ही दिनों के बाद अभागचन्द को लड्डू और बनाने पड़े। कारण यह कि चारों ही सज्जनों ने सेर-सेर दो-दो सेर

के लिए कहला भेजा। यों लगभग ५०) ६०) के माल की खपत हो गई, किन्तु वसूल अभी एक पाई भी नही हुई थी। उधर सम्पादकजी ने समालोचना छाप दी थी और प्रति सप्ताह विज्ञापन भी छप रहा था। इससे कुछ बाहरी आर्डर भो आ गए थे, लेकिन उसके लिए माल नहीं था। दाम मिलें तो माल बने, वरना बने कहाँ से? अभागचन्द समझते थे कि सभी गाहक भलेमानस हैं, बड़े आदमी हैं और प्रतिष्ठित हैं। उन्हें अभी यह अनुभव नहीं हुआ था कि शीघ्र दाम चुकानेवाले दूसरे होते हैं। बड़े आदमियो की तो बातें बड़ी हुआ करती हैं। वे प्रतिदिन चारो महानुभावो के यहाँ किसी न किसी बहाने चक्कर काट आया करते थे; कभो कभो अपनी दीन-दशा की ओर भी संकेत कर देते थे, पर ये आदमी मानो इनकी बात का मतलब ही नहीं समझते थे। अन्त में जब बाहरी ग्राहको के उलाहने आने लगे तब उन्होंने सोचा कि अब बिना तक़ाज़ा किए काम न चलेगा। अब तकाजे के विचार से अपने मन को पक्का कर के जाते। पर वहाँ जाने पर कच्चे पड़ जाते और इधर उधर की बातें करके लौट आते। मार्ग मे अपने को बहुत कुछ धिक्कारते और घर आकर खटिया पर सुस्त पड़ रहते।

एक दिन अभागचन्द ने मन ही मन प्रतिज्ञा कर ली कि चाहे जो हो बिना तक़ाज़ा किए न मानूँगा। अपना रुपया है, क्या कोई फाँसी थोड़े ही दे देगा।

दूसरे दिन अभागचन्द तकाज़े को चले। क्रोध था, पर दिल भी धड़क रहा था। पहले म्यूनिस्पल कमिश्नर के यहाँ गए। थोड़ी देर इधर-उधर की बातें करने के बाद जब इन्होंने लड्डूओं के रुपए माँगे तब उन्होंने आश्चर्य-चकित होकर कहा—"रुपए! मैं तो यह समझ रहा था कि आप इसे मुझे

नज़र कर रहे हैं। न जाने कितने लोग कुछ न कुछ भेंट मुझे दे जाते हैं। आख़िर मैं भी तो उनके काम आता हूँ।"

अभागचन्द ने कहा—"नहीं साहब, मैंने तो आपको गोल दिए थे। म्यूनिस्पल कमिश्नर ने पहले तो आँखें दिखाईं और फिर कहा पन्द्रह दिन बाद बात कीजिएगा।"

आनरेरी मजिस्ट्रेट ने इन्हें मारने को रूल उठाई और कहा—"तेरे बाप से लिए जाँय तो ले लीजियो, कम्बख्त ने जाने क्या भेज दिया। सूरन-पाग सा।"

कौंसिल के मेम्बर को इस बात पर बड़ा आश्चर्य हुआ कि लड्डू उसे लोक-सेवा के लिए बली बनाने को नहीं, बल्कि रुपए वसूल करने के लिए दिए गए थे। बहुत-सी खरी-खोटी सुनाने के बाद वह बोला—"घबराइये मत, मैं अब कौंसिल मे प्रस्ताव करने वाला हूँ कि लोग ताकत की दवा के नाम से न जानें क्या बेच कर पब्लिक को बीमार किए डाल रहे हैं। सरकार को चाहिए कि बनावटी वैद्यों की बाकायदा रजिस्ट्री करे और इनकी दवाओं की जाँच कराया करे। आपके लड्डूओं ने मेरे स्वास्थ्य का ढेर कर दिया। मैं आपकी रिपोर्ट करूँगा, पुलीस मे।"

सम्पादकजी ने कहा कि "लड्डुओं से सचमुच लाभ हुआ, रही दामों की सो आपके लड्डुओं के दाम १२) हुए; परन्तु मेरे विज्ञापन के आप पर ५४) हो चुके हैं। १२) काट कर बाक़ी देदीजिए। चीज़ आपकी सचमुच अच्छी थी।"

अभागचन्द ने कहा—"मैं तो समझता था आप विज्ञापन विना मूल्य के छाप रहे हैं।"

सम्पादक—"मैं भी यही समझता था कि लड्डू आप मुझे विना मूल्य दे रहे हैं। पर घोड़ा घास से यारी करेगा तो खायगा क्या। अतएव आपके लड्डुओं के और मेरे विज्ञापन

के दाम मॉगना ठीक ही है। तो बतलाइए कब भेज दीजिएगा बाकी रुपया ?"

× × × ×

अभागचन्द अपना-सा मुँह लेकर घर चले आए। पॉच-छ दिन बाद उन्हे एक समन मिला। ज्ञात हुआ कि घरके बाहर कूड़ा इकट्ठा करने के अपराध में म्युनिस्पैलटी ने उन पर मुक़दमा चलाया है।

इसके एक दिन बाद फिर समन आया। मालूम हुआ कि दफा ३४ में पुलिस ने चालान कर दिया है। मुकद्दमा किसी आनरेरी मजिस्ट्रेट की अदालत मे है।

बेचारे अभागचन्द बड़ी सॉसत मे पड़े। कुछ समझ में ही नहीं आया कि क्या किया जाय।

किसो ने सलाह दी कि वकील पूरनघाघ साहब बड़े तजुर्बेकार हैं। उन्होंने न जाने कितनी रियासतें इधर-उधर कर दी हैं, उनसे सलाह लो। बेचारे अभागचन्द वकील साहब के यहाॅ पहुॅचे। लाल कानी ऑख-युक्त उनका काला चेचकी चहरा और मक्का के भुट्टे जैसी दाढ़ी देखते ही इनके होश गुम हो गए। उन्होंने बड़ी रुखाई से पूछा—"क्या है?" इन्होंने बल-कारक लडडुओ का सारा हाल सुनाया। सुन कर वकील साहब मुस्कराए, जिससे उनका चेहरा और भी भयानक जॅचने लगा। वकील साहब ने कहा तुम्हारे पास रुपए भी हैं या ऐसे ही मुकद्दमे की पैरवी करने निकल पड़े हो ?"

इन्होने हाथ जोड़ कर अपनी दीनता की कहानी सुनाई। वकील साहब बोले—"तुम परले सिरे के अहमक हो, जाओ म्युनिस्पल कमिश्नर साहब और आनरेरी मजिस्ट्रेट साहब से माफी मॉग कर अपना पिंड छुड़ाओ वरना कहीं के न रहोगे, भाग जाओ।

अभागचन्द उठ कर चले, पर चलते-चलते कुछ ठिठके और इन्होंने मुड़ कर वकील साहब की ओर देखा। वकील ने पूछा "अब और क्या चाहते हो ?"

अभागचन्द—हुजूर, अगर नाराज़ न हो तो एक बात पूछना चाहता हूँ।"

वकील—"बोलो, क्या ?"

अभागचन्द—ये लोग लड्डू खाकर मुझसे तन क्यों गए और क्यों लड़ने को तैयार हो गए जब कि लड्डुओं में मैंने माल लगाया था और उनसे इन लोगों को लाभ भी हुआ।

वकील—"तुम परले सिरे के बेवकूफ़ हो। भला ताकत की दवा की कीमत पेशगी ली जाती है या बाद में ? सोचो, जब कोई कमज़ोर तुम से ताकत की दवा लेने आयगा तब वह कमज़ोर होगा। मगर जब उसे ताकत की दवा मिल जायगी और उससे उसे फायदा होगा तब वह खुद ताकतवर हो जायगा। तुम्हारे लड्डुओं से अगर इनका फ़ायदा न हुआ होता तो जरूर दाम मिल जाते, अब जब कि उनमें ताकत आगई, तुम सरीखे दुबले-पतले को दाम देना पूरी हिमाक़त है। पहले तुम उनसे ज्यादा ताकतवर थे, अब तुम्हारी दवा के लड्डू खाकर वे तुम से ज्यादा ताकतवर हो गए। जब तुम उनके यहाँ तकाजा करने गए थे तो बिना पिटे लौट आए इसमें अपनी खुशकिस्मती समझो।"

अभागचन्द इन बातों को सोचते हुए घर लौटे और स्त्री से बोले—"ताकत की दवा की कीमत तुरन्त ले लेनी चाहिए नहीं तो फिर नहीं मिलती। लोग दवा खाकर ताकतवर हो जाते हैं और तक़ाजा करो तो मार-पीट पर उतारू हो जाते हैं।"

स्त्री ने कहा—"ठीक तो है। यह बात हम लोगों को पहले नहीं सूझी।"

अभागचन्द ने रुखाई से कहा—"महादेवजी को भी नहीं सूझी थी, जब उन्होंने भस्मासुर को वर दिया था।"

प्रश्न और अभ्यास

१—भगवान् की बाहें लम्बी हैं, वह पत्थर के भीतर रहनेवाले कीड़ों को भी भोजन देता है—इस वाक्य से क्या अभिप्राय समझते हो ?

२—जिस समय अभागचन्द म्यूनिसपल कमिश्नर, आनरेरी मजिस्ट्रेट, कौन्सिल के मेम्बर तथा सम्पादकजी के पास गए, उस समय उन लोगों ने उन्हें क्या जवाब दिया ? संक्षेप मे लिखो।

३—इस कहानी से तुम्हे क्या शिक्षा मिलती है ?

४—महादेवजी ने भस्मासुर को क्या वर दिया था ?

५—कटु अनुभव, अपना-सा मुँह लेकर चले आना, होश गुम हो जाना, पिण्ड छुड़ाना, कहीं का न रहना—इनके अर्थ लिखो और इन्हें अपने वाक्यों में प्रयोग करो।

६—लोग दवा खाकर ताक़तवर हो जाते है और तक़ाज़ा करो तो मार-पीट पर उतारू हो जाते है—इस वाक्य का वाच्य-परिवर्तन करो।

६—यशोदा-विलाप

(लेखक—पं० अयोध्यासिह उपाध्याय "हरिऔध")

[उपाध्यायजी निज़ामाबाद जिला आज़मगढ़ के रहनेवाले हैं। आप पहले सदर कानूनगो थे। सन् १९२३ मे आपने पेंशन ले ली और इस समय आप विश्व-विद्यालय, काशी मे हिन्दी के अध्यापक हैं।

आपका स्थान हिन्दी के श्रेष्ठ कवियों में है। आपने क
चाल की भाषा तथा मुहावरों का प्रयोग करके एक नया श्र
कर दिया है। आप एक कुशल गद्य-लेखक भी हैं। आ
का ठाठ, अधखिला फूल, प्रिय-प्रवास, चुभते चौपदे, चोख
कई ग्रन्थ रचे हैं। इन सब में प्रिय-प्रवास नामक महाक
प्रसिद्ध है। उसी में से यह अंश लिया गया है।]



प्रिय सुत वह मेरा प्राण प्यारा कहाँ है,
दुख-जलनिधि डूबी का सहारा कहाँ है।
लख मुख जिसका मैं आज लौं जी सकी हूँ,
वह हृदय हमारा नैन-तारा कहाँ है ॥१॥

पल-पल जिसके मैं पंथ को देखती थी,
निशि-दिन जिसके ही ध्यान में थी बिताती।
उर पर जिसके है सोहती मुक्त-माला,
वह नव नलिनी से नैनवाला कहाँ है ॥२॥

मुझ विजित-जरा का एक आधार जो है,
वह परम अनूठा रत्न सर्वस्व मेरा।
धन मुझ निधनी का, लोचनों का उजाला,
सजल जलद की सी कांतिवाला कहाँ है ॥३॥

प्रति दिन जिसको मैं अंक मे नाथ लेके,
निज सकल कुअंकों की क्रिया कीलती थी।
अति प्रिय जिसको है वस्त्र पीला निराला,
वह किशलय के से अंगवाला कहाँ है ॥४॥

वर बदन बिलोके फुल्ल अंभोज ऐसा,
करतल-गत होता व्योम का चन्द्रमा था।
मृदु रव जिसका है रक्त सूखी नसों का,
वह मधुमयकारी मानसों का कहाँ है ॥५॥

रसमय वचनों से नाथ जो सर्वदा ही,
मम सदन बहाता स्वर्ग-मंदाकिनी था।
श्रुति-पुट टपकाता बूँद जो था सुधा की,
वह नव खनि न्यारी मंजुता की कहाँ है ॥६॥

स्वकुल-जलज का है जो समुत्फुल्लकारी,
मम परम निराशा-यामिनी का विनाशी।
व्रज-जन-विहंगों के वृन्द का मोददाता,
वह दिनकर-शोभी रामभ्राता कहाँ है ॥७॥

मुख पर जिसके है सौम्यता खेलती-सी,
अनुपम जिसका हूँ शील सौजन्य पाती।
पर-दुख लख के है जो समुद्विग्न होता,
वह सरलपने का स्वच्छ सोता कहाँ है ॥८॥

गृह-तिमिर निराशा का समाकीर्ण जो था,
निज-मुख-द्युति से है जो उसे ध्वंसकारी।
सुखकर जिससे है कामिनी-जन्म मेरा,
वह रुचिकर चित्रों का चितेरा कहाँ है ॥९॥

सहकर कितने ही कष्ट औ संकटों को,
बहु यतन कराके पूज के निर्जरों को।
यक सुअन मिला है जो मुझे यत्न द्वारा,
प्रियतम वह मेरा कृष्ण प्यारा कहाँ है ॥१०॥

मुखरित करता जो सद्म का था शुकों-सा,
कलरव करता था जो खगों-सा वनों में।
सुध्वनित पिक लौं जो वाटिका था बनाता,
वह बहु-विधि कंठों का विधाता कहाँ है ॥११॥

खग-मृग जिसके थे गान से मत्त होते,
तरुगण-हरियाली थी महा दिव्य होती।
पुलकित करती थी जो लता वेलि सारी,
उस कल मुरली का नादकारी कहाँ है ॥१२॥

जिस प्रिय बिन सूना ग्राम सारा हुआ है,
प्रति सदन बड़ी ही छा गई है उदासी।
जिस बिन ब्रज-भू में है न होता उजाला,
वह निपट निराली कांतिवाला कहाँ है ॥१३॥

बन-बन फिरती हैं खिन्न गाएँ अनेकों,
शुक भर-भर आँखें भौन को देखता है।
सुधि कर जिसकी है सारिका नित्य रोती,
वह निधि मृदुता का मंजु मोती कहाँ है ॥१४॥

गृह-गृह अकुलाती गोप की पत्नियाँ हैं,
पथ-पथ फिरते हैं ग्वाल भी उन्मना हो।
जिस कुँवर बिना मैं हो रही हूँ अधीरा,
वह खनि सुखमा का स्वच्छ हीरा कहाँ है ॥१५॥

प्रश्न और अभ्यास

१—मन्दाकिनी, जलद, किशलय, सोता, मुखरित, सद्म, खनि, कलरव और उन्मना का अर्थ बताओ।

२—करतल-गत, निराशा-यामिनी, दुख-जलनिधि, मुक्त-माला, और स्वकुल-जलज से क्या अभिप्राय समझते हो? इनमें कौन-से समास हैं।

३—चौदहवें पद्य से तुम जो अभिप्राय समझते हो, वह स्पष्ट करके लिखो।

४—बारहवें पद्य में जो संज्ञायें आई हैं, उनकी पदव्याख्या करो।

७—भामाशा

(लेखक—बाबू राधाकृष्णदास)

[आप भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के फुफेरे भाई थे। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम काल के हिन्दी लेखकों में आपका अच्छा स्थान है। आपने नागरी प्रचारिणी सभा, काशी के कार्य में यथेष्ट सहायता की थी। आप कुछ काल तक इस सभा के मंत्री भी रहे थे।

आपके ग्रन्थों का संग्रह 'राधाकृष्ण-ग्रन्थावली' के नाम से इण्डियन प्रेस, प्रयाग से प्रकाशित हुआ है।

(स्थान—मेवाड़ का सीमा प्रान्त)

[आगे-आगे घोड़े पर सवार राणा प्रतापसिंह, पीछे-पीछे घोड़े पर कुछ सरदार लोग]

राणा—मेरे विपत्ति के सहायक भाइयो, मेरे साथ तुम लोगों ने बड़े-बड़े दुःख उठाये हैं और अन्त में अब यह दिन आया कि मुझ भाग्यहीन के साथ तुम्हें भी अपनी प्यारी जन्म-भूमि को छोड़ना पड़ता है।

एक सरदार—अन्नदाता! क्या आप अपने लिए यह कष्ट उठा रहे हैं? जिस जन्म-भूमि की रक्षा में आप इतने दुःख सह रहे हैं, वह क्या हमारी नहीं है? उसकी रक्षा करना क्या हमारा कर्त्तव्य नहीं है?

राणा—पर भाई! इस अधम प्रताप के किए जन्म-भूमि की रक्षा भी तो नहीं हुई?

सरदार—क्या हुआ पृथ्वीनाथ! कोई यह तो न कहेगा कि राणा प्रताप ने सुख की चाह में अपनी जन्मभूमि को दूसरों के हाथ बेचा?

राणा—अपनी आँखों से अपने देश की यह दुर्दशा देखते हुए जीते रहने से तो अनजाने विदेश मे मरना अच्छा है; क्योंकि—

"मरनो भलो विदेश को, जहाँ न अपनो कोय।
माटी खायँ जनावरा, महा महोच्छव होय॥"

अच्छा चलो भाइयो ! चलो, अब इस स्थान की मोह-माया छोड़ो।

(सब लोग सजल नेत्रों से बेर बेर पीछे की ओर देखते-देखते घोडा बढ़ाते हैं। दूर से घोडा दौड़ाते हुए तथा हाथ उठा कर इन लोगों को रोकते हुए भामाशा दिखाई देते हैं)

भामाशा—(पुकार कर) ओ मेवाड़ के मुकट ! ओ हिन्दू नाम के आश्रयदाता ! तनिक ठहरो; इस दास की एक विनती सुनते जाओ। भामाशा को अकेले छोड़ कर मत जाओ।

राणा—(घोड़ा रोक कर) भामाशा ! ऐसे घबराये हुए क्यों आ रहे हो ? (भामाशा पास आ जाते हैं और राणा के पैरों पर रोते हुए गिरते हैं। राणा घोडे से कूद कर भामाशा को उठा कर छाती से लगाते हैं।)

राणा—मंत्रिवर ! तुम ऐसे धीर वीर होकर आज ऐसे अधीर क्यों हो रहे हो ?

भामाशा—अन्नदाता ! आपके अन्न से पला हुआ यह शरीर सुख से कालक्षेप करे और आप वन-वन की लकड़ी चुनें और पहाड़-पहाड़ टकरायँ ! धिक्कार है ऐसे धन पर ! धिक्कार ऐसे सुख पर ! धिक्कार है ऐसे जीवन पर !

राणा—भामाशा ! जो भाग्य में होता, वही होता है।

भामाशा—धर्मावतार ! आज मेरी एक विनती स्वीकार करो, यही मेरी अन्तिम प्रार्थना है ?

राणा—क्या प्रतापसिंह ने कभी तुम्हारी बात टाली है ?

भामाशा—तो अन्नदाता, एक बेर फिर मेवाड़ की ओर घोड़े की बाग मोड़ी जाय। इस दास के पास जो पचीसों लाख रुपए की सम्पत्ति दरबार की दी हुई है, उसी से फिर एक बेर सेना एकत्रित की जाय और एक बेर फिर मेवाड़ की रक्षा का उद्योग किया जाय।

(राणा सरदारों की ओर देखते हैं)

भामाशा—यह धन मेरा या मेरे बाप का है? यह सभी इन्हीं चरणों के प्रताप से है।

कविराज—धन्य! मंत्रिवर, धन्य!

जेहि धन हित संसार बन्यो बौरो सो डोलै।
जेहि हित बेचत लोग धर्म अपने अनमोलै॥
जो अनर्थ को मूल सूल हिय में उपजावै।
पिता पुत्र, पति पत्नि, अनुज से अनुज छुड़ावै॥
सो सात पुरुष संचित धनहिं तृन समान तुम तजत हो।
धनि स्वामि-भक्त मंत्री प्रवर ताहू पै तुम लजत हो॥

(बहुत-से राजपूत और भीलों का कोलाहल करते हुए प्रवेश)

सब—महाराज, हम लोगों को छोड़ कर आप कहाँ जा रहे हैं? चलिए, एक बेर और लौट चलिए। जब हम सब कट मरें तब आपका जिधर जी चाहे, पधारें।

राणा—जो आप लोगों की यही इच्छा है तो और चाहिए क्या?

(चारों ओर से 'महाराणा की जय' हिन्दूपति की जय' आदि पुकारते हुए लोग उमंग पूर्वक कूदते उछलते हैं।)

—:o:—

प्रश्न और अभ्यास

१—भामाशा कौन था? राणा से उसने क्या कहा?
२—राणा देश को छोड़ कर कहाँ और क्यों जा रहे थे?

३—कविराज ने धन के विषय में क्या कहा ? समझा कर लिखो।

४—यही मेरी अन्तिम प्रार्थना है—इस वाक्य के प्रत्येक शब्द की पदव्याख्या करो।

८—आत्म-बल

(लेखक—पं० रामचन्द्र शुक्ल)

[शुक्लजी का जन्म संवत् १९४१ में बस्ती ज़िले के अगोना नामक गाँव में हुआ था। इस समय आप हिन्दू-विश्व-विद्यालय, काशी में हिन्दी के अध्यापक हैं। आप हिन्दी के अच्छे विद्वान् तथा गम्भीर समालोचक हैं। आपकी आलोचनाएँ हिन्दी-संसार में बड़े आदर के साथ पढ़ी जाती हैं। आपने बहुत-से पुराने ग्रन्थों का सम्पादन किया है और कई मौलिक पुस्तकें भी लिखी हैं। आपके सम्पादित ग्रन्थों में 'तुलसी-ग्रन्थावली' और 'जायसी-ग्रन्थावली' मुख्य हैं। आपका सबसे प्रसिद्ध ग्रन्थ 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' है, जिसमें हिन्दी के सभी प्रसिद्ध कवियों तथा लेखकों की संक्षिप्त जीवनी दी गई है।

आपकी भाषा बहुत ही गठी हुई और विदेशी शब्दों से रहित होती है।]

विद्वानों का यह कथन बहुत ठीक है कि नम्रता ही स्वतंत्रता की धात्री एव माता है। युवा पुरुष को यह सदा स्मरण रखना चाहिए कि वह बहुत कम बातें जानता है, अपने ही आदर्श से वह बहुत नीचे है, और उसकी आकांक्षाएँ उसकी योग्यता से कहीं बढ़ी हुई हैं। उसे इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि वह अपने बड़ों का सम्मान करे, छोटों और बराबरवालों से कोमलता का व्यवहार करे। ये बातें आत्म-मर्यादा के लिए

आवश्यक है। यह सारा संसार, जो कुछ हम हैं और जो कुछ हमारा है—हमारा शरीर, हमारी आत्मा, हमारे कर्म, हमारे भोग, हमारी घर की और बाहर की दशा, हमारे बहुत-से अवगुण और थोड़े-से गुण सब इसी बात की आवश्यकता प्रकट करते हैं कि हमें अपनी आत्मा को नम्र रखना चाहिए। नम्रता से मेरा अभिप्राय दब्बूपन से नहीं है जिसके कारण बात-बात में मनुष्य दूसरों का मुँह ताकता रहता है, जिससे उसका सङ्कल्प क्षीण और उसकी प्रज्ञा मंद हो जाती है, जिसके कारण वह आगे बढ़ते समय भी पीछे रहता है और अवसर पड़ने पर चटपट किसी बात का निर्णय नहीं कर सकता। मनुष्य का बेड़ा अपने ही हाथ में है, उसे चाहे वह जिधर लगावे। सच्ची आत्मा वही है जो प्रत्येक दशा में प्रत्येक स्थिति के बीच, अपनी राह आप निकालती है।

अब तुम्हें क्या करना चाहिए, इसका ठीक-ठीक उत्तर तुम्हीं को देना होगा, दूसरा कोई नहीं दे सकता। कैसा भी विश्वासपात्र मित्र हो, तुम्हारे इस काम को वह अपने ऊपर नहीं ले सकता। हम अनुभवी लोगों की बातों को आदर के साथ सुनें, बुद्धिमानों की सलाह कृतज्ञतापूर्वक मानें, पर इस बात को निश्चित समझ कर कि हमारे कामों से ही हमारी रक्षा व हमारा पतन होगा, हमें अपने विचार और निर्णय की स्वतन्त्रता को दृढ़तापूर्वक बनाए रखना चाहिए। अपने व्यवहार में कोमल रहो और अपने उद्देश्यों को रक्खो, इस प्रकार नम्र और उच्चाशय दोनों बनो। अपने मन को कभी मरा हुआ न रक्खो। जितना ही जो मनुष्य अपना लक्ष्य ऊपर रखता है, उतना ही उसका तीर ऊपर जाता है।

संसार में ऐसे-ऐसे दृढ़-चित्त पुरुष हो गए हैं जिन्होंने मरते दम तक सत्य की टेक नहीं छोड़ी, अपनी आत्मा के विरुद्ध

कोइ काम नहीं किया। राजा हरिश्चन्द्र के ऊपर इतनी-इतनी विपत्तियाँ आईं, पर उन्होने अपना सत्य नही छोड़ा। उनकी प्रतिज्ञा यही रही—

चंद्र टरै सूरज टरै, टरै जगत् व्यवहार।
पै दृढ़ श्री हरिचन्द को, टरै न सत्य विचार॥

महाराणा प्रतापसिंह जंगल-जंगल मारे-मारे फिरते थे, अपनी स्त्री और बच्चों को भूख से पीड़ित देखते थे, पर उन्होने उन लोगों की बात न मानी जिन्होंने उन्हे अधीनतापूर्वक संधि करने की सम्मत्ति दी; क्योंकि वे जानते थे कि अपनी मर्य्यादा की चिंता जितनी अपने को हो सकती है, उतनी दूसरे को नहीं। हक़ीकतराय नामक वीर बालक को देखो जिसने जल्लाद की चमकती तलवार गरदन पर देख कर भी काज़ी के सामने धर्म्म परित्याग करना स्वीकार नहीं किया। सिक्ख-गुरु गोविंदसिंह के दोनों लड़के जीते जी दीवार मे चुन दिए गए, पर वे अपना धर्म्म छोड़ कर दूसरे का धर्म स्वीकार करने के नाम पर 'नहीं', 'नहीं', करते रहे। मै निश्चयपूर्वक कहता हूँ कि जो युवा पुरुष सब बातों मे दूसरो का साहस चाहते हैं, जो सदा एक न एक नया अगुआ ढूँढ़ा करते हैं और उसके अनुयायी बना करते हैं, वे आत्म-संस्कार के कार्य्य मे उन्नति नहीं कर सकते। उन्हें स्वयं विचार करना, अपनी सम्मति आप स्थिर करना, दूसरों की उचित बातों का मूल्य समझते हुए भी उनका अंधभक्त न होना सीखना चाहिए। तुलसीदासजी को लोक मे जो इतनी सर्वप्रियता और कीर्ति प्राप्त हुई, उनका दीर्घ जीवन जो इतना महत्त्वमय और शांतिमय रहा, सब इसी मानसिक स्वतंत्रता, निर्द्वन्द्वता और आत्म-निर्भरता के कारण। एक इतिहासकार कहता है—"प्रत्येक मनुष्य का भाग्य उसके हाथ मे है। प्रत्येक मनुष्य अपना जीवन-निर्वाह श्रेष्ठ रीति से

कर सकता है। यही मैंने किया है और यदि अवसर मिले तो फिर यही करूँ।" इसे चाहे स्वतंत्रता कहो, चाहे आत्म-निर्भरता कहो, चाहे स्वावलंबन कहो, जो कुछ कहो, यह वही भाव है जिससे मनुष्य और दास में भेद जान पड़ता है। यह वही भाव है जिसकी प्रेरणा से राम लक्ष्मण ने घर से निकल बड़े पराक्रमी वीरों पर विजय प्राप्त की; यह वही भाव है जिसकी प्रेरणा से हनूमान ने अकेले सीता की खोज की, यह वही भाव है जिसकी प्रेरणा से कोलंवस ने अमेरिका इतना बड़ा महाद्वीप ढूंढ निकाला। चित्त की इसी वृत्ति के वल पर सूरदास ने अकवर के बुलाने पर फतेहपुर सीकरी जाने से इनकार किया था और कहा था—

"कहा मोको सीकरी सों काम ?"

इस चित्त-वृत्ति के वल से मनुष्य इसलिए परिश्रम के साथ दिन काटता और दरिद्रता के दुःख को झेलता है जिसमें उसे ज्ञान के अमित भांडार में से कुछ थोड़ा बहुत मिल जाय। इसी चित्त-वृत्ति के प्रभाव से हम प्रलोभनों का निवारण करके उन्हें पद-दलित करते हैं, कुमंत्रणाओं का तिरस्कार करते हैं और शुद्ध चरित्र के लोगों से प्रेम और उनकी रक्षा करते हैं। इसी चित्तवृत्ति के प्रभाव से युवा पुरुष कार्य्यालयों में शांत और सच्चे रह सकते हैं और उन लोगों की बातों में नहीं आ सकते जो आप अपनी मर्य्यादा खोकर दूसरों को भी अपने साथ बुराई के गड्ढे में गिराना चाहते हैं। इसी चित्तवृत्ति के प्रताप से बड़े-बड़े लोग ऐसे समय में भी, जब कि उनके और साथियों ने उनका साथ छोड़ दिया है, अपने महत्कार्यों में अग्रसर होते गए हैं और यह सिद्ध करने में समर्थ हुए हैं कि निपुण, उत्साही और परिश्रमी पुरुषों के लिए कोई अड़चन ऐसी नहीं जो कहे कि 'वस यहीं तक, और आगे न बढ़ना।' इसी चित्तवृत्ति की दृढ़ता के सहारे दरिद्र लोग दरिद्रता से और अपढ़

लोग अज्ञानता से निकल कर उन्नत हुए हैं तथा उद्योगी और अध्यवसायी लोगों ने अपनी समृद्धि का मार्ग निकाला है। इसी चित्तवृत्ति के अवलंबन से पुरुषसिंहो को यह कहने की क्षमता हुई है कि "मैं राह ढूँढूँगा था राह निकालूँगा।" यही चित्तवृत्ति थी जिसकी उत्तेजना से शिवाजी ने थोड़े-से वीर मरहठे सिपाहियो को लेकर शत्रुओं की बड़ी भारी सेना पर छापा मारा और उसे तितर-बितर कर दिया। यही चित्त-वृत्ति थी जिसके सहारे से एकलव्य बिना किसी गुरु या संगी साथी क जंगल के बीच निशाने पर तीर पर तीर चलाता रहा और अन्त मे एक बड़ा धनुर्धर हुआ। यही चित्तवृत्ति है जो मनुष्य को सामान्य जनों से उच्च बनाती है, उसके जीवन को सार्थक और उद्देश्यपूर्ण करती है तथा उसे उत्तम संस्कारो के ग्रहण करने के योग्य बनाती है। जिस मनुष्य की बुद्धि और चतुराई उसके दृढ़ हृदय के ही आश्रय पर स्थित रहती है, वह जीवन और कर्मक्षेत्र मे स्वयं भी श्रेष्ठ और उत्तम रहता है और दूसरों को भी श्रेष्ठ और उत्तम बनाता है। प्रसिद्ध उपन्यासकार स्काट एक बार ऋण के बोझ से बिल्कुल दब गया। उसके मित्रो ने उसकी सहायता करनी चाही, पर उसने यह बात स्वीकार नहीं की और स्वयं अपनी प्रतिभा का ही सहारा लेकर अनेक उपन्यास थोड़े दिनो के बीच लिख कर लाखो रुपए का ऋण उसने सिर पर से उतार दिया।

प्रश्न और अभ्यास

१—धात्री शब्द स्त्रीलिंग है। उसका पुल्लिंग धाता है। दोनो का अर्थ बतलाओ।

२—किस प्रकार से मनुष्य में आत्म-निर्भरता आ सकती है?

३—संसार के कुछ दृढ-चित्त पुरुषों के उदाहरण बतलाओ। प्रत्येक के विशेष गुण का वर्णन करो।

४—निम्नलिखित शब्दों को अपने वाक्यों मे प्रयोग करो—मर्य्यादा पूर्वक; अनिवार्य्य; अध्यवसाय; सर्वप्रियता।

५—'चित्तवृत्ति के बल' पर एक छोटा-सा निबन्ध लिखो।

६—इन वाक्यों का वाच्य-परिवर्तन करो—मैं आम खाता हूँ। कपडा फाडा जा रहा है। बिस्तर फैलाया जाने दो। वह बच्चे को मिठाई खिला रहा है।

६—भरत-मिलाप

(लेखक—श्री केशवदास)

[आपका जन्म संवत् १६१२ में हुआ और मृत्यु संवत १६७४ के आस-पास हुई। आप सनाढ्य ब्राह्मण थे और ओडछा-नरेश महाराज रामसिंह के भाई इन्द्रजीतसिंह की सभा मे रहते थे। आप संस्कृत एवं हिन्दी के बहुत बडे विद्वान् तथा एक प्रतिभाशाली कवि थे। आपकी गणना हिन्दी के नव-रत्नों में की जाती है। आपके रचे हुए ग्रथों मे कविप्रिया, रसिकप्रिया, रामचन्द्रिका आदि मुख्य हैं। संस्कृत से पूर्ण परिचित होने के कारण आपकी भाषा में संस्कृत शब्दोंका बाहुल्य है।



आचार्य केशवदास

यद्यपि आपके पहले ही हिन्दी-साहित्य में रीति-ग्रन्थों का निर्माण

आरम्भ हो गया था, तथापि आपकी रचनाओं के सामने वे सब ग्रन्थ फीके पड गए। इसलिए हिन्दी-साहित्य में रीति-ग्रन्थों के प्रथम आचार्य आपही माने जाते हैं।

निम्नलिखित पाठ रामचन्द्रिका से लिया गया है।]

(१)

श्रीराम:—

हनुमंत बलो तुम जाहु तहाँ।
मुनि-वेष भरत्त बसन्त जहाँ॥
रिषि के हम भोजन आजु करैं।*
पुनि प्रात भरत्तहिं अंक भरैं॥१॥

हनुमंत बिलोके भरत ससोके अंग सकल मलधारी।
बलका पहिरे तन सीस जटा गन हैं फल मूल अहारी॥
बहु मंत्रिन-गन मे राजकाज मे सब सुख सों हित तोरे।
रघुनाथ पादुकनि मन बच प्रभु गुनि सेवत अंजुलि जोरे॥२॥

हनुमान:—

सब शोकनि छाँड़ो, भूषण माँड़ो, कीजै बिविध बधाए।
सुरकाज सँवारे, रावन मारे, रघुनन्दन घर आए॥
सुग्रीव सुजोधन सहित बिभीषन, सुनहु भरत सुभ गीता।
जय कीरति ज्यौं सँग, अमल सकल अँग, सोहत लछमन सीता॥३

सुनि परम भावती भरत बात।
भउ सुख-समुद्र में मगन गात॥
यह सत्य किधौं कछु स्वप्न ईस।
अब कहा कह्यौ मो सन कपीस॥४॥

(२)

जैसे चकोर लीलै अँगार।
तेहि भूल जात सिगरी सँभार॥

---

* आज हम भरद्वाज मुनि के यहाँ भोजन करेंगे।

जी उठत उगत ज्यौं उधधिनन्द॰ ।
त्यौं भरत भए सुनि रामचन्द्र ॥५॥
ज्यौं सोइ रहत सब मूर† हीन‡ ।
अति है अचेत यद्यपि प्रवीन ॥
ज्यौं उठत, उवत§ हँसि करत भोग ।
त्यौं रामचन्द्र सुनि अवध लोग ॥६॥
जहँ तहँ गज गाजैं दुन्दुभी दीह बाजै ।
बहु वरन पताका स्यंदनास्वादि राजै ॥
भरत सकल सैना मध्य यों वेष कीन्हे ।
सुरपति जनु आए मेघमालानि लीन्हे ॥७॥
सकल नगरवासी भिन्न सैनानि॥ साजैं ।
रथ सुगज पताका झुंड झुंडानि राजै ॥
थल थल सब सोभैं सुभ्र सोभानि छाई ।
रघुपति सुनि मानौ औधिसी आज आई≡ ॥८॥

(६)

आवत विलोकि रघुवीर लघु वीरऽ तजि,
व्योम गति+ भूतल विमान तब आइयो ।
राम-पग-पद्म सुख सद्म कहँ बन्धु जुग,
दौरि तब पट-पद समान सुख पाइयो ॥
चूमि मुख सूँघि सिर अंक रघुनाथ धरि,
अश्रुजल लोचननि पेखि उर लाइयो ।
देव मुनि वृद्ध परसिद्ध सब सिद्ध जन,
हर्षि तन पुष्प बरखानि बरखाइयो ॥६॥

॰ चन्द्रमा । † सूर्य । ‡ अस्त होने पर । § उदय होने पर । ॥ समूह । ≡ रघुपति आगमन सुन मानो स्वयं अयोध्यापुरी ही उन्हें लेने के लिए आई है । ऽ छोटे भाई । + आकाश में चलना छोड़ कर ।

भरत चरन लछिमन परे लछिमन के शत्रुघ्न ।
सीता पग लागत दियो आसिष सुभ शत्रुघ्न ॥१०॥
मिले भरत अरु शत्रुहन सुग्रीवहि अकुलाइ ।
बहुरि बिभीषन कौ मिले अङ्गद को सुख पाइ ॥११॥
लै सुग्रीव विभीषनहि करि-करि विनय अनन्त ।
पाइन परे बसिष्ठ के कविकुल बुधि बलवन्त ॥१२॥

प्रश्न और अभ्यास

१—भरत-मिलाप के समय का वर्णन सरल गद्य में लिखो ।

२—बलका, सुभ, कीरति, लछिमन, अगम, बरन इन शब्दो के शुद्ध रूप लिखो ।

३—'उदधि-नन्द' शब्द के क्या अर्थ हैं ?

४—केशव कवि के सम्बन्ध मे जो जानते हो, उसे सरल गद्य में लिखो ।

१०—आँसू

(लेखक—श्री० पण्डित बालकृष्ण भट्ट)

[ये जाति के मालवीय ब्राह्मण थे । इनका जन्म संवत् १९०१ वि० में हुआ और मृत्यु सं० १९७१ वि० में हुई । इन्होंने एन्ट्रेंस तक अँग्रेज़ी पढ़ी थी । पहले ये प्रयाग के मिशन स्कूल में अध्यापक हुए, फिर शिवराखन पाठशाला मे हैड पण्डित हुए और पश्चात् कायस्थ-पाठशाला-कालेज में संस्कृत के प्रोफेसर हो गए और पुनः क्रमसे "समृाट्" नामक पत्र और हिन्दी-शब्द-सागर नामक कोश के सम्पादक हुए । संवत् १९३२ वि० में निकलने वाले "हिन्दी-प्रदीप" नामक पत्र का सम्पादन आपने ३० वर्ष तक किया । इस पत्र में आप नैतिक,

...आदि, साहित्यिक सब प्रकार के छोटे-छोटे गद्य-प्रबन्ध निकालते रहे। ...अपने लेखों में मुहावरों का अच्छा प्रयोग करते थे। व्यंग्य और हास्य भी आपके लेखों में प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं। आपके रचित ग्रन्थों में "सौ अजान और एक सुजान", "नूतन ब्रह्मचारी", "साहित्य-सुमन" और "शिक्षादान" प्रकाशित हो चुके हैं। साहित्य-सुमन से हम "आँसू" नामक निबन्ध उद्धृत करते हैं।]

मनुष्य के शरीर में आँसू भी गड़े हुए खजाने के समान हैं। जिस तरह कभी कोई नाजुक वक्त आ पड़ने पर संचित पूँजी ही काम देती है, उसी तरह हर्ष, शोक, भय, प्रेम इत्यादि भावों को प्रकट करने में जब इन्द्रियाँ स्थगित होकर हार मान बैठती हैं, तब आँसू ही उन-उन भावों को प्रकट करने में सहायक होता है, चिरकाल के वियोग के उपरान्त जब किसी दिली दोस्त से मुलाक़ात होती है, तो उस समय हर्ष और प्रमोद के उफान में अंग-अंग ढीले पड़ जाते हैं; वाष्प-गद्गद् कण्ठ रुँध जाता है, जिह्वा इतनी शिथिल पड़ जाती है कि उससे मिलने की खुशी को प्रकट करने के लिए एक-एक शब्द मनों बोझ-सा मालूम पड़ता है। पहले इसके कि वह शब्दों से अपना असीम आनन्द प्रकट करे, सहसा आँसू की नदी उसकी आँख में उमड़ आती है। सच्चे भक्त और उपासक की कसौटी भी इसी से हो सकती है। अपने उपास्यदेव के नाम-संकीर्तन में जिसे अश्रुपात न हुआ, मूर्ति का दर्शन कर प्रेमाश्रुपात से जिसने उसके चरण-कमलों का अभिषेक न किया, उस दाम्भिक को भक्ति के आभास-मात्र से क्या फल? सरस कोमल चित्तवाले अपने मनोगत सुख-दुःख के भाव को छिपाने की हज़ार-हज़ार चेष्टा करते हैं कि दूसरा कोई उनके चित्त की गहराई को न थहा सके, पर अश्रुपात भाव-गोपन की सब चेष्टा को व्यर्थ कर देता है। मोती-सी आँसू की बूँदें जिस समय सहसा नेत्र से झरने

लगती हैं, उस समय उसे रोक लेना बड़े-बड़े गम्भीर प्रकृतिवालो की भी शक्ति के बाहर होता हैं।

यदि सृष्टिकर्ता अत्यन्त शोक मे अश्रुपात को प्राकृतिक न कर देता, तो वज्रपात-सम दारुण दु:ख के वेग को कौन संभाल सकता ? इसी भावार्थ का पोषक भवभूति का नीचे लिखा श्लोक है—

पूरोत्पीड़े तड़ागस्य परीवाह: प्रतिक्रिया;
शोकक्षोभे च हृदयं प्रलापैरेव धार्यते।

अर्थात्—बरसात मे तालाब जब लबालब भर जाता है, तब बाँध तोड़ कर उसका पानी बाहर निकाल देना ही बचाव का सुगम उपाय होता है। इसी तरह अत्यन्त शोक से क्षोभित तथा व्याकुल मनुष्य का अश्रु पात ही हृदय को विदीर्ण होने से बचा लेने का उपाय है। बल्कि ऐसे समय रोना ही राहत है।

कोई शूरवीर, जिसको रण-चर्चा-मात्र सुनकर जोश आ जाता है और जो लड़ाई मे गोली तथा बाण की वर्षा को फूल की तरह मानता है, वीरता की उमंग में भरा हुआ युद्ध-यात्रा के लिए प्रस्थान करने को तैयार खड़ा है। विदाई के समय विलाप करते हुए अपने कुनबा वालो के आँसू की एक-एक बूँद की क्या क़ीमत है, यह वही जान सकता है। वह शशोपञ्ज मे आगे को पाँव रख फिर पीछे को हटा लेता है। वीर और करुणा—ये दो विरोधी रस अपनी-अपनी ओर से उमड़-उमड़ देर तक उसे किंकर्तव्यविमूढ़ किए रहते हैं। आँख मे आँसू उन्हीं सीधे सत्पुरुषों के आता है, जिनके सच्चे सरल चित्त मे कपट और कुटिलाई ने स्थान नहीं पाया है। निठुर, निर्दयी, मक्कार की आँखें, जिसके कट्टर कलेजे ने कभी पिघलना जाना ही नहीं दुनिया के दु:ख पर क्यों पसीजेंगी। प्रकृति ने चित्त का आँख

के साथ कुछ ऐसा सम्बन्ध रख दिया है कि आँखें चित्त की वृत्तियों को चट्ट पहचान लेती हैं और तत्काल तदाकार अपने को प्रकट करने मे देर नहीं करती, तो निश्चय हुआ कि जो बेकलेजे हैं, उनकी बैल-सी बड़ी-बड़ी आँखें देखने ही को हैं, चित्त की वृत्तियो का उन पर कभी असर होता ही नहीं।

मृतक के लिए लोग हजारो-लाखों रुपए खर्च कर आलीशान रौंजे मकरे या कब्रें संगमरमर या संगमूसा की बनवा देते हैं; कीमती पत्थर, मानिक, जमुर्रद से उन्हे आरास्ता करते हैं, पर वे मकबरे क्या उसकी रूह को उतनी राहत पहुँचा सकते हैं, जितनी उसके दोस्त आँसू के कतरे टपका कर पहुँचा सकते हैं?

इस आँसू मे भी भेद है। कितनों का पनीला कपार होता है, बात कहते रो देते हैं। अक्षर उनके मुख से पीछे निकलेगा, आँसुओ की झड़ी पहले ही शुरू हो जायगी। स्त्रियों के जो बहुत आँसू निकलता है, मानो रोना उनके पास गिरो रहता है, इसका कारण यही है कि वे नाम ही की अबला और अधीर हैं। दुःख के वेग मे आँसू को रोकने वाला केवल धीरज है। उसका टोटा यहाँ हरदम रहता है। तब इनके आँसू का क्या ठिकाना। सत्यशाली धीरजवालो को आँसू कभी आता ही नहीं। कड़ी से कड़ी मुसीबत मे दो-चार कतरे आँसू के मानो बड़ी बरकत हैं। बहुत मौको पर आँसू ने गजब कर दिया है। सिकन्दर का कौल था कि अपनी माँ के आँख के एक कतरा आँसू की कीमत मैं बादशाहत से भी बढ़ कर मानता हूँ। रेणुका के अश्रुपात ने ही परशुराम से २१ बार क्षत्रियो का संहार कराया।

कितने ऐसे लोग भी हैं जिन्हे आँसू नहीं आता। इसलिए जहाँ पर बड़ी जरूरत आँसू गिराने की हो तो उनके लिए प्याज का गट्टा पास रखने की बड़ी सहज तरकीब निकाली गई है। प्याज जरा-सा आँख मे छू जाने से आँसू गिरने लगता है।

'किसी को बैंगन बावले, किसी को बैंगन पत्थ'

बहुधा आँसू गिरना भलाई और तारीफ में दाखिल है। हमारे लिए आँसू बड़ी बला है। नज़ले का जोर है, दिन-रात आँखों से आँसू टपकता है। ज्यों-ज्यों आसू गिरता है, त्यों-त्यो बीनाई कम होती जाती हैं। सैकड़ों तदबीरें कर चुके, आँसू का टपकना बन्द न हुआ। क्या जाने, बंगाल की खाड़ीवाला समुद्र हमारे ही कपार मे आकर भर रहा है आँख से तो आँसू चला ही करता है। आज हमने लेख में भी आँसू पर ही कलम चला दी। पढ़नेवाले इसे निरी नहूसत की अलामत न मानकर हमे क्षमा करेंगे।

प्रश्न और अभ्यास

१—इस लेख के लेखक के विषय में तुम क्या जानते हो ?

२—आँसू को गढ़े हुए ख़ज़ाने के माफ़िक क्यों कहा गया है ?

३—किन अवस्थाओं में रोने से राहत मिलती है ?

४—'किसी को बैंगन बावले, किसी को बैंगन पथ्य' इस कहावत का क्या अर्थ समझते हो ?

५—आँखें किस प्रकार चित्त की वृत्तियों को प्रकट कर देती हैं ?

६—नज़ले का जोर है, दिन-रात आँखों से पानी टपकता है। ज्यों-ज्यों आँसू गिरता है त्यों-त्यों बीनाई कम होती जाती है।—इन वाक्यों का वाच्य-परिवर्तन करो।

११—महात्मा टाल्स्टाय

(लेखक—श्री० पं० रामनारायण मिश्र बी० ए०)

[मिश्रजी सारस्वत ब्राह्मण हैं। कुछ दिनों तक आप डिप्टी इंस्पेक्टर के पद पर रहे। आजकल आप हिन्दू-विश्वविद्यालय के अन्तर्गत सेन्ट्रल

हिन्दी-हाई-स्कूल, काशी, मे एक आदर्श हैडमास्टर हैं। आप काशी-नागरी-प्रचारणी सभा के सभापति भी रह चुके हैं। आप एक पुराने और अनुभवी शिक्षा-विधिज्ञ हैं। हिन्दी साहित्य में बालकों के लिए आपने कई पुस्तकें लिखी हैं। काशी मे होने वाली सन् १९३१ में 'आल एशियाटिक शिक्षा-कान्फ्रेंस' के आप संयोजक थे।]

टालस्टाय का जन्म सन् १८२८ ई० की ९वीं सितम्बर को प्राचीन राजधानी मास्को से प्रायः साठ कोस पर यास्न्या पोलयाना नामक स्थान मे हुआ था। जब इनकी अवस्था तीन वर्ष की थी तभी इनकी माता का, और नौ वर्ष की अवस्था मे इनके पिता का, देहान्त हो गया। इनके कुटुम्ब के लोग सेना-विभाग मे सरकारी नौकरी करते थे और उनमे से अनेक विख्यात योद्धा भी थे। पिता के मरने पर इनकी चाची ने इनको पाला। यह स्त्री रात-दिन संसार के सुख-भोग मे लीन रहती थी। प्रति-दिन उसके घर दावतें हुआ करती थीं, खेल तमाशे होते थे। काजान नगर मे जहाँ वह रहती थी, प्रतिदिन भोज हुआ करते थे। टालस्टाय भी बाल्यावस्था मे इनमे शरीक होते थे।

पन्द्रह वर्ष की अवस्था मे इनका नाम उस नगर के विश्व-विद्यालय मे लिखवाया गया। पढ़ने मे इनका मन नहीं लगता था। इन्होंने विश्वविद्यालय मे भी जाकर आमोद-प्रमोद के उपाय सोचे और अनेक विद्यार्थियों को अपना साथी बनाया। अब इनका स्वास्थ्य बिगड़ने लगा। बाप-दादे की जायदाद काफी थी। जमींदार थे। समझते थे कि चिन्ता काहे की है, पढ़ना लिखना रुपया कमाने के लिए है, रुपयो का अभाव तो है ही नहीं। प्रतिष्ठा धन मे होती है सोचा कि चलकर अपनी जमींदारी मे रहे। पढ़ना लिखना छोड़ जमींदार हुए। कभी-कभी काश्तकारो की अवस्था देख दया आती, परन्तु खेल-कूद से फुरसत कहाँ? फल यह हुआ कि आमदनी से ज्यादा खर्च होने लगा। ऋण

बढ़ गया। घर रहना कठिन हो गया। काफ पर्वत पर भागे और वहाँ एकान्त मे एक कुटी बना कर रहने लगे। तेईस वर्ष की अवस्था मे सेनाविभाग मे नौकरी कर ली। कुछ लिखना-पढ़ना भी आरम्भ किया। इस समय क्रिमिया का महायुद्ध आरम्भ हुआ। उन्होंने अपनी देश की ओर से बिना वेतन स्वेच्छा-सैनिक होकर लड़ना आरम्भ किया। लड़ने मे इतनी दक्षता दिखलाई कि सेवैस्टोपोल के पहाड़ी गढ़ की सेना के सेनापति हो गए। इसी स्थान पर इन्होंने सेवैस्टोपोल की लड़ाई की कहानियाँ लिखीं। इस पुस्तक का विलक्षण प्रभाव पड़ा। राजा की आज्ञा हुई कि इनका लड़ाई से छुटकारा करके इनसे प्रार्थना की जाय कि युद्ध का वृहत वृत्तान्त लिखें। इस बीच में ये रूस की राजधानी पेट्रोग्राड पहुँचे, जहाँ इनका धूमधाम से स्वागत हुआ। सब प्रकार के स्त्री-पुरुष इनके दर्शनों को आए। नगर मे बड़ा जोश था। जिधर देखिए, इन्हीं की चर्चा थी। कहाँ तो एकान्तवास करने की इच्छा थी और कहाँ वे देश के नेता हो गए।



महात्मा टाल्स्टाय

थोड़े दिनों से टाल्स्टाय ने फ्रांस देश के विख्यात लेखक, सुधारक और तत्ववेत्ता रूसो के ग्रंथो का अवलोकन आरम्भ किया था। रूसों के ग्रंथ विलक्षण हैं। इनमे स्वतन्त्रता और उन्नति के मूलमंत्र लिखे है। इनमें शिक्षा के प्रचार का उपदेश है। टाल्स्टाय के जीवन के आदर्श को इन ग्रन्थों ने बदल दिया। टाल्स्टाय ने जो पुस्तकें लिखी है उन पर रूस के उपदेशों का स्पष्ट प्रभाव-सा मालूम होता है।

इन दिनों रूस देश में गुलामी की प्रथा थी। जमींदार काश्तकारों से बेगारी का काम लेते थे। काम के बदले मे कुछ वेतन नहीं देते थे। इस दुर्दशा को टालस्टाय ने देश के लिए श्रेयस्कर नहीं समझा। उन्होंने इसी विषय पर उपन्यास लिखने आरम्भ किए। स्वयं अपनी जमींदारी में कृषिकारों से सुन्दर व्यवहार आरम्भ किया। उनके लिए पाठशालएँ खोलीं। स्वय उनमें इंजील का गाना, इतिहास इत्यादि पढ़ाना आरम्भ किया। एक पाठशाला में सफलता होने पर कई और पाठशालाएँ खोलीं। चारों तरफ से लोगों ने विरोध करना आरंभ किया। लोग कहने लगे, सब लोग पढ़ जायँगे तो खेती कौन करेगा, मजदूर कहाँ से मिलेंगे? टालस्टाय का मत था कि प्रत्येक बालक, चाहे वह किसी अवस्था मे उत्पन्न हुआ हो, शिक्षा प्राप्त करने का अधिकारी है। राजा और धनाढ्य लोगों का कर्त्तव्य है कि वे जाति के बालकों की शिक्षा का प्रबन्ध करें। मनुष्य-मात्र के लिए जैसे शरीर ढकने के लिए वस्त्र की आवश्यकता है, उसी प्रकार अपनी अज्ञता को दूर करने के लिए विद्या प्राप्त करने की आवश्यकता है। परन्तु अपने मत के प्रचार में अकेले ही थे। लाचार होकर उनको अपने खोले हुए स्कूल बन्द करने पड़े। परन्तु उनका यह मत दृढ़ होता गया कि उच्च श्रेणी के धनाढ्य पुरुष उन लोगों की ओर अपना कर्त्तव्य नहीं समझते, जो निर्धन होने के कारण उनके अधीन हैं। इस समय उन्होंने जो उपन्यास लिखे वे इसी मत का प्रतिपादन करते हैं। इन ग्रन्थों का बड़ा आदर हुआ। यूरोप की अनेक भाषाओं मे उनके अनुवाद हुए।

कुछ काल बाद उनके मन मे समायी कि धन और जायदाद एक व्याधि है। चारों तरफ लोग दुःखी हैं। सैकड़ों स्त्री, पुरुष, बच्चे भूखों मरते हैं। हमको यह अधिकार नहीं कि हम तो धनवान हों और ऐसा भोजन करें और ऐसे वस्त्र पहनें कि जो

मनुष्य-जीवन के निर्वाह के लिए अत्यावश्यक नहीं, और हमारे चारों ओर ऐसे लोग हों कि जिनको शरीर-रक्षा के निमित्त आवश्यक अन्न-वस्त्र भी न मिले। इसी विचार से उन्होंने यह ठानी कि अपनी सब सम्पत्ति सर्वसाधारण को बाँट दें। यह सुन कर उनकी स्त्री और बच्चे बड़े घबराये और उन्होंने न्यायालय की शरण लेने का विचार किया। इससे टाल्स्टाय दब गए और जो कुछ था अपने कुटुम्ब को दे आप निर्धन की नाईं रहने लगे। एक कुटी बना ली। स्वयं खेती करने लगे। मांस-भोजन परित्याग किया। जो मिल जाता खा लेते और पहन लेते। किसी प्रकार का व्यसन नहीं रखा। खेती करना और पुस्तकें लिखना, बस यही दो काम थे।

एक बार रूस में मनुष्य-गणना हुई। उसमे इनको भी कुछ काम मिला। इस काम के करने में इन्होंने सर्व-साधारण की सामाजिक और आर्थिक अवस्था की खूब जॉच-पड़ताल की। उस समय की उनकी जो पुस्तकें हैं, उनमे सर्वसाधारण की अवस्था का बहुत अच्छा वर्णन है। उनकी पुस्तकें प्रायः कहानियों के रूप मे होती थीं। बहुत-सी कहानियॉ उन्होंने शराब की बुराइयो के वर्णन में लिखीं। इसके कुछ वर्षों के अनन्तर रूस देश मे अकाल पड़ा। उस समय टाल्स्टाय की दीनवत्सलता को जिन लोगों ने अपनी ऑखो से देखा था उनका लिखा हुआ वर्णन पढ़ कर महान् पुरुपों के उच्च लक्षणों का अनुभव होता है। टाल्स्टाय और उनके कुटुम्बी मिल कर दीनों को अपने हाथ से खिलाते थे और वस्त्र पहनाते थे। अपनी जमीदारी की सारी आय उन्होंने ग़रीबों को अर्पण करनी आरम्भ की। स्वयं भी वही भोजन करते कि जो कङ्गालों को खिलाते। टाल्स्टाय के

धार्मिक भाव का उज्ज्वल रूप से प्रादुर्भाव तब होता था जब वे दुःखित पीड़ित पददलित लोगों को देखते थे। उस समय उनके चित्त में ऐसे लोगों के लिए दया, और जिनके कारण संसार में दुःख, पीड़ा और अन्याय फैलता है, उनके लिए अत्यन्त क्रोध उत्पन्न होता था। ऐसे धार्मिक भावों का वर्णन करने में टाल्स्टाय की लेखनी बड़ी प्रभावशाली हो जाती थी। उनके वाक्य अद्भुत आदर्शों का परिचय देते थे।

अब टाल्स्टाय के चित्त में वानप्रस्थाश्रम में प्रवेश करने की इच्छा हुई। परन्तु इसमें कई कठिनाइयाँ प्रतीत हुईं। घरवालों का झगड़ा, लोगों का मिन्नत करना और समझाना कि घर बैठे ही संसार त्यागा जा सकता है, जल्दी क्या है, आवश्यकता क्या है, इत्यादि। इस समय का लिखा हुआ एक पत्र जो इन्होंने अपनी स्त्री के नाम लिखा था अब प्रकाशित किया गया है। उसमें उन्होंने अन्य बातों के अतिरिक्त यह वाक्य लिखा है "मुख्य बात यह है कि प्राचीन आर्यों की नाईं जो साठ वर्ष की अवस्था के निकट जंगल में चले जाते थे और सच्चे धार्मिक पुरुषों के समान अपना अन्तिम समय ईश्वर की आराधना में बिताते थे, न कि खेल और गप्पों में, मेरी भी अपने अस्सी वर्ष में यह प्रबल इच्छा है कि मुझे शान्ति प्राप्त हो, एकान्त मिले और मेरे जीवन के कार्य और विश्वास में एकता हो।"

कई वर्षों के कोलाहल के पीछे अन्त में उन्होंने घर छोड़ ही दिया। बयासी वर्ष की अवस्था में पीठ पर एक गठरी डाली और जंगल की राह ली। गठरी में दो तीन आवश्यक चीजें थीं। परन्तु घर छोड़े थोड़े ही दिन हुए थे कि एक सराय में उनको ज्वर आया। यह समाचार पाते ही उनके घर के लोग उनके पास पहुँचे। घरवालों की ओर देख कर

उन्होंने कहा कि, "संसार में अनेक दुःखी पड़े हैं, उनके पास क्यों नहीं जाते और उनसे सहानुभूति क्यों नहीं प्रकट करते ?" ये ही उनके अन्तिम वाक्य थे। संसार भर मे उनकी मृत्यु के समाचार पहुँचे। जिस स्थान का नाम भी लोग नहीं जानते थे, वहाँ सहस्रों आदमियों की भीड़ इनके दर्शनों को पहुँचने लगी। तार पर तार आने जाने लगे। इस प्रकार सन् १६१० की २० नवंबर को शरद ऋतु के अन्त मे संसार का एक विलक्षण पुरुष, मनुष्य शरीर के कर्त्तव्यों का अद्भुत उदाहरण हम लोगों को देकर चल बसा।

इनका जीवन-चरित्र सिद्ध करता है कि प्राचीन आर्यों के सिद्धान्त इस समय मे भी कार्य मे परिणत हो सकते हैं। टाल्स्टाय को आर्य सिद्धान्तों से प्रेम था। वे गीता और उपनिषदो का पाठ किया करते थे। आर्यग्रन्थों के पढ़ने का उपदेश संसार मात्र को दिया करते थे। उन्हे भारतवासियों से प्रेम था। उनके दुःख से दुखी और उनके सुख से सुखी होते थे। उनका सिद्धांत था कि हमारा दैनिक जीवन ऐसा होना चाहिए कि हम लोग सर्वदा ईश्वर की इच्छा के अनुसार चलें। मन्दिरों और गिरिजाघरो में ईश्वर नहीं मिलता। यह कहा करते थे कि जब कभी अच्छे काम करते हुए कोई सताया जाय तो उसको बरदाश्त करना चाहिए और अपने सिद्धान्तों पर दृढ़ रहना चाहिए।

प्रश्न और अभ्यास

१—टाल्स्टाय की संक्षिप्त जीवनी अपनी भाषा में लिखो।

२—इनका जीवन-चरित्र क्या सिद्ध करता है ?

३—धर्म के विषय में इनके क्या विचार थे ? क्या तुम इनके विचारो को ठीक समझते हो ?

४—'देश-प्रेम' और 'विश्व-प्रेम' में क्या अन्तर है ?

५—'संसार में अनेक दुखी पडे हैं, उनके पास क्यों नहीं जाते और उनसे सहानुभूति क्यों नहीं प्रकट करते ?"—इस वाक्य में संज्ञाएँ और क्रियाएँ छाँटो और उनकी पदव्याख्या करो ।

१२—बालि-वध

(लेखक—गोसाईं तुलसीदास)

[गोसाईं जी सरयूपारीण ब्राह्मण थे । आपका जन्म बाँदा ज़िले के राजापुर नामक ग्राम में सम्वत् १५५४ वि० में माना जाता है । आप हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ कवि माने जाते हैं । आपका सबसे प्रसिद्ध ग्रन्थ 'रामचरित मानस' है, जिसका लोगों मे बहुत प्रचार है । हिन्दू-जाति का तो यह धर्मग्रन्थ है, और इस जाति के जीवन पर इस ग्रन्थ का बहुत गहरा प्रभाव पडा है ।

कविता की दृष्टि से भी 'रामचरितमानस' उच्च कोटि का काव्य है । मानवजीवन की सभी परिस्थितियों का इसमें सुन्दर वर्णन हुआ है । पात्रों का चरित्र-चित्रण भी बहुत ही स्वाभाविक ढंग से हुआ है । ग्रन्थ की भाषा अवधी है ।

गोसाईंजी के अन्य मुख्य ग्रन्थों के नाम ये हैं—विनय-पत्रिका, दोहावली, कवितावली. गीतावली, पार्वती-मंगल, जानकी-मंगल, बरवै रामायण ।

संवत् १६८० वि० में असी घाट पर. गंगा के किनारे आपने काशी में शरीर छोड़ा ।]



गोसाईं तुलसीदास

लै सुग्रीव संग रघुनाथा । चले चाप सायक धरि हाथा ॥
तब रघुपति सुग्रीव पठावा । गर्जेसि जाय निकट बल पावा ॥
सुनत बालि, क्रोधातुर धावा । गहि कर चरण नारि समझावा ॥
सुनि पति जिन्हहिं मिलेउ सुग्रीवा । ते दोउ बंधु तेज बलसीवा ॥
कौसलेस सुत लछिमन रामा । कालहु जीति सकहि संग्रामा ॥

दो०—कहा बालि सुनि भीरु प्रिय, समदरसी रघुनाथ।
जो कदापि मोहि मारहिं, तौ पुनि होउँ सनाथ॥

अस कहि चला महा अभिमानी। तृण समान सुग्रीवहिं जानी॥
भिरे उभै बाली अति तर्जा। मुष्टिक मारि महा धुनि गर्जा॥
तब सुग्रीव विकल होइ भागा। मुष्टि प्रहार बज्र सम लागा॥
मैं जो कह रघुवीर कृपाला। बंधु न होइ मोर यह काला॥
एक रूप तुम्ह भ्राता दोऊ। तेहि भ्रम ते नहिं मारेउँ सोऊ॥
कर परसा सुग्रीव सरीरा। तन भा कुलिस गई सब पीरा॥
मेली कंठ सुमन की माला। पठवा पुनि बल देइ बिसाला॥
पुनि नाना विधि भई लराई। विटप ओट देखहिं रघुराई॥

दो०—बहु छल बल सुग्रीव कर, हिय हारा भय मानि।
मारा बाली राम तब, हृदय माँझ सर तानि॥

परा विकल महि सर के लागे। पुनि उठि बैठि देखि प्रभु आगे॥
स्याम गात सिर जटा बनाये। अरुन नयन सर चाप चढ़ाये॥
पुनि पुनि चितइ चरन चित्तदीन्हा। सुफल जन्म माना प्रभु चीन्हा॥
हृदय प्रीति मुख वचन कठोरा। बोला चितइ राम की ओरा॥
धर्म हेतु अवतरेउ गुसाईं। मारेहु मोहि ब्याध की नाईं॥
मैं वैरी सुग्रीव पियारा। कारण कवन नाथ मोहि मारा॥
अनुज वधू भगिनी सुत नारी। सुनु सठ ये कन्या सम चारी॥
इन्हें कुदृष्टि विलोकहि जोई। ताहि बधे कछु पाप न होई॥
मूढ़ तोहि अतिशय अभिमाना। नारि सिखावन करेसि न काना॥
मम भुजबल आश्रित तेहिजानी। मारा चहसि अधम अभिमानी॥

दो०—सुनहु राम स्वामी सुभग, चलन चातुरी मोर।
प्रभु अजहुं मैं पातकी, अन्त काल गति तोरि॥

सुनत राम अति कोमल बानी। बालि सीस परसेउ निज पानी॥
अचल करौं तनु राखहु प्राना। बालि कहा सुनु कृपानिधाना॥

जन्म जन्म मुनि जतन कराहीं। अंत राम कहि आवत नाहीं ॥
जासु नाम बल शंकर कासी। देत सबहि सतगति अविनासी ॥
मम लोचन गोचर सोइ आवा। बहुरि कि प्रभु अस बनहिं बनावा॥
अब नाथ करि करुना बिलोकहु देहु सो वर माँगऊँ।
जेहि जोनि जन्महुँ कर्म बस तहँ रामपद अनुरागऊँ॥
यह तनय मम सम बिनय बल कल्यानपद प्रभु लीजिये।
गहि बाँह सुर नर नाँह अपना दास अंगद कीजिये॥
दो०—राम चरन दृढ़ प्रीति करि, बालि कीन्ह तनु त्याग।
सुमन माल जिमि कंठ ते, गिरत न जानै नाग॥

प्रश्न और अभ्यास

(१) सुग्रीव और बालि के वैमनस्य का कारण बताओ।
(२) राम ने सुग्रीव की सहायता क्यों की ?
(३) रामचन्द्रजी ने दूसरी बार 'सुग्रीव को माला पहिना कर क्यों भेजा था ?
(४) निम्नलिखित लोकोक्ति कंठाग्र कर लो:—
अनुज बधू भगिनी सुत नारी। सुनि शठ ये कन्या सम चारी॥
इनहिं कुदृष्टि बिलोकहि जोई। ताहि बधे कछु पाप न होई॥
(५) बालि और सुग्रीव के चरित्र की तुलना करो।

—:०:—

१३--सम्भाषण-कुशलता

(लेखक—श्री० पं० माधवराव सप्रे, बी० ए०)

[सप्रेजी का जन्म सन् १८७१ में मध्यप्रदेश के दमोह ज़िले में एक गाँव में हुआ था। महाराष्ट्र होते हुए भी आपने हिन्दी-साहित्य की बड़ी सेवा की। अँग्रेज़ी के भी आप अच्छे ज्ञाता थे। 'छत्तीसगड-

मित्र' तथा 'हिन्दी केसरी' आदि कई पत्रों के आप सम्पादक थे। हिन्दी के सभी प्रसिद्ध पत्रों में आपके उत्तमोत्तम लेख प्रकाशित होते थे। 'विद्यार्थी' नामक मासिकपत्र में आपने एक लेख माला लिखी थी। उसी में से यह लेख लिया गया है।]

संसार में मनुष्य को आनन्द देनेवाली जितनी सामग्री हैं, उनमें से परस्पर-आलाप, सम्भाषण अथवा बातचीत भी एक है। यह निरी आनन्ददायक ही नहीं, बल्कि इससे हमें अपनी बुद्धि को अधिकाधिक विकसित करने का तथा अपनी संकीर्ण-हृदयता को दूर करने का अच्छा अवसर मिलता है। इस मानवी जीवन-संग्राम में विजय प्राप्त करने के लिए अन्य गुणों के साथ सम्भाषण-कुशलता का होना भी आवश्यक है। सम्भाषण करते समय मनुष्य का असली हृदय-भाव शब्दों के और उसकी हलचलों या चेहरे से अवश्य ही प्रकाशित हो जाता है, जिससे अन्य मनुष्य इस बात को सरलतापूर्वक समझ सकते हैं कि वह मनुष्य किस आचार-विचार का है। सम्भाषण अथवा परस्पर बातचीत वह कुञ्जी है, जो हृदय के कोश को खोल कर समाज के सामने परीक्षा के लिए रख देती है। इसलिए हमारे पूर्वजों ने नीति का उपदेश देते समय मूर्खों को यह शिक्षा दी है कि 'तुम विद्वानों के सामने चुप रहो, बोलो मत, नहीं तो तुम्हारी मूर्खता प्रकट हो जायगी।" तात्पर्य यह है कि जो मनुष्य समुचित रीति से सम्भाषण-कुशल हो जाता है वह अपने और दूसरों के बड़े-बड़े हितकर कार्यों को बात की बात में कर सकता है और हँसते-खेलते हुए दूसरों को स्थायी शिक्षा दे सकता है।

परन्तु जब हम देखते हैं कि हमने अपनी सम्भाषण-शक्ति को कहाँ तक पुष्ट और सुयोग्य बनाने का प्रयत्न किया है, तब

हमें अपनी मूर्खता और कर्त्तव्य-पराङ्मुखता पर हँसी आती है। होश के साथ बातचीत करना तो दूर रहा, हम कभी-कभी आम कहने की इच्छा रखकर नीम बक जाते हैं और सुननेवाला उसी नीम के कड़वेपन से ऊब जाता है। जिस मनुष्य को यह बात अच्छी तरह से मालूम है कि किस मौके पर किस मनुष्य के साथ कैसी बातचीत करनी चाहिए, उसके पास एक बड़ा भारी अस्त्र है और वह उस अस्त्र की सहायता से थोड़े ही परिश्रम द्वारा समाजप्रिय हो सकता है।

ऊपर कहा जा चुका है कि परस्पर सम्भाषण शिक्षा प्राप्त करने का और शिक्षा प्रदान करने का एक बड़ा भारी सुगम साधन है। इसलिए हमे यह अवश्य जान लेना चाहिए कि बातचीत करते समय हमे किन-किन दुर्गुणो से बचना चाहिए।

पहला दुर्गुण, जो बातचीत करते समय बहुत से मनुष्यों मे देखा जाता है, "जी हाँ, जी हाँ" का है। ऐसे मनुष्यो के सामने चाहे कुछ भी कहा जाय ये 'नहीं' कहना नहीं जानते। इनकी जीभ क्या है मानो एक खेत है, जहाँ "जी हाँ, जी हाँ" नामक घास मनमानी उगी है और जिसे ये बात-बात मे काट-काट कर दूर फेंका करते है। इनके सामने आप असम्भव से भी असम्भव बातें करते जाइए परन्तु इनका सिर जब हिलेगा तब केवल आकाश से रवाना होकर पाताल मे ही ठहरेगा। ये पाँच-पाँच मिनट मे परस्पर विरुद्ध बातो की हामी भरते जायँगे और तुम्हें बादल फोड़कर पानी बरसाने वाले बाँस को ढूँढ़ कर दे देने का वचन दे देंगे।

पहले दुर्गुण के समान विनाशकारी एक दूसरा दुर्गुण और है जो पहले दुर्गुण के ठीक विरुद्ध है। किसी किसी मनुष्य का हरएक बात को 'नही' कहने और उसका प्रतिरोध करने का स्वभाव-सा हो जाता है। परन्तु ध्यान रखना चाहिए कि हम

हरएक बात का जिस तरह से ठीक-ठीक और तर्क-सम्मत वर्णन पुस्तकों में पाते हैं, वैसा हम किसी मनुष्य की ज़बान से बातचीत के समय नहीं पा सकते। सम्भाषण में मनुष्य को अपने विचार जल्दी-जल्दी प्रकट करने पड़ते हैं, इसलिए बहुत सम्भव है कि वह कुछ बीच के तारतम्य को भूल जाय; अतएव दूसरों की भाषण-त्रुटियों को तीव्र दृष्टि से नहीं देखना चाहिए, क्योंकि सर्वांगपूर्ण भाषण करना हरएक मनुष्य से सम्भव नहीं है।

तीसरा दुर्गुण यह है कि संसार के अधिकांश मनुष्य के जो विचार प्रायः सदैव रहा करते हैं, उनके विरुद्ध अपने विचारों को चलाने का सतत प्रयत्न किया जाय। ऐसे मनुष्य बहुधा ज़िद्दी या हठी हुआ करते हैं। जिस बात को ये कभी नहीं समझ सकते उसमें भी पूरा अधिकार जमाना चाहते हैं। किसी विषय में अधिकांश विचारशील मनुष्यों की चाहे कुछ भी राय हो, परन्तु इनकी खिचड़ी अलग ही पका करती है। संसार जिसको अवगुण समझता है, उसे ये सद्गुण कहा करते हैं, और संसार जिसे सद्गुण कहता है, उसे ये दुर्गुण कहा करते हैं, परन्तु सच बात यह है कि ऐसे मनुष्य सिद्धान्त-रहित होते हैं। जो किसी बात की सारासारता का विचार करने का कष्ट नहीं उठाते। ये अपनी विचित्र निर्णयशक्ति को अद्वितीय समझा करते हैं और सब काम अपने अन्ध-आचरण—अकेले रहने के घमंड के आवेश में किया करते हैं।

एक प्रकार के ऐसे भी मनुष्य हुआ करते हैं जो दूसरों को कुछ कहने ही नहीं देते। वे चाहते हैं कि सब मनुष्य केवल उनकी बातों को सुना करें और वे जो कुछ कहें उसे चुपचाप सुनते चले जायँ। परन्तु इससे सुननेवालों के साहस की समाप्ति हो जाती है; जिससे बातचीत करने का सब आनन्द

चला जाता है। किन्हीं-किन्हीं मनुष्यों में एक महान् दुर्गुण यह होता है कि वे सदैव अनुपस्थित मनुष्यों की निन्दा किया करते हैं और अनाप-शनाप बक कर और सदा किसी का पक्ष लेकर अपने साथियों का मनोरंजन करना तथा उन्हें अपनी ओर आकर्षित करना चाहते हैं। किसी मनुष्य के आचरण के विषय मे राय देना,उसके सम्बन्ध मे कुछ भली-बुरी बातें कहना और समाज की दृष्टि में उसे नीचे गिराने का प्रयत्न करना मानो इनके सम्भाषण में हँसी-दिल्लगी की बात है। परन्तु इन मनुष्यो का उद्देश कभी सिद्ध नहीं होता। समाज के सभी मनुष्यों का दिल इनसे फिर जाता है। इसलिए बातचीत करते समय अपने मुँह से ऐसा शब्द कभी नहीं निकलने देना चाहिए जिससे हमको फिर पश्चात्ताप करना पड़े। ऐसी तुच्छ बात भी नहीं कहनी चाहिए जिससे दूसरों का अमूल्य समय नष्ट हो अथवा अपनी नीचता प्रकट हो।

बहुत-से मनुष्य बातचीत करते समय अपनी विद्वत्ता प्रदर्शित करना चाहते हैं और बात-बात में आत्म-प्रशंसासूचक बातें किया करते है। यह भी उचित नहीं है। बातचीत करते समय हमें केवल चार बातो पर ध्यान देना चाहिए;—(१) सचाई (२) समय और समाज की आवश्यकता (३) भाषा की सरलता तथा सौन्दर्य और (४) शिष्ट, आनन्दवर्धक भाषण-शैली का प्रयोग। जो मनुष्य सदा इन बातों पर ध्यान देकर बातचीत किया करता है उसकी बातों का दूसरों पर अच्छा प्रभाव पड़ता है। झूँठ बोलने से हम सम्भवतः दूसरों का नुक़सान तो कर ही सकते हैं, परन्तु उससे हम स्वयं अपना भी बड़ा भारी यह नुक़सान कर बैठते हैं कि हम जिस मनुष्य के पास जाते हैं वही हमें घृणा की दृष्टि से देखता है। फल यह होता है कि कोई भी मनुष्य हमारे दुःख का साथी नहीं होता वरन्

हमारे दुःख से दूसरों को सुख होता है। इसलिए कम से कम स्वार्थ की दृष्टि से तो हमें अवश्य ही सच बोलने का अभ्यास करना चाहिए।

समय और समाज की आवश्यकताओं के प्रतिकूल कभी कुछ नहीं बोलना चाहिए। प्रचलित विषय पर कुछ बोलना या उसको मनोयोगपूर्वक सुनना श्रेयस्कर है। जब किसी विषय पर बात-चीत हो रही है तब उसके समाप्त हुए बिना एक नए विषय को जबर्दस्ती नहीं शुरू कर देना चाहिए। इसी तरह यदि भाषा को सरल न रख कर उत्तरोत्तर अलंकारपूर्ण बनाने की चेष्टा की जायगी तो भावों का रसीलापन चला जायगा। आनन्द-वर्धक भाषण-शैली का प्रयोग करना भी अत्यन्त आवश्यक है। इस तरह की बातें कभी नहीं करनी चाहिएँ जिनसे दूसरे अपनी तुच्छता मानें और जिनसे दूसरों के दिल में चोट पहुँचे।

समयानुकूल बातें करना और सम्भाषण चातुरी का होना भी परमावश्यक है। जो काम अधिक द्रव्य से या शक्तिप्रयोग से भी नहीं हो सकता, वह काम मौके की बात कहने से सहज ही में हो जाता है। पाठकों को मालूम होगा कि अकबर का मंत्री बीरबल अपनी सभा-चातुरी के कारण कैसे-कैसे अनहोने तथा कष्टसाध्य काम को क्षण भर में कर सकता था।

यहाँ कुछ ऐसे संक्षिप्त नियम दिये जाते हैं जिनका सम्भाषण करते समय पालन करना श्रेयस्कर होगा।

(१) जिस तरह से तुम अच्छी किताबों को केवल अपने लाभ के लिए चुनते हो उसी तरह से साथी या समाज भी ऐसा चुनो जिसमें कि तुम्हें कुछ लाभ हो। सबसे अच्छी किताब और अच्छा मित्र वही है जिससे कि अपना किसी तरह से सुधार हो अथवा आनन्द की वृद्धि हो। यदि उन साथियों से तुम्हें कुछ

लाभ नहीं हो सकता तो तुम उनके आनन्द और सुधार की वृद्धि करने का प्रयत्न करो। और यदि उन साथियों से तुम कुछ लाभ नहीं उठा सकते या उनको तुम स्वयं कुछ लाभ नहीं पहुँचा सकते तो तुम तुरन्त उनका साथ छोड़ दो।

(२) अपने साथियो के स्वभाव का पूरा ज्ञान प्राप्त करो। यदि वे तुमसे बड़े हैं तो तुम उनसे कुछ न पूछो और वे जो कुछ कहें उसे ध्यानपूर्वक सुनो। यदि छोटे हैं तो तुम उनको कुछ लाभ पहुँचाओ।

(३) जब परस्पर की बातचीत नीरस हो रही हो तब तुम कोई ऐसा विषय छेड़ दो जिस पर सभी कुछ न कुछ बोल सकें और जिससे सभी मनुष्यो की आनन्द-वृद्धि हो। परन्तु तुम तब तक ऐसा करने के अधिकारी नहीं हो जब तक तुमने नया विषय आरम्भ करने के पहले कुछ न कुछ नए विषय का ज्ञान न प्राप्त कर लिया हो।

(४) जब कुछ नई, महत्त्वपूर्ण अथवा शिक्षाप्रद बात कही जाय तब उसे अपनी नोटबुक मे दर्ज कर लो। उसका सार अंश रक्खो और कूड़ा-कचरा फेंक दो।

(५) तुम किसी भी समाज मे अथवा साथियों के संग आते-जाते समय पूरे मौनव्रती मत बनो। दूसरों को प्रसन्न करने का और उनको शिक्षा देने का प्रयत्न अवश्य करो। बहुत सम्भव है कि तुमको भी बदले में कुछ आनन्दवर्धक अथवा शिक्षाप्रद सामग्री अवश्य मिल जायगी। जब कोई कुछ बोलता हो तब तुम आवश्यकता पड़ने पर भले ही चुप रहा करो, परन्तु जब सब लोग चुप हो जाते हैं तब तुम सबों की शून्यता को भंग करो। सब तुम्हारे कृतज्ञ होंगे।

(६) किसी बात का निर्णय जल्दी में मत करो। पहले उनके दोनों पक्षों का मनन कर लो और तब कोई निर्णय करो।

(७) यदि अहंकारपूर्ण, आत्मप्रशंसक अथवा शेखचिल्ली मनुष्यों से काम पड़ जाय तो उनको तुम कुछ कड़े शब्दों में समझा सकते हो। इससे यदि वे न मानें तो चुप रहो। यदि इसका भी कुछ असर न हो तो उनसे दूर हट जाओ।

(८) वातचीत करते समय अपनी बुद्धिमत्ता दिखाने का व्यर्थ प्रयत्न मत करो। यदि तुम बुद्धिमान हो तो तुम्हारी बातों से मालूम हो सकता है। यदि तुम प्रयत्न करके हमेशा अपनी बुद्धिमानी प्रकट करना चाहोगे तो संभवतः तुम्हारी बुद्धिहीनता अधिकाधिक प्रकट होती जायगी।

(९) किसी की बात यदि तुम्हें अपमानजनक वा किसी तरह से गुस्ताखी की मालूम हो तो भी कुछ देर तक चुप रहने का प्रयत्न करो। ऐसा हो सकता है कि वह बात तुम्हारे स्वभाव के कारण तुम्हें खराब मालूम हो, परन्तु सब लोगों को अच्छी मालूम हो। और यदि बात ऐसी ही हुई तो तुम्हें कुछ देर तक चुप रहने के लिए कभी भी पछताना नहीं पड़ेगा बल्कि तुम धैर्य का एक नया पाठ सीख जाओगे।

(१०) वातचीत करने का सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण नियम यह है कि सदैव सच बोलने का प्रयत्न करो और जो कुछ बोलो उसे शान्ति और नम्रता के साथ। मृदुभाषण में जादू की शक्ति होती है।

सार यह निकला कि सम्भाषण-शक्ति ईश्वर की एक अमूल्य देन है, जिसके सदुपयोग अथवा दुरुपयोग करने के अधिकारी और जिम्मेदार स्वयं हमी हैं। इसी शक्ति के सदुपयोग से हमारे जीवन की आंशिक सार्थकता हो सकती है, और परोपकार भी यथाशक्ति किया जा सकता है। अतएव हमें सदैव इस शक्ति

को स्वस्थ तथा मार्जित अवस्था मे रखने का प्रयत्न करना चाहिए ।

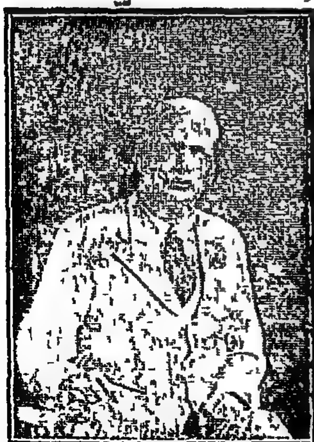
प्रश्न और अभ्यास

(१) मानव-जीवन-संग्राम और सम्भाषण-कुशलता मे क्या समास है ?
(२) कुछ लोगों में बातचीत करते समय क्या दोष पाए जाते हैं ?
(३) सम्भाषण करते समय किन नियमों का पालन करना चाहिए ?
(४) संकीर्ण हृदयता, कर्त्तव्य-पराङ्मुखता, सारासारता, शिष्ट, वागाडम्बर इन शब्दों के अर्थ बताओ ।

---

(१४) दीवान "हरदौल" जू

(लेखक—पं० श्यामबिहारी मिश्र)



पं० श्यामविहारी मिश्र

[मिश्र जी लखनऊ के रहनेवाले हैं । आप हिन्दी साहित्य के लब्ध-प्रतिष्ठ लेखक एवं समालोचक हैं । आपने अपने अन्य दो भाइयों—पं० शुकदेव विहारी मिश्र और पं० गणेशविहारी मिश्र—के साथ मिश्र बन्धु-विनोद' नामक हिन्दी साहित्य के इतिहास ग्रन्थ की रचना की है, जो बहुत ही प्रामाणिक ग्रन्थ है । ग्रन्थ कई भागों में है और इनमें छोटे बड़े प्रायः सभी कवियो तथा लेखकों का, जिनका आजतक पता चला है, परिचय दिया गया है । 'हिन्दी नवरत्न' नामक पुस्तक में आप लोगों ने हिन्दी के

सब से प्रसिद्ध नव महाकवियों की विस्तृत आलोचनात्मक जीवनियाँ लिखी हैं।

ये तीनों भाई हिन्दी संसार में मिश्र-बन्धु के नाम से विख्यात हैं।]

ओड़छा राज्य बुन्देलखण्ड मे अब भी अग्रगण्य माना जाता है। प्राचीन काल में इस राज का महत्त्व अब से कहीं बढ़ चढ़ कर था। यहाँ के महाराजा सूर्यवंशी बनारस के गहरवार राजकुल के हैं।

इसी वंश मे हरदौल का जन्म हुआ था। उनके बड़े भाई महाराजा जुझारसिंह जू (सन् १६१७-३४) बादशाह शाहजहाँ के यहाँ दिल्ली मे रहा करते थे और हरदौल जू ओड़छा मे राज्य का प्रबन्ध करते और राज्य-सेना के प्रधान सेनापति थे। थोड़े ही दिनो मे वे बड़े ही प्रजा प्रिय हो गए और सब लोग उन्हे प्राय: महाराजा ही के समान मानने लगे। इधर महाराजा की पटरानी भी हरदौल जू को पुत्रवत मानने लगीं और हरदौल जू उन्हें अपनी माता के समान समझने लगे। यह मातृ-पुत्रवत् प्रेम भी कुछ दुष्टो को अखरने लगा, क्योंकि ऐसे लोग यही चाहते हैं कि यदि राज-कुल मे कुछ भी कलह नहीं तो अनबन या थोड़ी-सी मनमैली अवश्य ही बनी रहे, जिससे इधर-उधर तीन तेरह की बातें बना कर वे अपना मतलब सिद्ध करते रहे, इसलिए ऐसे दुष्टों से कब चुप रहा जाता। उन्होंने महाराजा जुझारसिह जू देव को मनगढ़न्त बातें बना-बना कर बार-बार ऐसा कुछ लिखा और दो-एक ने स्वयं दिल्ली जाकर कुटिलता भरी ऐसी बातें बनाईं, जिससे महाराजा को अपनी राजमहिषी और हरदौल जू की सच्चरित्रता पर पूर्ण सन्देह हो गया।

परिणाम यह हुआ कि महाराजा दिल्ली से छुट्टी लेकर ओड़छा आ धमके और महारानी से जा-बेजा वातचीत करने लगे। बेचारी राजमहिषी लज्जा और शोक के सागर में डूबने लगी। पहले तो उसने महाराज को हर प्रकार से समझाने का प्रयत्न किया, पर रोग को असाध्य देख कर आत्महत्या द्वारा अपने सतीत्व का परिचय देना चाहा। महाराज ने एक न मानी और आज्ञा दी कि हमारे सन्देह का निराकरण केवल एक ही बात से हो सकता है अर्थात तुम अपने परमप्रिय हरदौल को भोजन मे विष दे दो, क्योंकि महाराज को यह भी विश्वास दिलाया गया था कि हरदौल जू शायद महाराज को राजच्युत करके स्वयं राजा बन बैठना चाहते थे। बेचारी महारानी ऐसी क्रूर आज्ञा को सुनते ही अवाक रह गईं। स्वामी के पैरो को पकड़ कर उसने अनेक शपथें खाईं और हर तरह से समझाया, पर महाराज जुझारसिह ने एक न मानी, उलटे राजमहिषी का और भी असह्य कटु वाक्यों से सत्कार किया। अब तो रानी के लिए अन्य कोई उपाय ही न रह गया।

अन्त में महारानी ने विष मिला पकवान तैयार करा कर हरदौल जू के सामने रख दिया, पर स्वयं फूट-फूट कर रोने लगीं और कारण पूछने पर उसने प्रिय देवर से सारा हाल कह सुनाया। तब तो हरदौल जू ने बड़ी प्रसन्नतापूर्वक वह अन्न खाने का आग्रह किया और कहा कि अपने पितृवत् बड़े भाई की आज्ञा होने पर उन्हे विष खाने मे संकोच ही क्या हो सकता है। हाँ, कलङ्क लगाए जाने का उन्हें विशेष दुःख अवश्य हुआ, पर वड़े भाई की आज्ञा सभी दशाओं में परममान्य समझ कर उन्होंने बरबस वह अन्न बड़े

हर्षपूर्वक खा ही तो लिया। महारानी मारे शोक के मूर्छित हो गईं और सखी-सहेलियाँ उनकी देख-भाल करने लगीं।

उसी हरदौल जू के अनेक साथियों ने भी यह हाल सुन कर उस विष मिले अन्न को खुशी से खा लिया। उनके स्वामिभक्त सेवकों में से भी दो-एक ने ऐसा ही किया। हरदौल जू ने अपने बड़े भाई महाराज जुझारसिंह का अन्तिम दर्शन करना चाहा, पर राजा ने किसी बहाने से उनकी वह इच्छा भी पूर्ण न होने दी। इस पर बहुत-से सरदार बिगड़ गए और सम्भव था कि राजप्रासाद में ही लंकाकाण्ड उपस्थित हो जाता, पर हरदौल जू ने सबको समझा-बुझाकर शान्त किया। थोड़ी ही देर में सब पर विष का असर बढ़ने लगा। सबों ने श्री राघव जू के मन्दिर में अपने महाराज की भलाई के हेतु प्रार्थना करते-करते एक-एक कर परमधाम की राह ली। अन्त में हरदौल जू ने अपनी मातृवत भाभी के दर्शन पाए और उनसे कहा कि यद्यपि महाराज ने उन दोनों को कलुषित और दोषी ठहराया, परन्तु उन्होंने दृढ़ विश्वास प्रकट किया कि उस समय तथा भविष्य में एक भी विचारशील पुरुष उन्हें तथा रानीजी को कलंकित न मानेगा। ऐसा कहते हुए हरदौल जू की आत्मा नश्वर शरीर को त्याग कर परमात्मा में लीन हो गई, पर उनका यश सदा के लिए स्थायी हो गया।

प्रश्न और अभ्यास

१—हरदौल को उसके भाई ने क्यों विष दिलाया?

२—हरदौल ने जानते हुए भी कि भोजन में विष मिला हुआ है, उसे क्यों खा लिया, उसके खाने का क्या परिणाम हुआ?

३—प्रजा-वत्सल, असह्य कटु वाक्यों, राजमहिषी, गरल, परमधाम, कलुषित, नश्वर शरीर, स्थायी के शब्दार्थ बताओ।

४—इन्हें वाक्यों में प्रयोग करो:—

लीन हो गई, अनबन, मनमैली, मनगढ़न्त बातें, आ धमकना, अखरना, तीन-तेरह की बातें बनाना, कटु वाक्यो से सत्कार करना।

५—इन शब्दों के लिए उपयुक्त विशेषण बताओ—

आज्ञा, भाभी, रोग, शोक, सम्बन्ध।

१५—दीनदयाल गिरि की अन्योक्तियाँ

[दीनदयालजी का जन्म शुक्रवार, वसन्त पंचमी, सम्वत् १८५६ में काशी के गायघाट मुहल्ले में पाठक-कुल मे हुआ था। इनका पर-लोकवास सम्वत् १६१५ में हुआ।

यह एक अत्यन्त सहृदय कवि थे। इनकी-सी अन्योक्तियाँ हिन्दी के और किसी कवि की नहीं हुईं। इनका भाषा पर भी अच्छा अधिकार था। इनकी-सी परिष्कृत, स्वच्छ और सुव्यवस्थित भाषा बहुत थोड़े कवियों की है।

इनकी लिखी इतनी पुस्तकों का पता है:—अन्योक्ति-कल्पद्रुम, अनुराग-बाग़, वैराग्य-दिनेश, विश्वनाथ-नवरत्न, दृष्टान्त तरंगिणी।

इन पुस्तको में 'अन्योक्ति-कल्द्रुम' बहुत प्रसिद्ध है। यह पुस्तक हिन्दी-साहित्य की एक अनमोल वस्तु है। इसमे सांसारिक-व्यवहार की बातो का बहुत ही योग्यता से वर्णन हुआ है।

---

*'अन्योक्ति' ऐसे वचन को कहते है, जो प्रकट रूप से तो किसी एक वस्तु के विषय में कहा जाय, परन्तु उसका तात्पर्य किसी दूसरी वस्तु के गुण दोष विवेचन से हो।

(१)

बरखै कहा पयोद इत, मानि मोद मन माहिं ।
यह तो ऊसर भूमि है, अंकुर जमिहै नाहिं ॥
अंकुर जमिहै नाहिं, बरष शत जो जल दैहै ।
गरजै तरजै कहा, बृथा तेरो श्रम जैहै ॥
बरनै दीनदयाल, न ठौर कुठौरहि परखै ।
नाहक गाहक बिना, बलाहक ह्याँ तू बरखै ॥

(२)

रंभा† झूमत हौ कहा, थोरे ही दिन हेत ।
तुमसे केते ह्वै गये, अरु ह्वै हैं यहि खेत ॥
अरु ह्वै हैं यहि खेत, मूल लघु साखा हीने ।
ताहू पै गज रहैं, दीठि तुम पै प्रति दीने ॥
बरनै दीनदयाल, हमे लखि होत अचंभा ।
एक जन्म के लागि, कहा झुकि झूमत रंभा ॥

(३)

नाहीं भूलि गुलाब तू, गुनि मधुकर गुंजार ।
यह बहार दिन चारि की, बहुरि कटीली डार ॥
बहुरि कटीली डार, होहिगी ग्रीषम आये ।
लुवैं चलैंगी संग, अंग सब जैहैं ताये ॥
बरनै दीनदयाल, फूल जौ लौं तो पाहीं ।
रहे घेरि चहुँ फेरि, फेरि अलि ऐहैं नाहीं ॥

(४)

टूटे नख रद केहरी, वह बल गयो थकाय ।
हाय जरा अब आइकै, यह दुख दियो बढ़ाय ॥

---

* बादल । † केला ।

यह दुख दियो बढ़ाय, चहूँ दिसि जम्बुक गाजै।
ससक लोमरी आदि, स्वतन्त्र करैं सब राजै॥
बरनै दीनदयाल, हरिन बिहरैं सुख लूटे।
पंगु भयो मृगराज, आज नख-रद के टूटे॥

(५)

पैहो कीरति जगत मे, पीछे धरो न पाँव।
छत्री कुल के तिलक हे, महा समर या ठाँव॥
महा समर या ठाँव, चलै सर कुँत कृपानैं।
रहे वीर गन गाजि, पीर उर में नहि आनैं॥
बरनै दीनदयाल, हरखि जौ तेग चलैहो।
ह्वैहो जीते जसी, मरे सुरलोकहि पैहौ॥

(६)

सोई देस विचारि कै, चलिए पथी सुचेत।
जाके जस आनन्द की, कविवर उपमा देत॥
कविवर उपमा देत, रंक भूपति सम जामें।
आवागमन न होय, रहै मुद मंगल तामे॥
बरनैं दीनदयाल, जहाँ दुख सोक न होई।
ए हो पथी प्रवीन, देस को जैयो सोई॥

(७)

कोई संगी नहि उतै, है इतही को संग।
पथी लेहु मिलि ताहि ते, सब सों सहित उमंग॥
सब सो सहित उमंग, बैठि तरनी के माहीं।
नदिया नाव सँयोग, फेरि यह मिलिहै नाहीं॥
बरनै दीनदयाल, पार पुनि भेंट न होई।
अपनी अपनी गैल, पथी जैहैं सब कोई॥

(८)

राही सोवत इत किते, चोर लगैं चहुँ पास।
　　तो निज धन के लेन को, गिनैं नीद की स्वाँस॥
गिनैं नींद की स्वाँस, वास वसि तेरे डेरे।
　　लिए जात वनि मीत, माल ये साँझ सवेरे॥
बरनैं दीनदयाल, न चीन्हत है तू ताही।
　　जाग जाग रे जाग, इतै कित सोवत राही॥

प्रश्न और अभ्यास

१—इन शब्दों के अर्थ लिखोः—

शठ, दीठि, मधुकर, रद, जम्बुक, ससक, कुन्त, पथी, तरनी।

२—पद्य १ में 'ऊसर', पद्य २ में 'दीठि', पद्य ३ में 'यह', पद्य ४ मे 'आज', पद्य में 'पैहो', की पदव्याख्या करो।

३—'नदिया नाव सँयोग, से क्या अभिप्राय समझते हो?

४—पद्य ५ और ७ कण्ठाग्र करलो।

१६—लंदन का बृटिश म्युज़ियम*

(लेखक—डाक्टर रामप्रसाद त्रिपाठी)

[त्रिपाठीजी प्रयाग के रहनेवाले है। आप प्रयाग-विश्वविद्यालय में इतिहास के अध्यापक हैं। आप हिन्दी-साहित्य और इतिहास के अच्छे विद्वान् हैं। आपकी लिखी तथा सम्पादित की हुई कई पुस्तकें स्कूल में पढ़ाई जाती हैं।]

संसार में जब से लिखने पढ़ने का सूत्रपात हुआ है तब ही से पुस्तकों और लेखों का महात्म्य आरम्भ हो गया। विद्या-प्रेमी

*संग्रहालय।

पुस्तको का संचय करने और उनको अत्यन्त श्रद्धा-पूर्वक रखने लगे। राजाओं और धनिकों ने भी क्रमशः पुस्तकें एकत्रित करना आरम्भ कर दिया। उन्होंने अपने निजी पुस्कालयो का संस्थापन किया अथवा धर्मालयों, मन्दिरों, विद्यालयो, मस्जिदो और मदरसो में पुस्तकों का संग्रह कर दिया। जब-जब यूरोप मे जातीयता के भाव का उदय हुआ और जात्याभिमान की लहरें उठने लगीं तब-तब वहाँ की प्रत्येक जाति को अपने जातीय पुस्तक भाण्डार के निर्माण की धुन लग गई। फल यह हुआ कि आज यूरोप अमेरिका के प्रत्येक देश में जातीय पुस्तकालय, चित्रालय, कला-भवन एवं वैज्ञानिक संग्रहालय पाये जाते हैं। आधुनिक जातीय पुस्तकालयों और संग्रहालयो में किसी विशेप भाव, धर्म, समुदाय या विषय के ग्रंथ नहीं, किन्तु सब प्रकार के ग्रंथों का मुक्त हृदय से संग्रह किया जाता है। विशेषतः अपनी भाषा, कला, हस्त-लिखित ग्रंथों और पत्रों का सञ्चय हर एक जाति अपने पुस्तकालय मे करना चाहती है। अच्छे, बुरे, असाधारण अथवा साधारण किसी भी विपय के मुद्रित ग्रंथों के संग्रह करने मे उन्हें संकोच नहीं होता। वह सब को अपने विशाल वक्षःस्थल में स्थान देने के लिए उद्यत हैं।

इस लेख में लंदन के बृटिश म्युजियम का दिग्दर्शन कराना चाहता हूँ। इंगलैंड ही नहीं वरन् बृटिश साम्राज्य का सबसे बड़ा पुस्तकालय बृटिश म्युजियम है। कुछ अंशो मे उसकी समानता करनेवाला संसार में अन्य कोई सग्रहालय नहीं। म्युज़ियम का आरम्भ सन् १७५२ मे सर हेन्स स्लोन के संग्रह से हुआ। उस साल एक एक्ट पास हुआ जिससे कि म्युजियम के स्थापन और उसके उद्देश्य की घोषणा की गई। मुख्य उद्देश्य यह था कि सब कलाओ से सम्बन्ध रखनेवाली सामग्री का एक स्थान पर संग्रह कर दिया जाय क्योंकि उनका आपस मे

अत्यन्त घनिष्ट सम्बन्ध है। ऐसे संग्रह से विज्ञान और अनुभव की वृद्धि होने की अधिक सम्भावना है। म्युजियम बनाने एवं स्लोन साहब के संग्रह को खरीदने के लिए तीन लाख पाउण्ड की लाटरी डाली गई। पचास हज़ार टिकट बेचे गए। इनाम की रक़म दस से एक हजार पाउण्ड तक रक्खी गई। यह तरकीब काफी कारगर हुई।

स्लोन के संग्रह के अलावा द्वितीय और तृतीय *जार्जों ने भी अपना राजकीय संग्रह म्युज़ियम को दे दिया। तदनन्तर अनेक महानुभावों ने धन से अथवा पुस्तकों आदि से म्युज़ियम की श्रीवृद्धि की। म्युज़ियम ने स्वयं बहुत से पुस्तकालयों और संग्रहों को अच्छे दामों पर खरीद कर अपना भाण्डार भर लिया।

सन् १७५९ में म्युज़ियम जनता के लिए खोल दिया गया। सुन कर आश्चर्य होगा कि पहले छः महीनो में केवल पाँच पढ़नेवालों ने ही कृपा की। कितने ही वर्षों तक पढ़नेवालों की संख्या प्रतिदिन पचास से सत्तर के बीच में ही रही, किन्तु आज चार सौ से अधिक पाठकों और सैकड़ों दर्शकों की भीड़ लगती है।

बृटिश म्युजियम मे चालीस लाख के लगभग मुद्रित ग्रंथ हैं। प्रति वर्ष करीब पचास हज़ार पुस्तकें बढ़ती जाती हैं। पुस्तकों का सूचीपत्र चारसौ चौंतीस जिल्दो मे है। यदि उन आलमारियों को जिनमें मुद्रित ग्रंथ रक्खे हैं एक कतार मे सजाया जाय तो उसकी लम्बाई कई मील तक पहुँचेगी। पश्चिमी भाषाओं की हस्तलिखित पुस्तकों का संग्रह भी अपूर्व है उसमें चौवन हज़ार हस्तलिखित ग्रन्थ और पचीस हजार सरकारी एवं अन्यान्य पत्र

---

*इंगलैंड के सम्राट्।

आदि हैं। अठारह हज़ार मुद्राओं और सत्ताइस सौ ग्रीक और लैटिन के प्राचीन लेखों का संग्रह है। इंगलैंड के सुविख्यात साहित्य-सेवियों के हस्तलिखित ग्रन्थ, उनकी दस्तखतों के सहित वहाँ पर जनता के अवलोकनार्थ रक्खे हुए हैं। बेकन, मिल्टन, जानसन और गिबन आदि सभी लेखकों के लिखे हुए ग्रन्थ और पत्र आदि वहाँ पर सजे हुए हैं। पुस्तकस्थ चित्रों के भी वहाँ गौरवपूर्ण संग्रह हैं। बारह सौ वर्ष तक के पुराने पुस्तकस्थ चित्रों को आप वहाँ देख सकते हैं।

प्राच्य-विभाग में हेबरू, चीनी, जापानी, तिब्बती, अरबी, फ़ारसी, संस्कृत, पाली और भारतीय भाषाओं के मुद्रित और हस्तलिखित ग्रंथों का संग्रह है। उसमे एक लाख बीस हज़ार के लगभग मुद्रित और करीब सोलह हज़ार के हस्तलिखित ग्रंथो का भाण्डार है।

मिश्र-विभाग में प्राचीन मिश्र के बहुत पुराने लेखों का अच्छा संग्रह है। ईसा से आठ सौ वर्ष पहले असीरियन के राजा सारगन ने जिस संग्रह की नीव नेनीवा मे डाली थी और जिसका संबर्द्धन उसके वंशजों ने किया था, वह आज बृटिश म्युज़ियम की शोभा बढ़ा रहा है। बेबीलोनियन संग्रह मे सबसे प्राचीन लेख ईसा से सत्ताइस सौ पचास वर्ष पूर्व का है। ईसा के पूर्व दो सहस्र वर्ष से छः सौ बयालीस वर्ष का शिलाओं पर खुदा हुआ असीरियन का इतिहास म्युज़ियम में है। वह वहाँ के संग्रह का एक समुज्ज्वल रत्न समझा जाता है।

बृटिश म्युज़ियम मे केवल पुस्तकें ही नहीं है वरन् सभ्यता के अध्ययन के अन्यान्य साधन भी वहाँ उपस्थित हैं। मिश्र के प्राचीन शिल्पकला और अन्य कलाकौशल के बड़े मनोहर नमूने वहाँ संग्रहीत हैं। वहाँ प्राचीन मिश्र, यूनान, रोम, सुमेरिया, सीरिया,

पैलेस्टाइन, प्राचीन अमेरिका, और अफ्रीका आदि देशों के निवासियों के कला-कौशल की द्योतक वस्तुओं का अपूर्व संग्रह है। गान्धार शिल्पकला का वहाँ आश्चर्यजनक संग्रह है। बर्मा की कारीगरी के भी बड़े सुन्दर नमूने वहाँ देखने में आते हैं। प्राचीन सभ्यता के प्रदर्शक मिट्टी के बर्तन, जेवरात, घरेलू चीजें आदि का संग्रह है।

म्युजियम में प्राचीन सिक्कों और मुद्राओं का अपूर्व और सुसम्पन्न कोष है। अनेक देशों के वहाँ सिक्के हैं। मैंने मध्य एशिया, फारस और भारत के सिक्के देखे। हिन्दू-काल और मुसलमानों के जमाने के चाँदी सोने के सिक्कों का संग्रह देख कर मुझे अत्यन्त हर्ष हुआ।

यदि कोई महीनों तक देखा भाली करता रहे तो सम्भव है कि वह ब्रिटिश म्युजियम के संग्रह का कुछ ओर छोर पा सके। उसके एक विभाग के देखने के लिए ही हफ्तों की जरूरत है। उसके अनुपम संग्रह से लाभ उठाने के लिए जापान, चीन, आस्ट्रेलिया, मिश्र, अमेरिका आदि दूर-दूर देशों के विद्यार्थी और निरीक्षक आते हैं।

यदि आप रीडिंगरूम में जाकर कुछ दिन काम करें तो आपको अनुभव हो जावेगा कि वहाँ प्रबन्ध कितना अच्छा है। रीडिंगरूम का निर्माण सन् १८५६-५७ में हुआ था। उसमें पाँच सौ आदमियों के बैठ कर काम करने का प्रबन्ध है। रीडिंगरूम के बीच में गोल चबूतरा है जिस पर वहाँ के कर्मचारी बैठते हैं। चबूतरे के नीचे चारों ओर गोल छोटी आलमारियाँ रक्खी हैं जिनमें सूचीपत्र की जिल्दें भरी हुई हैं। इन आलमारियों को गोलाकार कल्पना करके आप उनके चारों ओर किरणों की कल्पना कीजिए। यह किरणें मेजों की

हैं जिन पर नर्म आयल-क्लाथ मढ़ा हुआ है। हर एक मेज़ पर तीन-चार बिजली के लैम्प पढ़ने के लिए रक्खे हुए हैं। हर एक सीट में दावातों में रोशनाई भरी हुई है। बैठने के लिए गद्देदार पहिएवाली कुर्सियाँ रक्खी हैं।

रीडिंगरूम में साधारण काम की चुनी हुई कोई बीस सहस्र पुस्तकें हैं। इन पुस्तकों का चुनाव बड़ी सावधानी के साथ किया गया है। नीचे से ऊपर तक चारों ओर किताबे गोलाकार सजी हुई हैं। पाठक लोग बिना रोक टोक के रीडिंग रूम के ग्रंथों को उठाते, रखते और पढ़ते हैं। यदि आप यह कष्ट नहीं उठाना चाहते तो आप टिकट पर जिस ग्रंथ को देखना चाहते हैं, उसका नाम लिख कर टिकट-बक्स मे डाल दीजिए। पन्द्रह मिनट के अन्दर ही पुस्तक आपके पास आ जायगी।

रीडिंगरूम सवेरे ६ बजे से ६ बजे शाम तक खुला रहता है। उसमें जाने के लिए डाइरेक्टर की लिखी हुई आज्ञा लेनी पड़ती है। डाइरेक्टर आपको टिकट भेज देता है जिस पर लिखा होता है कि अमुक व्यक्ति को इतने दिनों तक पढ़ने की आज्ञा दी जाती है। एक दिन से ६ महीने तक पढ़ने की आज्ञा प्रायः मिलती है। म्युज़ियम की पुस्तकें वहाँ से बाहर नहीं जाने पातीं।

यदि आप बहुमूल्य अथवा दुर्लभ ग्रंथ को देखना चाहते हैं तो आप उत्तर के वाचनालय में जाइए, प्राच्य विद्या-सम्बन्धी ग्रंथों के लिए ओरियन्टल* रूम में जाइए। ओरियन्टल रूम में जाने के लिए आपको दूसरा टिकट लेना पड़ेगा। पत्र पत्रिकाओं एवं समाचार-पत्रों का संग्रह न्यूज़पेपर रूम मे है। ओरियन्टल-विभाग के लिए तो प्रथक् टिकट

---

*पूर्वदेश से सम्बन्ध रखनेवाले।

की आवश्यकता पड़ती है, किन्तु अन्य सब विभागों में आप रीडिंगरूम के टिकट से ही आ जा सकते हैं। ओरियन्टल-विभाग पाँच बजे शाम को बन्द हो जाता है। रविवार को छोड़ कर म्युज़ियम साल भर में सात-आठ दिन से अधिक नहीं बन्द रहता।

सब से अच्छी बात यह है कि म्युज़ियम में जनता के लाभ के लिए अनेक विषयों पर व्याख्यान होते हैं। किसी दिन मिश्र-विभाग में, कभी रोमन या ब्रृटिश-विभाग में, कभी असीरियन या अन्य विभाग में व्याख्यान होते हैं। व्याख्यानों का विषय प्रायः म्युज़ियम के संग्रह से सम्बन्ध रखता है। विषय, स्थान, समय और व्याख्यानदाताओं के नाम आदि की सूचना समाचार-पत्रों में नोटिसों द्वारा और म्युज़ियम के बोर्ड पर हफ्ते पहले से दे दी जाती है। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि म्युज़ियम के प्रत्येक विभाग का संरक्षक अपने विषय का पारंगत होता है। वह श्रोताओं को लेकर व्याख्यानसम्बन्धी विशेष संग्रहालय में ले जाकर वस्तुओं को दिखलाता है और विषय में सुगम रीति से श्रोताओं को जानने योग्य बातें बतलाता है। प्रश्नोत्तर में भी उसे संकोच नहीं होता। इस प्रकार प्रति वर्ष अगणित दर्शकों को अनायास बहुत-सा ज्ञान प्राप्त हो जाता है। विद्या-प्रचार का यह एक अच्छा साधन है।

यदि म्युज़ियम के प्रत्येक विभाग का विस्तृत वर्णन किया जाय तो एक बृहद् ग्रंथ तैयार हो सकता है। म्युज़ियम को अन्य जातीय पुस्तकालयों और संग्रहालयों की तरह सरस्वती देवी का मन्दिर कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी। शारदा के उपासकों की टोलियाँ, धर्म, जाति, सम्प्रदाय, देश, रङ्ग, रूप, आदि के भावों को छोड़ कर श्रद्धापूर्वक वहाँ प्रति दिन जमा होती हैं। उसमें अखण्ड ज्ञान-यज्ञ और विज्ञान का सतत अनुष्ठान होता रहता

है। उससे या तद्वत अन्य संस्थाओं से जो सार्वजनिक लाभ, ज्ञान और विज्ञान की जो श्रीवृद्धि हो रही है, उसका ठीक अनुमान वे ही कर सकते हैं, जो विद्या के अनन्त सागर के श्रद्धालु यात्री हैं।

बृटिश म्युज़ियम और उसकी शाखा के प्रबन्ध के लिए बृटिश सरकार चालीस लाख रुपए से अधिक वार्षिक खर्च करती है। यह व्यय, यहाँ के सब पुस्तकालयों और संग्रहालयों पर मिला कर जो खर्च होता है, उससे दुगने के करीब है। स्मरण रखना चाहिए कि लंदन मे बृटिश म्युज़ियम ही एकमात्र पुस्तकालय और संग्रहालय नहीं, वहाँ और आयर्लैण्ड मे अनेक पुस्तकालय और संग्रहालय हैं, उसमे से कई संस्थाओं का भरण और पोषण वहाँ की सरकार करती है। दूसरी स्मरणीय बात यह है कि कापीराइट ऐक्ट की सहायता से प्रति वर्ष सहस्रों पुस्तकें म्युज़ियम को मुफ्त मिलती हैं, और क़ीमती चीज़ों के ख़रीदने के लिए अलग से धन प्रदान किया जाता है। कुछ आश्चर्य नहीं कि म्युज़ियम का भाण्डार उत्तरोत्तर बढ़ता जाता है।

प्रश्न और अभ्यास

(१) बृटिश म्युज़ियम का संक्षिप्त वर्णन करो।

(२) मुद्राओं, सुसम्पन्न, अनुपम, संग्रहीत, कल्पना, पारंगत, संरक्षक, वृहद् के अर्थ लिखो।

(३) बृटिश म्युज़ियम से लोगों को क्या लाभ पहुँचता है ?

(४) तुम्हारे नगर में यदि कोई संग्रहालय हो, तो वहाँ जाकर संग्रहीत वस्तुओं को देखो और उनका वर्णन एक लेख में करो।

(१) "यदि आप रीडिंगरूम में जाकर कुछ दिन काम करें तो आपको अनुभव हो जावेगा कि वहाँ का प्रबन्ध कितना अच्छा है"—इस वाक्य का वाक्य-विश्लेषण करो।

१७—शिष्टाचार का लक्षण और महत्त्व

(लेखक—श्री० पं० कामताप्रसाद गुरु)

[पण्डित कामताप्रसाद गुरु का जन्म सं० १९३२ के पौस मास में मध्यप्रदेश के सागर ज़िले में हुआ था। गुरुजी कान्यकुब्ज ब्राह्मण हैं। आपने जबलपुर में नार्मल स्कूल में बहुत दिनों तक अध्यापन का कार्य किया है। हिन्दी के आप पुराने और प्रतिष्ठित कवि तथा लेखक हैं। व्याकरण पर आपका विशेष अधिकार है। आपने हिन्दी के अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ लिखे हैं, जिनमें से हिन्दी-व्याकरण बड़ा प्रसिद्ध और बृहद् ग्रंथ है। आपका रहन-सहन बड़ा सादा है।]

शिष्टाचार का अर्थ 'शिष्ट (सभ्य) लोगों का बर्त्ताव' है। शिष्टाचार में उन सब आचरणों का समावेश होता है जो शिक्षित जनों के योग्य समझे जाते हैं और जिनके व्यवहार से किसी समाज वा व्यक्ति को अपना काम-काज स्वतन्त्रतापूर्वक करने का सुभीता रहता है और उनके मन को सन्तोष तथा आनन्द प्राप्त होता है। इस लक्षण के अनुसार दूसरे को अपने काम में सुभीता और सन्तोष पहुँचाना ही शिष्टाचार का मुख्य उद्देश्य है। यदि कोई समाज या व्यक्ति ऐसा काम करता हो, जिसे लोग अनुचित समझते हैं तो केवल शिष्टाचार के अनुरोध से अन्य समाज वा व्यक्ति उस अनुचित कार्य में हस्तक्षेप नहीं करता। ऐसे अनुचित कार्यों के रोकने के लिए व्यक्ति, समाज अथवा सरकार को अपने अन्य कर्त्तव्यों या अधिकारों का उपयोग

करना आवश्यक होता है। यद्यपि इन कर्त्तव्यों और अधिकारों का विवेचन करना इस पुस्तक का उद्देश्य नहीं है तो भी इस विषय मे शिष्टाचार का यह उपयोग हो सकता है कि अनुचित कार्य करनेवाले के साथ बातचीत और व्यवहार करने मे दूसरा मनुष्य ऐसा बर्ताव करे जिससे उस व्यक्ति को बिना कारण मानसिक या शारीरिक कष्ट न पहुँचे; पर परोक्ष रूप से उसे अपनी दुष्कृति पर थोड़ा-बहुत पश्चात्ताप अवश्य हो। शिष्टाचार शिष्ट लोगों का आचार है अतएव इस विषय के साथ बहुधा 'शठं प्रति शाठ्य'* अथवा 'काँटे के बदले फूल' की नीति का विचार नहीं किया जा सकता। सभ्य व्यवहार किसी को दण्ड देने या उससे बदला लेने से विशेष सम्बन्ध नहीं रखता। नीति के व्यवहारिक उपयोग के समान शिष्टाचार का मुख्य उद्देश्य यही है कि मनुष्य दूसरे के साथ वैसा ही बर्ताव करे जैसा वह उससे अपने साथ कराना चाहता है।

आजकल शिष्टाचार का एक भ्रामक अर्थ प्रचलित है अर्थात् शिष्टाचार का लोग इन दिनों चापलूसी अथवा ऊपरी कपटपूर्ण नम्रता समझने लगे हैं। "सत्य हरिश्चन्द्र" और "मुद्राराक्षस" नाटकों मे यह शब्द इसी अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है। गुरु, महात्मा, चतुर आदि शब्दों के समान शिष्टाचार भी कालचक्रानुसार अर्थ-दोष से दूषित हो गया है। परन्तु प्रस्तुत लेख मे 'शिष्टाचार' शब्द का प्रयोग बहुधा वाच्यार्थ ही मे हुआ है। अतएव बिना किसी विशेष कारण के इसका दूसरा कोई अर्थ ग्रहण करना अनुचित होगा। कभी-कभी शिष्टाचार से विनय और नम्रता की उस चरमावस्था का भी अर्थ लिया जाता है जो मुसलमानी तकल्लुफ शब्द से सूचित होती है, जिसके कारण यह कहावत प्रचलित हुई है कि "आप आप

---

*दुष्ट के साथ दुष्टता।

करने में गाड़ी चल दी"※। इस अर्थ मे भी यहाँ शिष्टाचार का विचार किया जायगा। शिष्टाचार का मूल अर्थ, जो शिष्टों का आचार है, उसी की दृष्टि मे हम इस विषय का विवेचन करने का प्रयत्न करेंगे।

शिष्टाचार धर्म के समान (और इसी के अन्तर्गत) मनुष्यत्व का एक विशेष चिन्ह है। इस गुण से मनुष्य का शिक्षा, सुरुचि और सभ्यता का परिचय मिलता है। शिष्टाचारी व्यक्ति अपने कुल, जाति और देश की एक शोभा है। शिष्टाचार से अधिकांश मे मनुष्य के स्वभाव की भी जाँच हो जाती है। इस गुण का पालन करनेवाले के प्रति लोगों की श्रद्धा, विश्वास और आदर होता है और वह अपने गुणों से दूसरों में भी वही गुण उत्पन्न करने की क्षमता रखता है। विनय और नम्रता में ऐसा प्रभाव है कि यदि मनुष्य इनका उपयोग अपने आत्मगौरव के साथ-साथ करे तो एक बार उसका शत्रु भी पूर्व संस्कार छोड़ कर उसके गुणों पर मुग्ध हो सकता है। विनयी व्यक्ति के साथ अशिष्ट मनुष्य भी सहसा अशिष्टता का व्यवहार करने का साहस नहीं कर सकता। शिष्ट व्यवहार मनुष्य के अस्थिर चित्त को शान्त कर उसे विचार का अवसर देता है और उससे

※ लखनऊ के स्टेशन पर दो-चार शिक्षित मुसलमान महोदय रेल से प्रवास करने के लिए खड़े थे। जब गाड़ी स्टेशन पर आई तब वे लोग 'तकल्लुफ़' की उमंग में एक दूसरे से कहने लगे किबला, आप पहले बैठिए, हज़रत आप पहले सवार हूजिए। अशिष्ट कहलाने के भय से किसी ने पहले गाड़ी में सवार होना ठीक न समझा और उन लोगों में कुछ समय तक इसी प्रकार शिष्टाचार का व्यवहार होता रहा। इतने में गाड़ी चल दी और वे लोग वहीं खड़े रह गए।

अपनी भूलों पर सहर्ष पश्चाताप भी करा सकता है। सारांश यह है कि शिष्टाचार शील के समान मनुष्य का एक भूषण है।

शिष्टाचार सीमा से अधिक हो जाता है उससे बहुधा दोनों ओर हानि होती है। इस अवस्था मे मनुष्य या तो संकोच के कारण स्वयं अड़चन में पड़ता है अथवा अति शिष्टाचार से वह अपने व्यवहारी को अप्रसन्न कर देता है। अतएव अति शिष्टाचार की अवस्था से बचने की सदैव चेष्टा करनी चाहिए और यदि इस विषमावस्था में किसी समय विशेष हानि होने की सम्भावना हो तो उस समय शिष्टाचार का थोड़ा-बहुत अपकर्ष क्षमा के योग्य है। इस विषय को एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट करना आवश्यक जान पड़ता है। मान लीजिए कि यदि आप अपने मित्र के यहाँ किसी आवश्यक कार्य के अनुरोध से ऐसे समय जा पहुँचे जब कि वह स्नान, भोजन आदि के विचार में हो तो उस समय आपको उससे कष्ट के लिए क्षमा माँग कर तुरन्त यह स्पष्ट कह देना चाहिए कि हम विवश होकर आपको यह कष्ट दे रहे हैं। पश्चात् शीघ्र ही अपना काम निबटा उसके पास से चले आना चाहिए। यदि आप स्वार्थवश कुछ अधिक समय तक वहाँ ठहर कर अपने मित्र के कार्य मे अड़चन उत्पन्न करेंगे तो सम्भव है आपका मित्र संकोच त्याग कर आपके जाने के लिए कुछ ऐसा संकेत कर देवे जिससे आपको खेद हो और आप दोनों के मनों में थोड़ा-बहुत वैमनस्य हो जाय। फिर यदि आपका मित्र अति शिष्टाचार के अनुरोध से आपके आगमन को अपना अहोभाग्य प्रकट करे तो उस दशा में भी आपको बुरा लगेगा।

———

प्रश्न और अभ्यास

१—इस लेख के लेखक के बारे मे तुम क्या जानते हो? इन्होंने सबसे अधिक किस विषय पर पुस्तकें लिखी है?

२—शिष्टाचार किसे कहते हैं?

३—अपने गुरुओं और सहपाठियों से कैसा बर्ताव करना चाहिए?

४—शिष्टाचार, दुष्कृति, विषमावस्था मे समास बताओ।

१८—बिहारी के दोहे

[बिहारीलालजी माथुर चौबे कहे जाते है और इनका जन्म ग्वालियर के पास बसुआ गोविन्दपुर गाँव में सम्वत् १६६० के लगभग माना जाता है। इनकी मृत्यु संवत् १७२० के लगभग हुई मानी जाती है। यह जयपुर के महाराज जयसिंह के दरबार मे रहते थे। कहा जाता हैं कि महाराज को सरस दोहे बना कर सुनाते थे और उन्हें प्रति दोहे पर एक अशर्फी मिलती थी। इस प्रकार सात सौ दोहे बने जो संग्रहीत होकर 'बिहारी-सतसई' के नाम से प्रसिद्ध हुए।

शृंगार-रस के ग्रंथों मे जितना मान 'बिहारी-सतसई का हुआ उतना और किसी का नहीं। इसका एक-एक दोहा हिन्दी-साहित्य मे एक-एक रत्न माना जाता है। यद्यपि 'सतसई' के अधिकांश दोहे शृंगार-रस के है, तथापि कुछ दोहे नीति और वैराग्य के भी है।

ग्रंथ की भाषा ब्रजभाषा है। ब्रजभाषा के अन्य कवियों की भाँति बिहारी ने शब्दों को तोडा-मरोडा नहीं है, किन्तु उनका शुद्ध रूप मे प्रयोग किया है।]

(१)

मोर मुकुट कटि काछनी, कर मुरली उर माल।
यहि बानिक मो मन बसौ, सदा बिहारीलाल॥

(२)

कनक* कनक† ते सौ गुनी, मादकता अधिकाय।
यह खाये बौरात है, वह पाये बौराय॥

(३)

बड़े न हूजै गुनन बिनु, बिरद बड़ाई पाय।
कहत धतूरे को कनक, गहनो गढ़ो न जाय॥

(४)

को कहि सकत बड़ेन सों, होत बड़ेई भूल।
दीन्हें दई गुलाब के, इन डारन वे फूल॥

(५)

नर की अरु नल नीर की, गति एकै करि जोय।
जेतो नीचो ह्वै चलै, तेतो ऊँचो होय॥

(६)

कैसे छोटे नरन तें, सरत बड़ेन के काम।
मढ़ो दमामो जात है, कहुँ चूहे के चाम॥

(७)

कोटि जतन कोऊ करै, परै न प्रकृतिहि बीच।
नल-बल जल ऊँचौ चढ़ै, अन्त नीच को नीच॥

(८)

गुनी गुनी सब कोइ कहै, निगुनी गुनी न होतु।
सुन्यौ कहूँ तरु अरक‡ तैं, अरकऽ समान उदोतु॥

(९)

संगति सुमति न पावहीं, परे कुमति कै धंध।
राखौ मेलि कपूर मैं, हींग न होइ सुगंध॥

---

* धतूरा। † सोना। ‡ मदार। ऽ सूर्य्य।

(१०)

समै समै सुन्दर सबै, रूप कुरूप न कोइ।
मन की रुचि जेती जितै, तित तेती रुचि होइ॥

प्रश्न और अभ्यास

१—'नर' और 'नल नीर' में क्या समानता दिखलाई गई है ?

२—'कहत धतूरे को कनक, गहनो गढ़ो न जाय';
'मढ़ो दमामो जात है, कहुँ चूहे के चाम'—
इन उदाहरणों से कवि ने क्या निष्कर्ष निकाला है ?

३—अन्तिम दोहे में कौन अक्षर बार-बार आया है ?

१६—सदाचार

मानव-जीवन का सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण, उपयोगी और आवश्यक अंग सदाचार है। जीवन की शोभा सदाचार ही से बढ़ती है और यही उसकी महत्ता तथा श्रेष्ठता का परिचायक है, बल्कि यों कहना चाहिए कि सदाचार ही संसार का व्यवस्थापक नियम है। संसार का सारा सुख, समस्त उत्तम बातें, सदाचार के आधार पर ही स्थित हैं। ईश्वर ने मनुष्य को जितने बल दिए हैं, चरित्र-बल उन सब मे श्रेष्ठ है और इसी की सहायता से वह सबसे अधिक शुभ कृत्य कर सकता है। सदाचारी मनुष्य अपनी प्रामाणिकता के कारण लोगों पर एक प्रकार का वशीकरण-सा डाल देता है और उनके मन में उसके प्रति आपसे आप पूज्य भाव उत्पन्न हो जाते हैं। सब लोग उसकी बातों पर दृढ़ विश्वास रखते हैं, उसके व्यवहारों और कार्यों को आदर्श तथा

अनुकरणीय मानते हैं और सदा बड़ी ही श्रद्धा-भक्ति से उसका स्मरण करते हैं।

सदाचार एक ऐसा गुण है जो मनुष्य को संसार में देवता के स्वरूप में प्रकट करता है। उसके दर्शन और गुण-गान से ही लोगों में बहुत से सद्भावों की जागृती होने लगती है और वे सत्पथ पर लग जाते हैं। संसार में जितनी बातें श्रेष्ठ, सुन्दर और मानव-जाति के लिए परम कल्याण-कारक हैं, उन सब के कर्त्ता और रक्षक सदाचारी ही हैं। यदि संसार सदाचारी मनुष्य न होते तो उसमें रहना नरकवास से कम न होता। इस कथन की सत्यता एक बहुत ही छोटे-से उदाहरण द्वारा प्रमाणित की जा सकती है। आप असंख्य सदाचारियो और सच्चरित्रो को किसी एक ही स्थान मे बसा दीजिए; वे सब के सब केवल शांतिपूर्वक ही नहीं रहेंगे, बल्कि परस्पर एक दूसरे के सुख और कल्याण की वृद्धि में भी बहुत कुछ सहायक होंगे। उनका समाज सदा परम सुखी, सम्पन्न और उन्नतिशील रहेगा और किसी प्रकार का दुःख, क्लेश, या कुभाव वहाँ फटकने भी न पावेगा। उनकी सन्तान भी सदाचारिणी ही होगी और सब प्रकार से अपने पूर्वजो के दिखलाए हुए पथ पर चलेगी। ऐसा साधु-समाज सदा बढ़ता और फलता-फूलता ही रहेगा। पर अधिक नहीं, केवल सौ-पचास लुच्चों, उचक्कों, बदमाशों, चोरों, जुआरियों, शराबियो और इसी प्रकार के दूसरे दुराचारियों को एक स्थान पर बसा दीजिये, फिर देखिये रोज़ कितनों के सिर फूटते हैं, कितनी लड़ाइयाँ होती हैं, कितना असन्तोष फैलता है, और कितना दुःख बढ़ता है। ऐसा समाज पच्चीस-पचास वर्ष तक भी न चल सकेगा और शीघ्र ही उसका सर्वनाश हो जायगा। यही कारण है कि सदाचारियों के प्रति मनुष्य के मन में अपने आपही श्रद्धा और आदर-बुद्धि उत्पन्न होती है —

किसी एक सदाचारी और एक विद्वान् अथवा बुद्धिमान् को लीजिए और देखिए कि दोनों में से किसके प्रति आपके मन में सबसे अधिक श्रद्धा-भावों की जाग्रति होती है। स्वभावतः आपका मन सदाचारी की ओर ही अधिक खिंचेगा। विद्वान् या बुद्धिमान् को देख कर हमारे मन में एक प्रकार का कुतूहल और आह्लाद ही होगा, इससे अधिक और कुछ होने की सम्भावना नहीं। पर सदाचारी हमारे आदर, सम्मान और भक्ति का पात्र होगा। राम और रावण, कृष्ण और कंस, युधिष्ठिर और दुर्योधन, प्रह्लाद और हिरण्यकश्यप आदि के सम्बन्ध में लोगों के मन में जो स्वाभाविक श्रद्धा और घृणा होती है, उसका कारण सदाचार और दुराचार ही है बुद्धि या विचार-कौशल से अच्छे और बुरे दोनों प्रकार के भावों तथा कार्यों की सृष्टि हो सकती है। विद्या की भी यही दशा है। बुद्धि और विद्या ये दोनों ऐसे बल हैं जिनका श्रेष्ठ उपयोग भी हो सकता है और निकृष्ट भी। यदि कोई बी० ए० पास मनुष्य झूठ बोलने अथवा चोरी करने पर उतारू हो जाय तो वह ऐसी-ऐसी झूठी-झूठी बातें बना कर कहेगा और चोरी की ऐसी-ऐसी युक्ति भी निकालेगा कि लोग दांतों तले उँगली दबावेंगे। पर सदाचार-बल से आप स्वप्न में भी इस बात की आशा नहीं कर सकते कि उससे समाज का किसी प्रकार का अनिष्ट होगा अथवा वह लोगों को किसी प्रकार का कष्ट पहुँचाने का कारण होगा।

संसार में मनुष्य को जितने काम करने पड़ते हैं, अपना आचरण सुधारना उन सब में अधिक आवश्यक, उपयोगी, और महत्त्वपूर्ण है। इसके लिए मनुष्य को बहुत ही शांतिपूर्वक और ध्यानपूर्वक अपने स्वभाव और मनोवृत्तियों का निरीक्षण करना चाहिए। प्रत्येक मनुष्य में अपने आप को उन्नत करने की एक ईश्वरदत्त शक्ति हुआ करती है। पर साधारणतः

लोगों को अपनी उस शक्ति का पता ही नहीं होता। अथवा कम से कम वे उसकी ओर ध्यान ही नहीं देते; और इसीलिए वे सदा अपने आपको अयोग्य और असमर्थ समझ कर निराशापूर्ण जीवन व्यतीत करते हैं। लेकिन इस प्रकार का विचार बहुत ही हानिकर और घातक है। कभी किसी मनुष्य को यह न समझना चाहिए कि मैं अपने स्वभाव में परिवर्त्तन नहीं कर सकता, अथवा बुरे कामों को छोड़ कर अच्छे कामों में नहीं लग सकता। मनुष्य का जीवन शतरंज के खेल की तरह है। स्वभाव, परिस्थिति और मानसिक, शारीरिक, तथा नैतिक शक्तियाँ उसके मोहरे हैं, जो प्रत्येक मनुष्य को प्राय समान रूप से मिले हैं। अगर खिलाड़ी योग्य और कुशल होगा तो इन्ही मोहरों की सहायता से बाजी जीत लेगा और यदि अयोग्य या मूर्ख होगा तो हार जायगा।

अपना जीवन सुधारने और सदाचारी बनने की प्रधान कुञ्जी कर्त्तव्य-पालन है। जो मनुष्य अपना कर्त्तव्य-पालन करता है, वह न तो कभी दुःखी रहता है और न कभी जमाने की शिकायत करता है। जो मनुष्य अपने कर्त्तव्य का ध्यान छोड़ देता है अथवा जान-बूझ कर उसका पालन नहीं करता, वह कभी सुमार्ग पर नहीं चल सकता। सदाचार और कर्त्तव्य-पालन का इतना घनिष्ठ संबन्ध है कि हम उन दोनों को एक-दूसरे से पृथक् ही नहीं कर सकते। यदि हम सदाचारी बनना चाहें तो हमें कर्त्तव्य-पालन की आवश्यकता होती है और यदि हम अपने कर्त्तव्यों का पालन करते रहें तो आप से आप सदाचारी हो जाते हैं। जिस प्रकार सदाचार की कुञ्जी कर्त्तव्यों का ज्ञान और पालन है, उसी प्रकार कर्त्तव्यों के ज्ञान की कुञ्जी हमारा अन्तःकरण अथवा विवेक है। विकट से विकट प्रसंगों पर भी अपने कर्त्तव्याकर्त्तव्य का ज्ञान हमारा विवेक ही कराता है।

वही सदा हमें यह बतलाता है कि हमे कौन-सा काम करना चाहिए और किस पथ पर चलना चाहिए। अन्तःकरण मे लोग ईश्वर का वास मानते हैं और यह बात है भी ठीक। इस प्रकार ईश्वर सदा हमारे साथ रहता है और हमें उचित मार्ग दिखलाता है।

सदाचारी मनुष्य के मन मे सदा ईश्वर का भय बना रहता है। उसकी सभी बातें और कार्य्य सत्यतापूर्ण होते हैं। प्रत्येक अच्छी बात, उत्तम कार्य्य और भले मनुष्य के लिए उसके हृदय मे सर्वोच्च स्थान होता है। जिस प्रकार ऐसे एक मनुष्य से सारा कुटुम्ब सुखी होता है, उसी प्रकार ऐसे बहुत-से लोगों से सारा देश सुखी होता है। ऐसे मनुष्यों की अधिकता के बिना न तो संसार का कोई कार्य्य शान्तिपूर्वक चल सकता है और न लोग सन्मार्ग की ओर प्रवृत्त हो सकते है। एक विद्वान् ने तो सदाचार को धर्म्म शब्द का पर्य्याय ही माना है। और, वास्तव मे, जो मनुष्य पूर्ण धार्मिक होगा वह परम सदाचारी भी होगा।

जब किसी देश मे कोई बड़ा महापुरुष, पराक्रमी, या देशभक्त होता है तब उसकी देखादेखी और भी बहुत-से वैसे ही लोग उत्पन्न हो जाते हैं भगवान् बुद्ध के समय मे सारा देश प्रायः त्यागियों और महात्माओं से इसीलिए भर गया था कि लोगों के सामने त्याग और धर्म की एक प्रत्यक्ष मूर्ति ही आ खड़ी हुई थी। महाराज शिवाजी के समय महाराष्ट्र-प्रांत मे इसीलिए असंख्य वीर निकल आये थे कि उस देश मे एक आदर्श वीर और पराक्रमी पुरुष उपस्थित था। जस्टिस महादेव गोविन्द रानाडे के समय से जो अब तक निःस्वार्थ भाव से देश-सेवा करनेवाले इतने लोग हुए हैं, उसका भी यही कारण है। बात यह है कि बड़े लोग कुछ तो स्वयं अपने उपदेश और सामीप्य आदि से कारण लोगों का अपने समान बना लेते हैं

और कुछ लोग केवल उन्हे आदर्श मान कर ही वैसे हो जाते हैं। बड़े लोगों के कार्यों और आचरण आदि का प्रभाव साधारण लोगों पर अवश्य पड़ता है।

जिस देश मे सदाचारी, विद्वान् , शूर, उद्योगी और महात्मा पुरुष उत्पन्न होते हैं, उस देश का इतिहास बहुत ही उज्ज्वल और महत्त्वपूर्ण हो जाता है। ऐसे पुरुषों को इतिहास का कारण कहना चाहिए, क्योंकि इतिहास में केवल मनुष्यो के कृत्यो का वर्णन ही होता है। भारत का प्राचीन इतिहास, वशिष्ठ, याज्ञवल्क्य, व्यास, पाराशर आदि ऋषियो ; भागीरथ दिलीप, रघु, अज, राम और युधिष्ठर आदि राजाओ ; और गार्गी, अनुसूया, सावित्री और जानकी आदि विदुषियों का ही इतिहास है। भोज, विक्रम, कालिदास और भवभूति के कारण भारत के इतिहास की कितनी शोभा बढ़ी है। अहिल्याबाई, रानी भवानी, और लक्ष्मीबाई के कार्यों से इतिहास के अंग की कितनी उत्तम पूर्ति हुई हैं। यदि इन लोगों के जीवन-वृत्तान्त निकाल दिए जायँ तो हमारे देश के इतिहास मे क्या बच रहे ? यदि शिवाजी और गुरु गोविन्दसिह ने गौओ और ब्राह्मणों की रक्षा न की होती तो आज हम किसकी कीर्ति गाते ? ऐसे ही लोग देश के वास्तविक जीवन और वैभव हुआ करते हैं।

—:o:—

प्रश्न और अभ्यास

१—सदाचार किसे कहते हैं ?

२—मनुष्य के लिए सदाचारी होना क्यो आवश्यक है ?

३—सदाचारी होने की प्रधान कुञ्जी क्या है ?

४—दाँतों तले उँगली दबाना, ज़माने की शिकायत करना, आनाकानी करना और फलना-फूलना से क्या अभिप्राय है ?

५—निराशापूर्ण, नरकवास, कर्त्तव्यनिष्ठा और सत्यनिष्ठ में कौन समास हैं ?

६—अन्तिम पैराग्राफ में कौन-कौन-सी संज्ञाएँ अधिकरण और कर्त्ता कारक मे आई हैं ?

२०—उल्काएँ या टूटनेवाले तारे

[प्रयाग विश्वविद्यालय मे गणित के आचार्य डाक्टर गोरखप्रसाद ने अभी हाल में 'सौर परिवार' नामक बडी सुन्दर पुस्तक लिखी है, जिसमें सूर्य और उसके परिवार के अन्य गृह-उपगृहों का बडा सरल वर्णन है। इसी पुस्तक में से 'उल्काओं' पर यह लेख दिया जाता है।]

सभी ने देखा होगा कि कभी कभी तारे टूट कर गिरते हुए-से जान पड़ते हैं। इनको उल्काएँ कहते हैं। साधारणतः ये उल्काएँ छोटी होती हैं। परन्तु कभी-कभी ये इतनी चमकीली होती हैं कि उनसे सारा दृश्य प्रकाशित हो उठता है और कभी-कभी हर-हर-हर-हर की आवाज भी सुनाई पड़ती है। कभी-कभी ये उल्काएँ आकाश मे टुकड़े-टुकड़े हो जाती हैं और उन से बादल गरजने के समान शब्द होता है।

जिस प्रकार पुच्छल तारों से पुराने समय में लोग डरा करते थे, उसी प्रकार थोड़ा बहुत उल्काओं से भी डरते थे और उल्काओं को परमेश्वर के क्रोध का चिन्ह समझते थे। परन्तु छोटी-छोटी उल्काओं का दिखाई पड़ना इतना साधारण है कि इससे लोग परिचित हो जाते हैं; विशेष चमकीली और

गरजनेवाली उल्काओं की बात दूसरी है । कभी-कभी ये उल्काएँ रास्ते ही मे पूर्णतया भस्म नहीं हो जातीं, वे पृथ्वी तक पहुँच जाती हैं । उनको उल्का-प्रस्तर कहते हैं । उल्का-प्रस्तरो से अवश्य डरने का कारण रहता है । कुछ दिन हुए दो मनुष्य इस प्रकार के एक उल्का से चूर-चूर हो गए ।

जालौन ज़िले के कन्त नामक गाँव के पास एक प्राणघातक उल्का गिरने का समाचार मिला । एक अमीन और उसका सहायक खेत नाप रहे थे, वे तुरन्त मर गए और एक तीसरा व्यक्ति बहुत घायल हुआ । पहले व्यक्ति की लाश का अब तक पता नहीं चला, क्योकि उसकी धज्जियाँ उड़ गईं । २० मील तक उल्का गिरने का शब्द सुनाई पड़ा । उल्का-प्रस्तर का एक ५० मन का टुकड़ा इस ज़िले के मुख्य स्थान मे जाँच करने के लिए भेज दिया गया था ।

एक प्रसिद्ध वैज्ञानिक ने, जो उल्का-सम्बन्धी बातो मे प्रमाण माने जाते हैं, अभी हाल मे लिखा है कि न्यूयार्क नगर या कोई दूसरा बड़ा शहर किसी दिन बात की बात मे उल्का द्वारा नष्ट हो सकता है। क्षण भर ऐसे विशाल नगर को एक उल्का चपाती-सा चपटा कर देगा । इसका प्रमाण इस बात से मिलता है कि लगभग २० वर्ष हुए साइबेरिया मे बड़े भीषण आकार का एक उल्का-प्रस्तर गिरा । खैरियत यह हुई कि यह एक निर्जन बन में गिरा । यदि यह किसी बड़े शहर पर गिरता तो लाखों जानें जातीं ।

३० जून सन् १९०८ ई० को सात बजे सवेरे पूरे प्रकाश मे साइबेरिया के येनिशाई प्रान्त मे एक अत्यन्त तेजस्वी उल्का देखी गई । हज़ारो मनुष्यो ने उसे देखा । लाखो ने उसके वायु मे चलने से उत्पन्न हुई बादल गरजने के समान घड़घड़ाहट को

सुना। भूकम्प-यन्त्रों मे उसके गिरने से उत्पन्न हुई पृथ्वी की कँपकँपी लिख गई। परन्तु यह सब कुछ होते हुए भी उस स्थान को लोगों का पता नहीं चला जहाँ वह उल्का प्रस्तर गिरा था। बात यह थी कि यह इतना चकमदार था और इसकी आवाज़ इतनी तेज थी कि लोगों को धोखा हो गया। सभी समझते थे कि यह कहीं पास ही गिरा होगा, परन्तु वस्तुत' यह उस शहर से कई सौ मील उत्तर की ओर गिरा था।

यूरोपियन महासमर के कारण लोग इस बात को प्रायः भूल गए थे। परन्तु १६२१ ई० में कुछ रूसी वैज्ञानिकों को सोवियेट सरकार से उस उल्का-पात की खोज करने के लिए थोड़ा-सा धन प्राप्त हुआ और वे इस खोज के लिए निकले। इस खोज-पार्टी का अगुआ प्रसिद्ध विद्वान् कुलिक था।

इन लोगों को कई एक उल्का-प्रस्तर मिले, परन्तु जिसकी खोज मे ये लोग निकले थे, उस तक न पहुँच सके। कारण यह था कि जहाँ तक पता चला वह स्थान अत्यन्त दुर्गम और मार्ग-रहित जंगल के बीच था और वहाँ एक अर्द्ध सभ्य जाति के इने-गिने थोड़े-से व्यक्ति रहते थे।

सन् १६२७ ई० मे कुलिक ने दूसरी टोली तैयार की और असह्य कठिनाइयाँ उठाते हुए बहुत दिनों तक आधा पेट खाकर, यह साहसी वीर १६०८ ई० वाले बृहत्काय उल्का प्रस्तर के पतन-स्थान पर पहुँच ही गया और उसने वहाँ की पूरी छान-बीन कर डाली। कुलिक के वर्णन से जैसी भयानक घटना यहाँ घटी हुई जान पड़ती है वैसी घटना आज तक पहले कभी सुनने में नहीं आई। उसने लिखा है कि दो छोटी-छोटी बस्तियों के बीच के उजाड़ स्थान मे उल्का-पात हुआ था। इस दुर्घटना के पहले यह बहुत घना जंगल था। अब तो यह तृण-रहित हो गया है। बीच मे, कई मील के घेरे मे पृथ्वी

ऐसी फट और खुद गई है जैसे इसको अलिफ़-लैला* की कहानियों में बतलाए हुए किसी जिन्न ने ताड़ वृक्ष के समान लम्बे हल से जोत दिया हो। इस स्थान पर ज्वालामुखी पर्वत के मुख के समान कई गड्ढे बन गए थे, और इनका स्वरूप ठीक चन्द्रमा के धब्बों का-सा है।

इसके चारों ओर कई मील तक सब पेड़ झुलस गए हैं। उनके छिलके और उनकी शाखाओं का पता नहीं है और वे स्वयं बाहर की ओर झुक गए हैं। ऐसा जान पड़ता है जैसे अचानक ज्वाला की लपट ने इनको झुलसा और जला दिया हो और इनके छिलके को उखाड़ कर और इनकी शाखाओं को नोच कर दूर फेंक दिया हो। इस स्थान से ५० मील की दूरी पर के सारे मकान गिर गए और उनमें रहनेवाले मनुष्य भी मर गए। यहाँ के एक निवासी ने कुलिक को बतलाया कि उसके एक रिश्तेदार के पास इसी जंगल मे १५०० मवेशी थे। उल्का-प्रस्तर गिरने के बाद उनका कहीं पता न लगा। केवल एक दो जानवरों की जली हुई लाशें मिलीं। उसका मकान भी पूर्णतया जल गया था और उसमें रक्खे हुए सब औज़ार पिघल गए थे।

परन्तु सबसे बड़ी आश्चर्यजनक बात यह हुई कि वहाँ कोई बड़ा-सा उल्का-प्रस्तर नहीं मिला। कुलिक का अनुमान है कि उल्का-प्रस्तर एक नहीं था, उसके कई टुकड़े थे और वे सब अब ज़मीन के अन्दर बहुत दूर तक घुस गए हैं। लोग इस बात का इरादा कर रहे हैं कि एक बड़ी-सी खोज पार्टी बना कर ज़मीन खोद कर जाँच की जाय और हो सके तो उल्का-प्रस्तर

---

*इस पुस्तक में बग़दाद के ख़लीफ़ा हारूनुर्रशीद को १००० रात्रियों में सुनाई हुई बड़ी मनोरंजक और अद्भुत कहानियों का वर्णन है।

से लाभ उठाया जाय क्योंकि ऐसे पत्थरों में बहुत-सा अंश लोहे का रहता है। कोई-कोई उल्का तो शुद्ध लोहा होते हैं। कुलिक का अनुमान है कि इस प्रस्तर के कई टुकड़े तीन-तीन हज़ार मन के रहे होंगे।

प्रश्न और अभ्यास

१—लोग उल्काओं से क्यों डरा करते हैं ?

२—उल्का-प्रस्तर से क्या हानि होती है ?

३—उल्का-प्रस्तर; प्राण-घातक; तेजस्वी; उल्का-पात; मार्ग-रहित; अर्द्ध-सभ्य; वृहत्-काय; पतन-स्थान; तृण-रहित; ज्वालामुखी; आश्चर्यजनक; खोज पार्टी—इन शब्दों में समास बताओ।

४—धज्जियाँ उड़ जाना; बात की बात में; इने-गिने; छान-बीन करना—इनके अर्थ लिखो और अपने वाक्य बना कर इन्हें प्रयोग करो।

५—तारे टूटने के सम्बन्ध में लोगों में क्या भ्रम फैला हुआ है ? उसका वर्णन करो।

२१—बालिका का परिचय

[हिन्दी की प्रसिद्ध कवयित्री श्रीसुभद्राकुमारी चौहान की विशेषता यह है कि अपने अनुभवों को ऐसे सुन्दर, सुबोध और आकर्षक ढंग से रखती है कि पाठक को ऐसा मालूम होने लगता है कि शायद उसके ही हृदय की बात कवि कह रहा है इसी गुण के कारण आधुनिक स्त्री-कवियों में इनका स्थान सबसे ऊँचा माना जाता है 'मुकुल' नाम की इनकी कविता के संग्रह पर इनको हिन्दी-साहित्य सम्मेलन की ओर

से ५००) रु० का पुरस्कार मिला था। प्रस्तुत कविता में लेखिका ने अपनी छोटी बालिका के प्रति अपने स्नेह का सच्चा तथा मार्मिक वर्णन किया है। एक कवि माता के हृदय से ही ऐसे विचार निकल सकते हैं।]

यह मेरी गोदी की शोभा,
सुख-सुहाग की है लाली।
शाही-शान भिखारिन की है,
मनो-कामना मतवाली ॥

दीप-शिखा है अन्धकार की,
घनी घटा की उजियाली।
ऊषा है यह कमल-भृङ्ग की,
है पतझड़ की हरियाली ॥

सुधा-धार यह नीरस दिल की,
मस्ती मगन तपस्वी की।
जीवित ज्योति नष्ट नयनों की,
सच्ची लगन मनस्वी की ॥

बीते हुए बालपन की यह,
क्रीड़ा-पूर्ण वाटिका है।
वही मचलना, वही किलकना,
हँसती हुई नाटिका है ॥

मेरा मन्दिर, मेरी मसजिद,
काबा-काशी यह मेरी।
पूजा-पाठ ध्यान-जप-तप,
है घट-घट-वासी यह मेरी ॥

कृष्णचन्द्र की क्रीड़ाओं को,
अपने आँगन में देखो।

कौशल्या के मातृमोद को,
अपने ही मन में लेखो ॥
प्रभु ईसा की क्षमाशीलता,
नबी मुहम्मद का विश्वास।
जीव दया जिनवर गौतम की,
आओ देखो इसके पास ॥
परिचय पूछ रहे हो मुझसे,
कैसे परिचय दूँ इसका ?
वही जान सकता है इसको,
माता का दिल है जिसका ॥

प्रश्न और अभ्यास

१—"कृपा है यह कमलभृंग की" इसका भाव स्पष्ट करो।

२—"प्रभु ईसा की क्षमाशीलता" आदि छन्द से शिशु की प्रकृति के सम्बन्ध में क्या कहा गया है ? तुम्हारी समझ में क्या छोटे बालकों में ये सब गुण पाए जाते हैं ?

३—"कृष्णचन्द्र की क्रीडाओं को अपने आँगन में देखो" इत्यादि जो कहा है वह किस प्रकार सम्भव हो सकता है ?

४—अपनी बालिका के विषय में माता ने इस कविता में जो कुछ कहा है उसे गद्य में लिखो।

५—इस कविता में कवि का जो प्रधान भाव है उसे दो तीन वाक्यों में प्रकट करो।

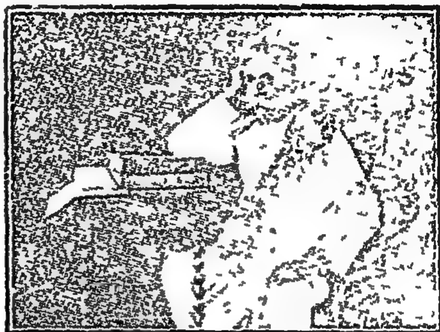
६—इस कविता को याद करके सुनाओ।

७—इस पाठ के समास-युक्त शब्दों की सूची बना कर उनका विग्रह करो।

२२—देहाती पञ्चायतें

(लेखक—श्री आचार्य पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदी)

[आप दौलतपुर ज़िला रायबरेली के निवासी, कान्यकुब्ज ब्राह्मण हैं। आपका जन्म सं० १९२१ वि० में हुआ था। संवत् १९६० वि० मे आपने रेलवे की नौकरी छोड़ दी और "सरस्वती" नाम्नी प्रसिद्ध मासिक पत्रिका का सम्पादन करना आरम्भ किया। अब उस कार्य से भी अवकाश ग्रहण कर भगवद्-भजन कर रहे हैं। द्विवेदीजी उच्चकोटि के गद्य- लेखक और प्रसिद्ध समालोचक हैं। आप जैसे साहित्य-सेवी सज्जन हिन्दी-संसार में इने-गिने ही निकलेंगे। आपने खड़ी बोली में कविता भी की है। हिन्दी भाषा की उत्पत्ति, सम्पत्तिशास्त्र, वेकन-विचार-रत्नावली और स्वतन्त्रता आदि कई अच्छे-अच्छे ग्रंथ लिखे हैं।]



आचार्य पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदी

पञ्चायतें इस देश की बहुत पुरानी संस्थाएँ हैं। इनका अस्तित्व अब तक लोप नहीं हुआ। अब भी प्रायः प्रत्येक गाँव में कोई न कोई जगह ऐसी निश्चित रहती है, जहाँ सब लोग, आवश्यकतानुसार, शाम को एकत्र होते और आपसी झगड़ों को आपस मे ही तय कर लेते हैं। इन पञ्चायतों का बल यद्यपि उच्च जातियों मे घट गया है, तथापि नीच कहलानेवाली जातियों मे इनका अब तक प्रचाराधिक्य है। वे लोग अपने सामाजिक ही

नहीं, दीवानी और फौजदारी के मामले भी, बहुधा अपनी ही पञ्चायतों के सामने पेश करते हैं।

देश में अंगरेज़ी राज्य के स्थापित हो जाने पर प्रायः सभी प्रांतों में सरकारी पञ्चायतें खोल दी गईं। उनके अधिकार और संगठन आदि के नियामक कानून भी बन गए। पर प्रत्येक प्रांत का नियम जुदा-जुदा रहा। किसी प्रांत की पञ्चायतों को कुछ कम अधिकार मिले, किसी प्रांत की पञ्चायतों को कुछ अधिक। उनके संगठन आदि में कुछ न कुछ भिन्नता रही। संयुक्त-प्रांत की व्यवस्थापिका सभा (लेजिस्लेटिव कौंसिल) ने इस विषय का कानून सन् १९२० में बनवाया था। यहाँ उसकी मुख्य-मुख्य बातों का उल्लेख किया जाता है।

पञ्चायतों का खोला जाना

जिस ज़िले या ज़िले के जिस हिस्से में पञ्चायत-कानून ज़ारी कर दिया जाता है उसके किसी भी मौज़े में पञ्चायत खुल सकती है। अगर मौज़ा छोटा है तो पास पड़ोस के कई मौज़ों को मिला कर पञ्चायत का एक हलका मुकर्रर कर दिया जाता है। पञ्चायत का दफ्तर किसी एक ही मौज़े में रहता है वहीं सब पञ्च, नियत समय पर उपस्थित होते और मामले-मुकद्दमे करते हैं। पञ्चों की संख्या ५ से कम और ७ से अधिक नहीं होती। उन्हीं में से एक आदमी सरपञ्च मुक़र्रर कर दिया जाता है। उसमें लिख पढ़ सकने की योग्यता का होना आवश्यक है। क्योंकि पञ्चायत के रजिस्टर वगैरह उसी को भरने पड़ते हैं।

पञ्चायत खोलने की इच्छा होने पर मौज़े के खास-खास निवासियों को ज़िले के हाकिम को दरख़ास्त देनी पड़ती है। हाकिम इस बात की जाँच करता है कि पञ्चायत खोलने की ज़रूरत है या नहीं और काफी तादाद में काम करने योग्य पञ्च

मिल सकते है या नहीं। जाँच का फल अनुकूल होने पर कलेक्टर या डिपुटी-कमिश्नर पञ्च नामज़द कर देता है। उन्हीं में से एक को सरपञ्च बना देता है। पञ्च और सरपञ्च मुक़र्रर और बरखास्त करने का अधिकार उसी को है। और सब कार्रवाई हो चुकने पर रजिस्टर, फार्म, कानून की किताब वग़ैरह सामान पञ्चायत को भेज दिया जाता है और यह नियत कर दिया जाता है कि हफ्ते में किस-किस दिन पञ्चायत बैठ कर काम किया करेगी। बैठक का काम तभी हो सकता है, जब सरपञ्च को मिला कर कम से कम तीन पञ्च उपस्थित हो।

पञ्चायतों के अधिकार

पञ्चायतो को दीवानी और फौजदारी दोनो मदों के कुछ अधिकार प्राप्त है। सफाई और आवारा घूम फिर कर नुक़सान पहुँचानेवाले मवेशियो के सम्बन्ध में भी उन्हें कुछ अधिकार दिए गए हैं।

नालिशों और मुकद्मों का सुना जाना

पञ्चायत नालिशो और मुकद्मो को उसी तरह सुन सकती है जिस तरह सरकारी अदालतें सुनती हैं। अपराधी या प्रतिवादी से वह जवाब तलब करती है और सबूत और सफाई के गवाहो की गवाही लेती है। जो बयान उसके सामने होते हैं, उनका सारांश मात्र सरपञ्च अपने रजिस्टर में लिख लेता है। जरूरत होने पर मामले स्थगित भी कर दिए जाते हैं; पर कानून के अनुसार, जहाँ तक हो सके, पञ्चायतो के फैसले जल्द सुना देने चाहिए; व्यर्थ तूल न देना चाहिए। अपराधी और प्रतिवादी की अनुपस्थिति में भी पञ्चायत अपना निर्णय दे सकती है; मगर फौजदारी के मामलों में यह आवश्यक है कि कम से कम एक दफे मुलजिम हाज़िर होकर अपने ऊपर लगाया गया इलज़ाम

सुने और यदि कुछ जवाब रखता हो तो दे। सम्मन बाकायदा तालीम हो जाने पर भी यदि वह पञ्चायत के सामने हाज़िर न हो तो रिपोर्ट की जाने पर ज़िले का हाकिम उसे ज़बरदस्ती हाज़िर कराने की कार्रवाई कर सकता है।

पञ्चायत के किए हुए फैसलों की अपील नहीं होती। हाँ यदि कुछ गैर-कानूनी कार्रवाई हुई हो तो ज़िले के हाकिम को दरख़ास्त देने पर उसे फिर से देखा जा सकता है। और सब हालतों में पञ्चायत के फैसले अन्तिम होते हैं। जजी और हाईकोर्टों के फैसले ख़ारिज हो सकते हैं, पञ्चायतों के नहीं।

नालिश में डिगरी देने पर पञ्चायतें ६) सैकड़े सालाना के हिसाब से डिगरी की तारीख़ से रुपया अदा होने तक सूद भी दिला सकती हैं। वे चाहें तो डिगरी के रुपयों को किस्तों में अदा करने का हुक्म दे सकती हैं। डिगरी का रुपया यदि एक महीने के अन्दर अदा न किया जाय तो ज़िले के हाकिम को लिखने पर वह बकाया मालगुज़ारी के तौर पर जबरन वसूल किया जा सकता है।

फौजदारी के मुकद्दमों में किए गए जुरमाने को अदा करने की म्याद १० दिन है। यदि उस बीच में रुपया न अदा किया गया तो कलेक्टर या डिपुटी-कमिश्नर को लिखने से वे लोग उसे भी जबरन वसूल कराकर पञ्चायत में जमा करा देते हैं।

मुकद्दमों या नालिशों का फैसला वादी-प्रतिवादी की स्वीकृति से कसम या हलफ पर भी किया जा सकता है। यदि वे आपस में कोई समझौता कर लें और मुकद्दमा या नालिश उठा लेना चाहें तो उनकी ऐसी दरख़ास्त को भी पञ्चायत चाहे तो स्वीकार कर सकती है।

मुकद्दमा सुनते वक्त अगर पञ्चायत को यह मालूम हो जाय कि मामला सगीन है, अतएव जो सजा वह दे सकती है वह

अपराधी के लिए काफी न होगी, तो वह मुकद्दमे की रिपोर्ट जिले के हाकिम को कर सकती है। इस हालत में मुकद्दमा पञ्चायत से उठ कर सदर में या किसी ऐसी अदालत में, जो उसे सुनने का अधिकार रखती हो, चला जायगा।

पञ्चायत मे सबसे बड़ी बात यह है कि न्याय करने की सारी जिम्मेदारी पञ्चों पर छोड़ दी गई है। पञ्चायत सम्बन्धी कानून मे जो कुछ लिखा है उसे छोड़ कर और किसी कानून की पाबन्दी नहीं। इसी से पञ्चायतो को हिदायत है कि धर्म और ईमान को वे हाथ से न जाने दें। गवाही की वे वहीं तक परवाह करें जहाँ तक कि धर्म और न्याय उन्हे इजाज़त दें। जिस मामले की सचाई के वे कायल है, उसे झूठी शहादतो के आधार पर, वे झूठ न समझ लें; क्योंकि पञ्चायतो के लिए गवाहो के क़ानून का मानना आवश्यक नहीं। पञ्चायतो के पंच पास-पड़ोस की हालत, मामलो-मुक़द्दमो की असलियत और दोनो-दलो के चाल-चलन आदि से पूरी जानकारी रखते है, अतएव उस जानकारी से लाभ उठा कर उन्हे दूध का दूध और पानी का पानी अलग कर देना चाहिए।

पञ्चायतों के विशेषाधिकार

अगर कोई पञ्चायत अच्छा काम करे, उसके सरपञ्च और पञ्च विशेष योग्य साबित हो, दरख्वास्त देने पर ज़िले का हाकिम सिफारिश करे तो सरकार उस पञ्चायत के अधिकार बढ़ा सकती है। ऐसी पञ्चायतें—

(१) पचास रुपए मालियत तक की नालिशें सुन सकती है।

(२) बीस रुपए तक की कीमत की चीज़ चोरी जाने पर चोरी के जुर्म के दावे ले सकती है।

(३) बीस रुपए के नुकसान या घाटे के बदले दिलाने के मुकद्दमों को कर सकती हैं।

(४) फौजदारी के और मुक़द्दमों में बीस रुपए तक या जो घाटा हो उसकी दूनी रक़म तक जुर्माना कर सकती हैं।

(५) पशुओं के अनुचित प्रवेश के क़ानून के अनुसार दस रुपए तक और सफाई तथा स्वास्थ्य क़ानून के अनुसार दो रुपए तक जुर्माने की सजा दे सकती हैं।

फुटकर बातें

मुकद्दमों और नालिशों की फीस, जुर्माने और मुआविज़े का रुपया ऐसी रक़में जो सरकार या और कोई दे, सब पञ्चायत के कोश में जमा होती रहेंगी। यह रुपया पञ्चायत के हलके की सफाई वगैरह तथा उसमें रहनेवालों की भलाई के और कामों—उदाहरणार्थ नालों पर पुल बनवाने, कुएँ और तालाब खुदवाने या उनकी मरम्मत कराने तथा आम रास्तों की मरम्मत और सफाई में खर्च किया जायगा। मगर खर्च करने के पहले जिले के हाकिम या पञ्चायत के अफसर की मंजूरी दरकार होगी।

पञ्चायतों का यह कर्तव्य है कि वे निश्चित नियमों के अनुसार अपने हल्के में शिक्षा की उन्नति के लिए, लोगों की तन्दुरुस्ती क़ायम रखने के लिए, पानी की कमी दूर करने के लिए और सर्वसाधारण के काम आनेवाली जमीनों और इमारतों की मरम्मत वग़ैरह के लिए यथाशक्ति प्रबन्ध करें।

ये पञ्चायतें एक प्रकार की सरकारी अदालतें समझी गई हैं और इनके पञ्च सरकारी मुलाज़िम करार दिए गए हैं। उनके कामों में रुकावट डालनेवालों पर मुकद्दमा चलाया जा सकता है। और उन्हें ५०) तक जुर्माने की सजा दी जा सकती है।

किसी पञ्च या पञ्चायत के विरुद्ध उसके किसी काम की बाबत, न कोई दीवानी कार्रवाई की जा सकती है और न कोई फौजदारी मुकद्दमा ही चलाया जा सकता है। शर्त यह है कि उसने अपने अधिकारों का बर्ताव नेकनीयती और साफ दिली से किया हो।

किसी मजिस्ट्रेट के हुक्म से फौजदारी के मामलों में पंचायतें मौके पर तहकीक़ात भी कर सकती हैं और माल के हाकिम के हुक्म से, खेती के कानून से सम्बन्ध रखनेवाली जाँच भी कर सकती हैं। अब तो सरकार पञ्चायतों के अधिकार, दिन पर दिन और भी बढ़ा रही है। उसने अब ऐसे क़ायदे बना दिए हैं जिनके मुताबिक चोरी की मामूली घटनाओं की रिपोर्ट भी चौकीदार पञ्चायतों को ही करते हैं। पञ्चायतें यदि उचित समझती हैं तो थानेदार को उसकी खबर करती हैं और नहीं समझतीं तो नहीं करतीं। दुर्घटनाओं के कारण हुई मौतों और आत्महत्या के मामलों तक की जाँच अब पञ्चायतों ही को, मौके पर जाकर, करनी पड़ती हैं। उन्हें नकशे मिले हुए हैं। उनकी वे खानापुरी करती हैं और अपनी रिपोर्ट थाने को भेजती हैं। ऐसे मामलों में पुलिस तभी तहकीकात के लिए आती है जब पञ्चायतें उसके आने की ज़रूरत बतलाती है।

प्रश्न और अभ्यास

१—(क) देहाती पञ्चायतें किस तरह कायम की जा सकती हैं ?

(ख) उसके पञ्च और सरपञ्च किस तरह नियुक्त होते हैं ?

(ग) पञ्चायतों की बैठक कितने आदमियों के उपस्थित होने पर हो सकती है ?

२—दीवानी और फौजदारी से क्या आशय है ?

३—किस दशा में अपराधी की अनुपस्थिति में उसके मामले का फैसला पञ्चायत नहीं कर सकती ?

४—पञ्चायत के फैसले की जजी के फैसले से क्या विशेषता है ?

५—संगीन मामलों के विषय में पञ्चायत क्या काम करती है ?

६—पंचायत के कोश में जमा हुआ द्रव्य किन कार्यों में कैसे ख़र्च किया जाता है ?

७—पञ्चायतों को कौन-कौन-से अधिकार प्राप्त हैं ? प्रतिवादी किसे कहते हैं ? इसका विरोधी शब्द बतलाओ।

८—प्रचाराधिक्य, नियामक, सरपंच, मुल्तवी, तूल, हलफ, संगीन, शहादत और विशेषाधिकार—इन शब्दों के अर्थ लिखो ?

२३—काश्मीर-सुखमा

[ये पंक्तियाँ पण्डित श्रीधर पाठक विरचित "काश्मीर-सुखमा" नामक कविता से संग्रहीत हैं। यह कविता अत्यन्त ललित एवं मनोहारी है। पाठकजी हिन्दी के बड़े लब्ध-प्रतिष्ठ कवि थे और आगरा के जौंधरी गाँव के रहनेवाले सारस्वत ब्राह्मण थे। आपको सरकारी नौकरी में शिमला और नैनीताल के नैसर्गिक दृश्यों के देखने का अनेक बार सुअवसर प्राप्त हुआ था। पेंशन लेकर आप प्रयाग में रहने लगे।



पं० श्रीधर पाठक

पाठक जी प्रकृति-सौन्दर्य के बड़े प्रेमी थे और खड़ी बोली और

व्रज-भाषा दोनो ही में कविता करते थे। आपके कई ग्रंथ बहुत प्रसिद्ध हैं। आप हिन्दी-साहित्य सम्मेलन के सभापति भी थे।]

धनि धनि श्री काश्मीर-धरनि मन-हरनि सुहावनि।
धनि कश्यप-जस-धुजा, विश्व मोहिनि मनभावनि॥
धन्य यहाँ की धूलि, धन्य नीरद, नभ, तारे।
धन्य धवल हिम-शृङ्ग, तुंग, दुर्गम, दृग, प्यारे॥
धन्य नदी नदस्रोत, विमल गंगोद-गोत जल।
सीतल सुखद समीर, *वितस्ता तीर स्वच्छ-थल॥
धनि उपवन, उद्यान, सुमन सुरभित बन-बीथी।
खिल रही चित्र-विचित्र, प्रकृति के हाथनु चीती॥
धन्य सुथर गिरि-चरन, सरित निर्झर-रव-पूरित।
लघु दीरघ तरु विहंग-बोल, कोकिल कल कूजित॥
धनि सुखमा-सुख-मूल, सरित-सर-कूल मनोहर।
धनि सागर-सम-तल, विमल विस्तृत 'डल-वूलर'† ॥
एक एक सो सुघर अनेक सरोवर छाये।
प्रकृति-देवि निज रूप-लखन मनु मुकुर बनाये॥
प्रकृति यहाँ एकान्त बैठि निज रूप सँवारति।
पल-पल पलटति भेस छनिक छवि छिन-छिन धारति॥
यह सुरूप शृंगार रूप धरि बहु भाँतिन।
सर-सरिता, गिरि, सिखर, गगन, गह्वर तरुवर, तृन॥
पूरन करिबे काज, कामना अपने मन की।
किंकरता करि रह्यौ प्रकृति-पंकज-चरनन की॥
चहुँ दिसि हिम-गिरि-सिखर, हीर-मनिमौलि-अवलि मनु।
स्रवत-सरित-सित धार; द्रवत सोइ चन्द्रहार जनु॥
फल-फूलन-छवि-छटा छई जो वन उपवन की।
उदित भई मनु अवनि-उदर सो, निधि रतनन की॥

---

* नदी का नाम, † यह एक रमणीक ताल है।

तुहिन-सिखर, सरिता, सर, विपिनन की भिति सों छवि।
छई मंडलाकार, रही चारहुँ दिसि यों फवि॥
मनहुँ मनिमय मौलि-माल-आकृति अलवेली।
बाँधी विधि अनमोल गोल भारत-सिर सेली॥
अर्द्धचन्द्र सम सिखर-सैनि कहुँ यों छवि छाई।
मानहुँ चन्दन-धौरि गौरि-गुरु खौरि लगाई॥
हिम सैनिन सों घिरयौ अद्रिमंडल यह रूरो।
मोहत द्रोनाकार सृष्टि-सुखमा-सुख पूरो॥
वहु विधि दृश्य अदृश्य कला-कौशल सों छायो।
रच्छन विधि नैसर्ग मनहुँ विधि दुर्ग वनाओ॥
अथवा विमल वटोरि विश्व की निखिल निकाई।
गुप्त राखिवे काज सुदृढ़ सन्दूक वनाई॥
कै यह जादूभरी विश्व वाजीगर-थैली।
खेलत मे खुलि परी शैल के शिर पै फैली॥
यही स्वर्ग सुरलोक, यही सुर कानन सुन्दर।
यहि अमरन कौ ओक, यहीं कहुँ वसत पुरन्दर॥

प्रश्न और अभ्यास

१—इन पँक्तियों मे जहाँ कहीं अनुप्रास के उत्तम दृष्टान्त हों ढूँढ़ो।

२—इस कविता मे कवि ने अनेक उपमाएँ दी हैं। उनमें से तुम्हें सबसे अच्छी कौन मालूम होती है और क्यों?

३—कश्यप जस-धुजा, सरित-सर कूल, मौलिमाल; इनमे कौन समास हैं? विग्रह सहित बताओ।

४—धुजा, भेस, सिगार, सैनि, और सुखमा के शुद्ध रूप वतलाओ।

५—सुन्दर, मनोहर, सुहावन, सुवर—इन शब्दों के अर्थ में क्या अन्तर है?

२४—मीरा माँ

[श्रीचतुरसेन शास्त्री हिन्दी के बड़े लब्ध-प्रतिष्ठ लेखक हैं। आपकी लेखनी में असाधारण चमत्कार है। आप जिस विषय को लेकर वर्णन करने लगते हैं उसमें एक नई जान डाल देते हैं। बड़े प्रसिद्ध वैद्य होने पर भी आपका हिन्दी साहित्य का अनुराग सराहनीय है। प्रस्तुत लेख में आपने भगवद्भक्त रैदास और भगवत्प्रेम की सजीव मूर्ति मीराबाई के सम्मिलन का जो ओजपूर्ण वर्णन किया है उसका आध्यात्मिक प्रभाव पढ़नेवालों के हृदय पर बड़ा गहरा पड़ता है और 'जाति पांत पूँछे ना कोई। हरि को भजे सो हरि का होई' का प्रत्यक्ष उदाहरण हमारे समीप उपस्थित हो जाता है।]

(१)

ग्रीष्म की सन्ध्या थी। गंगा चुपचाप बह रही थी। काशी, अविनाशी शिव की वैकुण्ठ-पुरी, गम्भीर समुद्र की तरह डोलायमान हो रही थी। मणिकर्णिका घाट पर एक छोटी-सी दूकान में एक वृद्ध पुरुष बैठा सुई डोरा लिए नाक पर बिल्लौर का मोटा चश्मा चढ़ाए जूते सीं रहा था। वृद्ध दुर्बल, कृशकाय और नग्न था। वस्त्र के नाम उसकी कमर मे एक अंगोछा लिपट रहा था; परन्तु वह अत्यन्त स्वच्छ था; यद्यपि उससे उसका घुटनों तक का भाग भी पूरा ढका नहीं था।

जूते की दूकान सुनते ही मन मे घृणा के भाव उत्पन्न हो सकते हैं। चमार गन्दे वेश, गन्दे ढँग और गन्दी दूकानों पर जूते बनाते हैं—परन्तु इस वृद्ध पुरुष की बात ही निराली थी–गन्दगी नाम को न थी। उसका शरीर यद्यपि कृश और दुर्बल था पर उसके नेत्रो में एक आभा, ओठो मे एक आनन्द और प्रशस्त ललाट मे एक निश्चिन्त की झलक थी।

उसकी बीच से उभरी हुई खोपड़ी उसकी मेधा-शक्ति और विवेकपूर्ण भक्तिभाव की अधिकता का प्रमाण दे रही थी।

यही विचित्र पुरुष भक्त रैदास थे। वे कुछ पद गुन-गुनाते जाते और जूते में टाँके लगाते जाते थे। दो तीन युवक और एक दो अधेड़ अवस्था के पुरुष बैठे बीच-बीच में भक्तराज से कुछ प्रश्न कर लिया करते थे। इनका उत्तर अतिशय हास्य और उल्लास के साथ भक्तराज दे दिया करते थे। परन्तु उनका जूते में टाँका देना शिथिल नहीं होता था; मानो ऐसे अबाध रूप से गम्भीर विषयों पर बातें किए जाना और कार्य भी किए जाना उनका चिरअभ्यास कार्य था।

(२)

एक गगन-भेदी हर्षोल्लास और जय-ध्वनि को सुन कर वह चौंक उठा। उसने कहा—यह क्या है? शिष्यमंडल ने खड़े होकर देखा—अपार जन समूह धीरे-धीरे उधर ही बढ़ा चला आ रहा है। प्रचण्ड जय-घोष के बीच स्वरताल-मय वाद्य और एक मधुर कंठ की स्वर-लहरी कभी-कभी इतनी दूर से भी सुनाई देती है।

भक्तराज स्वयं उठ खड़े हुए और कौतूहल-पूर्ण नेत्रों से देखने और इधर-उधर के मनुष्यों से पूछने लगे। जन समूह इधर ही आ रहा था। निकट आने पर देखा—एक देवांगना जैसी भावावेश में तन्मय हुई, अर्धनिमीलित नेत्रवती, परम सुन्दरी, गौरवर्णी, कृशांगी, स्त्री, अद्भुत नृत्य करती और संगीत-लहरी-से वातावरण में एक कम्पन उत्पन्न करती, रस-विमूढ़ हुई, बढ़ी चली आ रही है। उसे न शरीर का ज्ञान है, न जन-रव का, न परिस्थित का। पचासों दासियाँ उसे घेरे हैं। बहुतों के हाथ में वाद्य, बहुतों के हाथ में थाल हैं और बहुत-सी प्रचुर स्वर्ण-मुद्राएँ मार्ग में बखेरती चल रही हैं।

देवी की प्रत्येक भाव-भंगी पर जन-समूह प्रचंड जयघोप करता है—एक साधारण श्वेत साड़ी के परिधान से उसका शरीर ढका हुआ है। अलङ्कार नहीं, पैरों मे जूता नहीं, पर एक अपूर्व उज्ज्वल आलोक उसके अर्ध-निमीलित नेत्रों मे और शारदीयचन्द्र के समान अध्यायित करनेवाली एक प्रभा उसके मुख-मंडल में से निकल कर, जनता को उन्मत्त कर रही थी। अनेक लोग बेसुध हुए, देवी की तालपर नाचने लगे थे। असंख्य पुरुष जयजयकार का उन्मत्त घोष कर रहे थे। धीरे-धीरे वह जाग्रत-ज्योति आगे बढ़ रही थी।

(३)

भक्तराज ने और निकट आने पर देखा—और विस्मय तथा हर्प से विक्षिप्त हो कर कहा, 'अरे! यह तो मीरा माँ हैं।' वृद्ध भीड़ की ओर दौड़ा। पीछे शिष्य वर्ग भी दौड़े। भीड़ में बहुत लोग, 'हैं—हैं,' 'चमार—चमार,' 'दूर—दूर' चिल्लाने लगे। अनेक, शाल कांधे पर डाले और पीताम्बर पहने चिकनी तोंद वाले, पण्डित 'शिव! शिव'!! कहते दूर भाग गए। बहुत-से गुँडों ने चीत्कार करके कहा 'दूर हो' 'दूर हो'! 'ओ चमार'! यह कह कर दंड-प्रहार का आयोजन किया। बहुत से धक्का देने चले—पर स्पर्श होने के भय से रह गए।

भक्तराज जाग्रत न थे। समाधिस्थ आगे बढ़ रहे थे। उनके विमूढ़ नेत्र न कुछ देख रहे थे न कान कुछ सुन रहे थे। वे दोनों हाथ पागल की भाँति आकाश की ओर उठाए 'मीरा माँ' 'मीरा माँ' कहते तीर की भाँति सीधे भीड़ मे घुस गए। भीड़ स्पर्श-दोप से बचने के लिए हट गई। क्षण भर मे भक्तराज मीरा के सम्मुख थे।

मीरा हठात् स्तम्भित हो गई। मन्त्र मुग्धा सर्पिणी की तरह अचल खड़ी हो गई। उसने विस्फारित नेत्रों से क्षण भर

भक्त-राज की ओर देखा—भक्तराज तो अब भी सावधान न थे। वे 'माँ मीरा' 'माँ मीरा' करके नाच रहे थे। निकट आते ही वे धड़ाम से मीरा के चरणों मे गिर कर वहाँ की धूल सिर पर डालने लगे। पर उसी क्षण मीरा भी पृथ्वी पर 'गुरु-देव' कह कर लौट गईं।

(४)

अद्भुत दृश्य था। दोनो भक्त-शिरोमणि एक दूसरे के चरण-स्पर्श करने की सम्पूर्ण चेष्टा कर रहे थे। धीरे-धीरे दोनों के नेत्रो मे प्रेमाश्रुधारा वह चली। जन समूह उन्मादग्रस्त-सा होकर 'जय माँ मीरा' वारम्बार चिल्लाने लगे। अब वह नीच ऊँच का भेद भी भीड़ भूल गई। 'जय भक्तराज रैदास' की पुकार भी वारम्बार आकाश को चीरने लगी। असंख्य लोग भक्ति-मग्न हो नाचने लगे।

धीरे-धीरे मीरा उठी। उसने अर्ध-नग्नावस्था मे गाना आरम्भ किया:—

मीरा मन मानी, सुरत सैल असमानी।
जब जब सुरत लगै वा घर की, पल पल नैनन पानी।
ज्यों हिय पीर तीर सम सालत, कसक-कसक कसकानी॥
रात दिवस मोहिं नींद न आवत, भावे अन्न न पानी।
ऐसी पीर विरह तन भीतर, जागन रैन विहानी*॥
ऐसा वैद्† मिले कोई भेदी, देश विदेस पिछानी‡।
तासों पीर कहूँ तन केरी, फिर नहिं भरमौं खानी॥
खोजत फिरौं भेद वा घर को, कोई न करत बखानी।
रैदास सन्त मिले मोहिं सतगुरु, दीन्ह§सुरत सहदानी॥

---

*सवेरा, दिन। †वैद्य। ‡पहचाननेवाला। §दिया।

मैं मिली जाय पाय पिय अपना, तब मोरी पीर बुझानी* ।
मीरा खाक† खलक‡ सिर डारी, मैं अपना वर जानी ॥

मीरा गाते-गाते रोने लगी। रैदास अभी पृथ्वी पर ही पड़े थे। सहस्रों नर-नारी रो रहे थे। किसी को तन मन की सुध न थी।

रैदास उठे। उनका मुख आँसुओं से भीग रहा था। वे सर नीचा किए अपनी दूकान की ओर चले। पीछे मीरा और उसके पीछे अपार भीड़ थी।

(५)

रैदास अपने आसन पर जा बैठे। अधसिला जूता सामने धरा था। मीरा उनके सम्मुख एक चटाई के टुकड़े पर बैठी थी। सड़क पर असंख्य नर-नारी खड़े थे। मीरा करबद्ध ध्यान से भक्तराज की बानी सुन रही थी। भक्तराज कम्पित कंठ और गद्‌गद्-स्वर से हृदय के गम्भीर प्रदेश से भक्तिरस के पद सुना रहे थे। समुद्र की तरह उमड़ती भीड़ सन्न हो रही थी।

अन्त मे मीरा ने संकेत किया। दासियों ने स्वर्ण-मुद्राओं से भरे दो थाल मीरा के सम्मुख धरे। कुछ गन्ध द्रव्य और बहुमूल्य वस्त्र भी थे। मीरा ने कर-वद्ध कहा—'गुरुवर! दासी की यह तुच्छ भेंट स्वीकार करें।'

रैदास ने स्वर्ण-समूह को देखा! उनके मुख पर हास्य की रेखा आई। उन्होंने सामने के अधसिले जूते को हाथ मे लेकर कहा 'मीरा माँ! ये स्वर्ण-मुद्रा मेरे किस काम की है? मै इन्हे क्या करूँगा? रखूँगा कहाँ? यह देखो मै प्रति दिन दो जोड़ा जूता आसानी से बना लेता हूँ। एक को बेच कर गृहस्थी पालता हूँ। दूसरे को बेच कर साधु-सन्तों की सेवा—जो बनती है कर लेता हूँ। मेरा काम अबाध रूप से चल रहा है। ये बहुमूल्य वस्त्र

* बुझ गई, कम हो गई। †धूल, मिट्टी। ‡दुनिया।

भला यह बूढ़ा क्या करेगा' ? मीरा ने हठ की। उसने संकेत किया। समस्त द्रव्य उसी क्षण साधु-सन्तों को गुरु रैदास के नाम पर बाँट दिया गया। जनता फिर 'जय मीरा' 'जय गुरु रैदास भक्त'! चिल्ला उठी।

प्रश्न और अभ्यास

१—लेखक ने भक्त रैदास का कैसा चित्र खींचा है। भक्त रैदास के सम्बन्ध में तुम क्या जानते हो?

२—(अ)—'उसके नेत्रों में ······झलक थी' (ब) 'अबाध रूप से··· कार्य था' (स) 'एक देवांगना जैसी······चली आ रही हैं।' (द) 'अलंकार नहीं···उन्मत्त कर रही हैं।' इन वाक्यों के अर्थ बहुत सरल भाषा में लिखो।

३—'धीरे धीरे ··रही थी'। यह वाक्य किसके लिए प्रयुक्त हुआ है?

४—हर्षोल्लास = हर्ष + उल्लास; भावावेश = भाव + आवेश; कृशांगी = कृश + अंगी; प्रेमाश्रु = प्रेम + अश्रु, इन सब शब्दों की संधियों को अच्छी तरह याद कर लो।

५—इस पाठ में से लेखक की चमत्कारपूर्ण वर्णन-शैली के कुछ उदाहरण लिखो।

६—मीराबाई के सम्बन्ध में तुम क्या जानते हो? उनके चरित्र का वर्णन करो।

२५—हा ! प्रेमचन्दजी !!

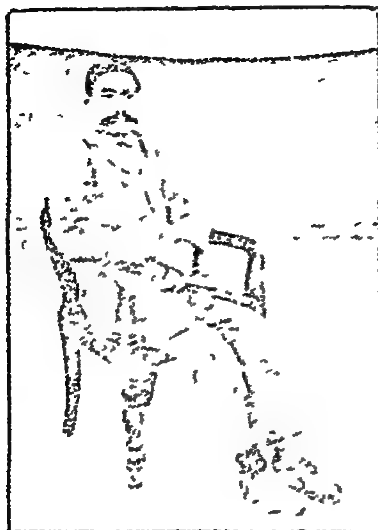
(लेखक—श्री बाबू रामदास गौड)

[श्री प्रेमचन्दजी की शोकजनक मृत्यु पर यह लेख गौडजी ने लिखा था और यह काशी से निकलने वाले दैनिक समाचार-पत्र "आज" में प्रकाशित हुआ था।

गौड़जी ने हिन्दी-साहित्य की अच्छी सेवा की है। आपके लिखे हुए लेख बडे चाव और आदर से पढ़े जाते हैं।]

कौन जानता था कि हमारे साहित्याकाश से यह सतत वर्धमान चन्द्र इतनी जल्दी सदा के लिए अस्त हो जायगा? प्रेमचन्दजी का व्यक्तित्व हमारे लिए सच्चे राष्ट्रीय गौरव का कारण था। हमको यह कहने का अवसर था कि हिन्दी-साहित्य में मौलिक लेखक हैं और ऐसे लेखक भी हैं जिनको दाग़ बेल पर एक ज़माना चलेगा। कराल काल ने वह अवसर हमसे छीन लिया। जब तक यह रत्न हमारी गाँठ मे था, हम इसकी क़ीमत नहीं जानते थे। आज खो गया और सदा के लिए खो गया तो हमे पता लग रहा है कि हमने कैसा अनमोल हीरा खोया, कैसा दुर्लभ रत्न हमारे हाथों से निकल गया। ओः! जिस दिमाग़ ने हिन्दी-साहित्य को इधर बीस वर्षों से चमका दिया था, उसके अन्धकारमय भविष्य को प्रदीप्त कर दिया था, अभी कल ही उसे हमने चिता की अग्नि मे भभकते और सदा के लिए भस्मसात् होते देखा! "भस्मान्त शरीरम्"—की ऐसी कठोर सचाई का अनुभव हमे जैसे कल ही हुआ!

काशी नगरी की उत्तर दिशा मे पांडपुर गॉव से एक मील के फासले पर लिमई गॉव के एक संभ्रान्त कायस्थ कुल के आप भूषण थे। ५६ वर्ष पहले काशी को ही इस चन्द्र को प्रकट करने का गौरव मिला था। वह ऐसा समय था कि हिन्दी को कोई पूछता न था। बच्चे, और खासकर कायस्थ बच्चे फारसी और उर्दू की तालीम पाते थे। फिर नौकरी पेशा कायस्थ तो जमाने की मॉग देख कर चलता है। बालक धनपतराय की शिक्षा भी उर्दू फारसी की ही हुई। पिता नौकरी करते थे। जहॉ-जहॉ गए, धनपतराय भी साथ गए। छात्रावस्था में काशी मे रहना होता तो भी हिन्दी से सम्पर्क हो जाता। गरज कि शिक्षा की समाप्ति तक हिन्दी साहित्य से कोई सम्बन्ध न था। परन्तु वाङ्मय का सौन्दर्य तो भाषारूपी शरीर का मुहताज नहीं है। वह सौन्दर्य पूर्व संस्कार से हृदय मे चित्रित था, उसके विकास के लिए परिस्थित चाहिए थी। उसके प्रस्फुटित होने का मौका मिला और वह उर्दू की कहानियों में निकल पड़ा।



श्री प्रेमचन्दजी

धनपतराय जब ट्रेनिंग कॉलेज, प्रयाग मे शिक्षा पा रहे थे, तब की कुछ याद है। तैंतीस बरस हुए। उस संस्था के भी ये मशहूर छात्रों मे थे। इनके बराबर कोई हॅस नहीं सकता था।

बहुतों ने नकलें की पर कोई वहाँ तक क्या पहुँचेगा। बतला-बतला कर साठ तरह की हँसी-हँसते थे और सभी साथियों को भरपेट हँसाते थे। हँसी की दावतें होती थीं। हँसी इनकी विशेषता थी। यह उन दिनों भी "मखजन" "जमाना" आदि उर्दू पत्रो में कहानियाँ लिखते थे। बत्तीस वर्ष हुए "सरस्वती" का भाई "अदीब" निकला और इण्डियन प्रेस ने ही निकाला। हिन्दी उर्दू की होड़ से चतुर प्रकाशक लाभ उठाना चाहते थे। एक सम्पादक की जरूरत थी। चुस्त और सुन्दर इबारत लिखने के लिए धनपतराय मशहूर हो चुके थे। "नवाबराय" के कल्पित नाम से इन्होंने सम्पादन आरम्भ किया। उसके आरम्भिक अंकों मे ही इनकी प्रतिभा चमकने लगी। परन्तु बहुत जल्दी वह पत्र बन्द हो गया और धनपतराय ने शिक्षा-विभाग मे सरकारी नौकरी कर ली। हँसी की उस अनवरत धारा का वेग कुछ घटा; वह किनारों से सीमित हो गई। विनोद अधिक गहरा हो गया, विचारों के ऊपर अंकुश लगा। फिर भी "प्रेमचन्द" के कल्पित नाम से लेखनी की धारा का प्रवाह जारी रहा। उर्दू साहित्य वाटिका के ये अत्यन्त मंजे माली समझे जाने लगे। उर्दू साहित्य के धुरन्धरों ने इन्हे अग्रगण्यों मे शुमार किया। धनपतराय का नाम मिट-सा गया। प्रेमचन्द की शुहरत हो गई।

बीस बरस के लगभग हुए कि प्रेमचन्दजी गोरखपुर मे नौकरी के ही सिलसिले मे थे। मित्रवर महावीरप्रसादजी पोद्दार, जो उन दिनो हिन्दी पुस्तक एजेन्सी को जन्म देकर प्रकाशको की श्रेणी मे आ गए थे, गोरखपुर मे प्रेमचन्दजी से मिलते जुलते थे। घनिष्ठ मित्रता थी। [अभी चार-पाँच दिन हुए संयोगवशात् प्रेमचन्दजी को देख कर मेरे पास आए थे। कहते थे कि "प्रेमचन्दजी को मैंने देखा तो मुमूर्ष से लगे।

जी उमड़ आया।"] इन्हीं पोद्दारजी की प्रेरणा से प्रेमचन्द हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में पहले-पहल पधारे। हिन्दी भाषा के पण्डित न थे। अभ्यास आरम्भ किया और पहले-पहल अपनी सात कहानियाँ उर्दू अक्षरों में और हिन्दी भाषा में लिखीं। वे ही नागरी अक्षरों में परिणत कर पहले-पहल हिन्दी पुस्तक एजेन्सी ने छापीं। इस हिन्दी-साहित्य के महारथी की हिन्दी-वाङ्मयी देवी के साथ यही सप्तपदी थी। उस समय से कुछ ही बरस पहले बंगाल के प्रमुख उपन्यासकार चारू बाबू भी साहित्यक्षेत्र में आ चुके थे। इनका सिक्का जम चुका था। नाम कर चुके थे। इन्हीं चारू बाबू को पोद्दारजी ने, जहाँ तक मुझे याद है, सप्तसरोज की एक प्रति सम्मति के लिए भेंट की। चारू बाबू ने पढ़ कर उस पर लिखा कि रवि बाबू की तो कथा ही भिन्न है, किन्तु कहानीकारों में प्रेमचन्द का स्थान बहुत ऊँचा है। रविबाबू का नाम चारू बाबू को इसलिए इनके सम्बन्ध में याद आया कि सहज-बंगीय-प्रिय चारू बाबू की अन्तःचेतना भी प्रेमचन्द को रविबाबू के बराबर गद्दी पर बिठाने को लाचार थी, मगर बाह्य-बंगीयता उनका हाथ पकड़ कर रोक रही थी।

प्रेमचन्दजी अब धड़ल्ले से हिन्दी लिखने लगे। उनकी कहानियाँ अब सामयिक पत्रों में खोजी जाने लगीं। आँखें प्रेमचन्द के नाम की तलाश करने लगीं।

मैं "सेवासदन" समालोचनार्थ पढ़ रहा था, उन्हीं दिनों स्वर्गीय पंडित पद्मसिंह जी शर्मा पधारे। पुस्तक छिन गई। उन्होंने पढ़ा। पढ़ कर प्रसन्न हो गए। समालोचना उनके साझे में लिखी गई। यह उनका पहला उपन्यास था तो भी आज वह कहानियों का सिरमौर है और फिल्मों में उतारा गया है। पंडित पद्मसिंह शर्मा कहते थे कि "प्रेमचन्द कहानी लेखन-कला में यकता हैं।"

हिन्दी साहित्य मे इन्हीं प्रेमचन्द के उदय से मौलिक कहानियो और उपन्यासों का विकास आरम्भ हुआ। यह मौलिकता ऐसी-वैसी न थी यह चतुर्मुखी थी। जहाँ नई सामाजिक वस्तु के साँचे बने, वहाँ "सत्यं, शिवं, सुन्दरम्" की रूपरेखा भी नए सिरे से खिंची, भाषा और शैली भी नये ढंग से ढली और सबसे बड़ी बात यह थी कि वाड्मय की इस नई मूर्ति मे राष्ट्रीयता की रूह फूक दी गई। अनुप्राणित और जानदार साहित्य निकलने लगा। 'प्रेमाश्रम' की स्थापना हुई। सेवा और प्रेम का रूप समाज को समाजवाद और साम्यवाद की ओर खीचने लगा। नये राष्ट्रीय आदर्शों का सजीव अभिनय 'रंगभूमि' पर होने लगा। राष्ट्रीयता के भावों ने देश का 'कायाकल्प' कर दिया और जो पहले कभी मुर्दा देश था, अब 'कर्मभूमि' बन गया। इन उपन्यासो का साधारण महत्व नहीं है। ये तेईस करोड़ जनता की वर्तमान सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक अवस्था की चित्रशाला हैं, एक एक अनमोल अलबम हैं जिनमे भविष्य के पढ़नेवाले आज का सच्चा इतिहास देखेंगे।

अन्त मे आपने 'गोदान लिखा। मानो आपने चलते चलाते राष्ट्र के हाथो मे मृत्यु के पहले 'गोदान' कर दिया है।

जब आप गोरखपुर मे नारमल स्कूल मे अध्यापक थे, तभी बी० ए० की डिग्री ली और सरकारी नौकरी छोड़ कर साहित्य-सेवा में लग गए। तब से साहित्य-सेवा से ही जीविकोपार्जन करते रहे। ये ही एक साहित्यसेवी थे जो साहित्य-सेवा से कुछ कमा सके। जब सिनेमा के लिए बम्बई गए तो मुझे बड़ा भय हुआ था कि देश ने एक और रत्न खोया, परन्तु वह उस मायाजाल से शीघ्र ही निकल आए। सरकारी नौकरी छोड़ने के बाद आपने अपना प्रेस भी कर लिया था। इधर 'हंस' और

'जागरण' दो पत्र निकालते थे। 'जागरण' कभी का बन्द हो चुका। 'हंस' की जमानत हाल में ही दाखिल करके उस मृत्यु-मुख से बचाया, परन्तु स्वयं गए। आप रामकटोरा के मानसरोवर से तो चले गए, अब 'हंस' रह गया है। उसके रक्षक भगवान् शंकर ही हों।

प्रेमचन्दजी एक अनोखे लेखक थे। उनकी सानी न है और न आगे निकलने की आशा है। हिन्दी-माता ने अपने यश को समुज्ज्वल करने को ही यह सुपुत्र जन्माया था और सचमुच भारत-मातृ का सिर ऊँचा करनेवाला सर्वभारतीय राष्ट्रीय साहित्यकार पैदा करने का हिन्दी माता को सच्चा गर्व है। हम आज सिवा इसके और क्या कर सकते हैं कि अपनी सप्रेम श्रद्धांजलि अर्पण करें और शोकाकुल परिवार को सान्त्वना दें। और उनकी आत्मा—ऐसे पुण्यशील भाग्यवान की आत्मा—की सद्‌गति की प्रार्थना क्या करें; वह तो मातृनवमी को शरीर छोड़ कर सीधे वैकुण्ठ गए। "यद् गत्वा न निवर्तन्ते"*।



प्रश्न और अभ्यास

१—प्रेमचन्दजी के जीवन-चरित्र के सम्बन्ध में क्या जानते हो? संक्षेप में लिखो।

२—प्रेमचन्दजी ने किस प्रकार हिन्दी-संसार में इतनी ख्याति पाई?

३—हिन्दी-साहित्य में कहानियों और उपन्यासों में आपने क्या उलट-फेर कर दिया?

४—आपके किस उपन्यास का फिल्म लिया गया है? उस उपन्यास का नाम लिखो और यदि पुस्तक मिल सके तो उसे पढ़ो।

---

* जहाँ जा कर लोग नहीं लौटते हैं।

५—आप किन-किन पत्रों का सम्पादन करते थे ? इन पत्रों के सम्बन्ध में जो कुछ भी जानते हो लिखो।

६—"प्रेमचन्दजी एक अनोखे लेखक थे, उनका सानी न है और न आगे निकलने की आशा है।" 'इस वाक्य के प्रत्येक शब्द की पदव्याख्या करो।

२६—रंग में भंग

(लेखक—श्रीमैथिलीशरण गुप्त)

[गुप्तजी चिरगाँव ज़िला झाँसी के रहनेवाले हैं। खड़ी-बोली के वर्त्तमान कवियों में आपका स्थान बहुत ही ऊँचा है। आपकी रचनाओं में भारत-भारती, जयद्रथ-वध, रंग में भंग, पञ्चवटी, साकेत आदि और बँगला से पद्यानुवादों मे विरहिणी ब्रजांगना, पलासी का युद्ध, मेघनाद-वध आदि विशेष उल्लेखनीय है। आपकी 'भारत-भारती' का प्रवेश गाँव-गाँव मे हो गया है और आपका 'साकेत' एक ऐसा काव्य है, जो किसी भी उत्तम काव्य की समता मे रक्खा जा सकता है।



श्रीमैथिलीशरण गुप्त

आपने चन्द्रहास और तिलोत्तमा नाम के दो नाटक भी लिखे हैं। अभी हाल ही में आपने 'सिद्धराज' और 'द्वापर' दो काव्य-ग्रन्थ और रचे हैं।

२१ जुलाई सन् १९३६ ई० को आपकी ५० वीं वर्षगाँठ देश भर में बड़ी धूमधाम से मनाई गई थी।]

जिस समय से इस कथा का है यहाँ वर्णन चला।
था अनल निधि गुण अवनि तब विक्रमी संवत् भला॥
उस समय से इस समय की कुछ दशा ही और है।
पलटता रहता समय संसार में सब ठौर है॥१॥
वीर हामा जी नृपति जब स्वर्ग-वासी हो गये।
पुत्र तब उनके हुए वरसिंह बूँदी-नृप नये॥
अनुज नृप वरसिंह के थे लालसिंह महाबली।
राजधानी रम्य उनकी हुई गैनोली स्थली॥२॥
प्रीति दोनो भाइयों में नित्य रहती थी बड़ी।
थी प्रजा सन्तुष्ट उनके सद्गुणों से हर घड़ी॥
प्राण रहते तक उन्होंने न्याय को छोड़ा नहीं।
और अपने धर्म का बंधन कभी तोड़ा नहीं॥३॥
लालसिंह नरेन्द्र के सम्पूर्ण-सद्गुण-संयुता।
थी हिमालय-नन्दिनी-सी एक अति प्यारी सुता॥
ज्यों अलौकिक रूप में थी वह विशेष प्रभावती।
थी विदित त्योंही सुहृदया शील-मूर्ति महामती॥४॥
जगमगाती एक अनुपम ज्योति धारण कर नई।
पाणि-पीड़न योग्य वह कुछ दिनों में हो गई॥
तब उसे जो वर मिला वह विदित वीर मनोज्ञ था।
योग्य से ही योग्य का संबंध होना योग्य था॥५॥
आज भी चित्तौर का सुन नाम कुछ जादू भरा।
चमक जाती चंचला-सी चित्त में करके त्वरा॥
भूप "खेतल" नाम के जो थे वहाँ सीसोदिया।
वीरवर वरसिंह ने सम्बन्ध उनसे ही किया॥६॥

तब तुरन्त विवाह की होने लगीं तैयारियॉं ।
गीत दोनों ओर शुभ गाने लगीं नव-नारियाँ ॥
उन दिनों चित्तौर मे भू-गर्भ से विस्मयमयी ।
एक रमणी रूप की प्रतिमा रुचिर पाई गई ॥७॥

एक कर नीचा नवाये, एक ऊपर को किये ।
एक कर संमुख बढ़ाये एक ग्रीवा पर दिये ॥
चौभुजी वह मूर्ति मानो कह रही थी यो अभी ।
हो खड़े, ऊँचे चढ़ो, आगे बढ़ो, देखो सभी ॥८॥

शीघ्र ही लाई गई वह मूर्ति तब दरबार मे ।
देख कर उसको पड़े सब सभ्य हेतु विचार मे ॥
विविध विधि होने लगी चर्चा उसी की तब वहॉं ।
देख अद्भुत वस्तु को बढ़ता न कौतूहल कहॉं ॥९॥

भूप के सम्मुख सभा में मूर्ति रक्खी थी जहॉं ।
राज-कवि बैठे हुए थे विज्ञ 'बारूजी' वहॉं ॥
देख कर उसको उन्होंने कर विचित्र विवेचना ।
पद्य राना को सुनाया एक यो तत्क्षण बना ॥१०॥

एक ऊँचा एक नीचा, एक कर सम्मुख किये ।
एक ग्रीवा पर धरे यह कह रही शोभा लिये ॥
स्वर्ग मे पाताल में नृप आप-सा दानी नहीं ।
शीश मैं अपना कटाऊँ जो मिले कोई कहीं ॥११॥

श्रवण कर यह छन्द कवि का सब कुतूहल मे पगे ।
चतुरता उनकी तथा वर्णन सभी करने लगे ॥
उस समय सबके मुखों से 'धन्य' भाषण सुन पड़ा ।
तनिक से भी काम का मिलता बड़ों को यश बड़ा ॥१२॥

लग्न कन्या-पक्ष के जो लोग लाये थे वहॉं ।
देख कवि को कुशलता वे भी हुए विस्मित महा ॥

और 'गैंनोली' गये जब तब कही वह भी कथा।
समय पर लघु बात भी जाती बखानी सर्वथा ॥१३॥
फिर बरात यथा समय सज कर चली चित्तौर से।
शीश राना का हुआ शोभित मनोहर मौर से॥
विविध वस्त्राभूषणों से द्युति मिली अति देह को।
सज चला रस-राज मानो छवि-बधू के गेह को॥१४॥

उचित अगवानी हुई तत्काल ही उसकी वहाँ।
गान-युत होने लगे मंगल विधान जहाँ-तहाँ॥
श्रेष्ठ जैसा चाहिए जनवास बतलाया गया।
था अपेक्षित जो जिसे सो सब वहीं पाया गया॥१५॥

अस्तु जब आया विदा का दिवस करुणामय बड़ा।
शोक है, उस दिन भयंकर विघ्न एक हुआ खड़ा॥
विघ्न क्या कहना उचित है सर्वनाश उसे अहो।
श्रवण कर उस बात को होगा न दुःख किसे कहो॥१६॥

जब सभा में सभ्य जन वर और कन्या-ओर के।
विविध वार्तालाप थे करते निहोर-निहोर के॥
और दोनों पक्ष का जब हर्ष था यों बढ़ रहा।
लालसिंह नृपाल ने तब सुकवि 'बारू' से कहा॥१७॥

"मूर्ति जो चित्तौर में थी मेदनी-तल में पड़ी।
सुन कथा उसकी हमें होती कुतूहलता बड़ी॥
और जो उसके विषय में 'गीत' तुमने थी गढ़ी।
प्रकट है उससे तुम्हारी काव्य-शक्ति बढ़ी-चढ़ी" ॥१८॥

'हर्ष है, तुमसे सुकवि हैं मान्य राना के यहाँ।
यह तुम्हारी योग्यता होगी नहीं स्वीकृत कहाँ॥
किंतु फिर भी खेद से कहना हमें पड़ता यही।
काम अपने योग्य यह तुमने कदापि किया नहीं॥१९॥

"स्वर्ग में पाताल मे, नृप! आप सा दानी नहीं।
क्या कलंकित इस कथन से की गई बानी नहीं?
कौन राना के गुणों की है नहीं कहता कथा?
किन्तु ऐसा कथन फिर भी गर्ह्य ही है सर्वथा ॥२०॥

"कह न सकते यों किसी से एक ईश्वर के बिना।
अद्वितीय मनुष्य जग मे कौन जा सकता गिना?
एक से है एक उत्तम पुष्प इस संसार का।
पार मिलता है किसे प्रभु-सृष्टि पारावार का" ॥२१॥

"सत्य ही क्या दूसरा दानी न राना सा कहीं!
शीश भी मुझ से कहो तो दान मैं दे दूँ यहीं॥
यदि इसी पर तुम न माँगो तो तुम्हें धिक्कार है।
माँगने पर मैं न दूं तो धिक् मुझे सौ बार है" ॥२२॥

"मूर्ति तो पाषाण की है क्या कटे उसका गला।
है मृतक-सा जो स्वयं क्या मारना उसका भला?
किंतु झूठी बात थी तुमने कही दरबार में।
तैर जाओ सो तुम्हीं निज खड्ग की खर-धार मे" ॥२३॥

वचन सुनि यों नृपति के कविराज लज्जित हो गये।
पड़ गये दृग-दीन मानों कंज हिम से धो गये॥
प्रथम सोच-विचार कर जो बात है कहता नहीं।
वह बिना लज्जित हुए संसार मे रहता नहीं ॥२४॥

तब उन्होंने शीश अपना काट डाला आप ही।
मारता है बस मनुज को मानसिक संताप ही॥
मृत्यु ही गति देखती गौरव-गमन के शोक मे।
है मरण से भी बुरा अपमान होना लोक मे ॥२५॥

एक छोटी-सी रुधिर की उष्ण धारा बह गई।
और हाहाकार करती समिति विस्मित रह गई॥

झटित खंडित मुंड उनका भू-लुठित होने लगा।
शूल-मूलक भूल मानों धूल में धोने लगा ॥२६॥

क्षुब्ध हो वर-पक्ष के सब लोग इस अपमान से।
जल उठे मानों वहाँ पर रोष के उत्थान से ॥
और लड़ने के लिए सब हो गए उठ कर खड़े।
ध्यान नित्य निजत्व का रखते सभी छोटे-बड़े ॥२७॥

विवश कन्या पक्ष के भी लोग तब लड़ने लगे।
रुंड-मुंड अनेक कट कर भूमि पर पड़ने लगे ॥
और की क्या बात है जो जनक भी अपना कहे।
तो कदापि लड़े बिना क्षत्रिय न उससे भी रहे ॥२८॥

अंत में संग्राम में वीरत्व दिखला कर महा।
वर-समेत बरातियों ने वीर-गति पाई वहाँ ॥
शूर कन्या पक्ष के भी हत अनेक हुए तथा।
हानि दोनों ओर की होती कलह में सर्वथा ॥२९॥

था जहाँ पर हर्ष का आलोक उज्ज्वल जगमगा।
अब भयंकर शोक का तांडव वहाँ होने लगा ॥
जानता था भंग होना कौन यों रस-रंग का?
ध्यान था किसको अहो इस शोचनीय प्रसंग का ॥३०॥

वृत्त उस विधवा वधू का शोक-कारक है निरा।
फूलने पर पहुँचते ही वज्र वल्ली पर गिरा ॥
स्वप्न-सा संसार उसको हो गया सहसा सभी।
शत्रुओं को भी न दे भगवान ऐसा दुख कभी ॥३१॥

जब उसे सखियाँ वहाँ बहु भाँति समझाने लगीं।
दैव पर कुछ वश न कह कर धैर्य-गुण गाने लगीं ॥
जाग कर ज्यों तब अचानक वचन जो उसने कहे।
प्रकट करके भाव उसका, गूँज वे अब भी रहे ॥३२॥

"वाम होकर हर सकेगा सुख न मेरा दैव ! तू।
हो भले ही विश्व मे बाधक विशेष सदैव तू॥
भूमि-सुख न सही, मिलेगा स्वर्ग-सुख मुझको अभी।
आर्यकन्या का अहित कोई न कर सकता कभी" ॥३३॥

शोक से चिर-संगिनी थीं रो रहीं सखियाँ सभी।
देख कर उनकी सलिल से पूर्ण थीं अखियाँ सभी॥
तब जननि-निकटस्थ उससे, प्राथमिक दृग-जल वहा।
वाष्प-गद्गद् कण्ठ से वरसिह ने आकर कहा॥३४॥

"भाल-लिपि मिटती नहीं, हे पुत्रि ! अब धीरज धरो।
अनल मे जल कर हमारा घर अँधेरा मत करो॥
नेत्र-तारा की तरह बूँदी रहो अथवा यहाँ।
भजन कर भगवान का दो दान जो चाहो जहाँ" ॥३५॥

भूप के इस कथन पर भी पूर्ववत् वह दृढ़ रही।
प्रिय-विरह की यातना जाती कहाँ किससे सही ?
दिव्य तेजोमय बदन से यह गिरा उसने कही।
ज्यों सुधा की शुद्ध धारा चन्द्र के द्वारा वही॥३६॥

"तात के वात्सल्य का मुझको बड़ा अभिमान है।
और मेरी भक्ति को भी जानता भगवान है॥
किन्तु अब इच्छा नहीं है देह-लालन की मुझे।
तात ! आज्ञा दो दया कर धर्मपालन की मुझे" ॥३७॥

"तात ! अन्तःकरण मेरा जल गया है ताप से।
मैं महा-हत-भागिनी हूँ पूर्वकालिक ताप से॥
हो गई मेरे दृगो की दृष्टि आज अदृष्ट है।
हाय ! मेरा नष्ट जीवन कष्ट से आकृष्ट है" ॥३८॥

"मरण एक न एक दिन तनुधारियों का सिद्ध है।
जन्म से ही मरण का सम्बन्ध लोक प्रसिद्ध है॥

किंतु अवसर का मरण भी सहज में मिलता नहीं।
इसलिए अब हे पिता! आज्ञा मुझे दीजे यहीं" ॥३९॥

यों अनेक प्रकार उसने वचन बहुतेरे कहे।
कह सका कोई न कुछ सब हाय! कर सुनते रहे॥
फिर वही होकर रहा भवितव्य था जो अन्त में।
शांति-युक्त सती हुई वह कीर्ति छोड़ दिगन्त मे॥४०॥

ग्रहण जो पति ने किया था कल अतीव उमंग से।
और पीला आज भी था जो हरिद्रा-रंग से॥
वह उसी कर से स्वपति का शीश रख कर गोद मे।
मिल गई चन्दन-चिता के ज्वाल-जालामोद मे॥४१॥

बात भी अब तक न जिससे थी हुई अनुराग मे।
यों उसी के साथ जीवित जल गई वह आग में॥
आर्य-कन्या मान लेती स्वप्न मे भी पति जिसे।
भिन्न उससे फिर जगत में और भज सकती किसे? ॥४२॥

धन्य है तू आर्य-कन्ये! धन्य तेरा धर्म है।
देवि! तू स्वर्गीय है, स्वर्गीय तेरा कर्म है॥
प्राण देना धर्म पर तेरे लिए क्या बात है!
कीर्ति भारत की तुझी से विश्व मे विख्यात है॥४३॥

प्रश्न और अभ्यास

१—इन शब्दों का अर्थ बताओ—

पाणि-पीड़न, कुतूहलता, गर्व, गौरव-गमन, रुण्ड, आलोक, यातना, गिरा।

२—बिन खड्ग की खर-धार में तैर जाओ, मृत्यु ही गति दीखती गौरव-गमन के शोक मे, प्राथमिक दृग-जल बहा—इनके अर्थ और भाव बताओ।

३—राजा लालसिंह ने 'बारूजी' कवि को क्यो फटकारा ? उसका क्या परिणाम हुआ ?

४—'रंग' क्या था ? उसमे 'भंग' क्या हो गया ?

५—इस कथा से उस समय के क्षत्रियों और क्षत्राणियों के विषय मे क्या अनुमान करते हो ?

६—यद्यपि आत्मघात करना पाप है और क़ानून भी इसके विरुद्ध है, तथापि सती को इतने आदर की दृष्टि से लोग क्यों देखते है ?

२७—गोस्वामी तुलसीदास का व्यक्तित्व

(लेखक—बाबू श्यामसुन्दरदास)

[यह पाठ रायबहादुर बाबू श्यामसुन्दरदास द्वारा रचित "तुलसीदास" नामक पुस्तक से संकलित है बाबू साहब हिन्दी के बडे प्रसिद्ध विद्वान् हैं। आपने हिन्दी के अनेक ग्रंथ लिखे और सम्पादन किए है। नागरी-प्रचारिणी सभा काशी मे आपका बडा उच्च स्थान है। आप काशी विश्वविद्यालय में हिन्दी-विभाग के प्रधानाध्यापक हैं। हिन्दी साहित्य के पढ़ानेवाले ऐसे विरले ही होंगे जिन्होंने बाबू साहब का नाम न सुना हो।]

गोसाईं जी की आकृति कैसी थी, उनका रूपरंग कैसा था, नाटे थे या लम्बे, हृष्ट-पुष्ट थे या दुर्बल, इसका हमें निश्चयपूर्वक कुछ भी ज्ञान नहीं है। "दयो सुकुल जन्म शरीर सुन्दर हेतु जो फल चारि को" के आधार पर उनके शरीर की सुन्दर और सुडौल रचना हमने मानी है। परन्तु यह भी हो सकता है

कि गोसाईं जी अपने शरीर को सुन्दर इसलिए समझते रहे हों कि वह धर्म-अर्थ-काम मोक्ष चारों फलों का साधन था। उनके जो चित्र छपते हैं उनसे भी हमारा ज्ञान नहीं बढ़ सकता क्योंकि उनकी प्रामाणिकता सन्दिग्ध है।



गोसाईं तुलसीदासजी

अब तक उनके दो चित्र मिले हैं। एक गंगाराम ज्योतिषीजी के उत्तराधिकारियों के यहाँ प्रह्लादघाट (काशी) पर है और दूसरा स्वर्गीय पंडा विन्ध्येश्वरीप्रसादजी के घर पर जो अस्सी (काशी) पर गोसाईं जी के अखाड़े के पास है। ये दोनों चित्र एक दूसरे से बिलकुल नहीं मिलते, यद्यपि दोनों वृद्धावस्था के ही जान पड़ते हैं। एक मे बहुत दुर्बल दिखलाए गए हैं और दूसरे मे बहुत स्थूल। आकृति में भी बहुत भेद है। अस्सीवाला चित्र डा० ग्रिअर्सन के प्रयत्न से पहले-पहल खड्ग-विलास प्रेस, बाँकीपुर से प्रकाशित रामायण में छपा था। इस चित्र का कोई भी पुरावृत्त ज्ञात नहीं है। कुछ लोग इस चित्र को सुन्दर मानते हैं। किस दृष्टि से, सो नहीं कहा जा सकता। यदि भारी भरकम शरीर होना सुन्दरता का एक-मात्र लक्षण हो तो यह चित्र भी गोसाईं जी को सुन्दर प्रमाणित कर सकता है।

प्रह्लाद घाट वाले चित्र के लिए कहा जाता है कि यह वही चित्र है जिसे जहाँगीर ने उतरवाया था। प्रह्लादघाट पर के तुलसीदासजी के अखाड़े के उत्साही अधिकारी पंडित रणछोड़ व्यास ने इसी चित्र के आधार पर गोसाईं जी की एक संगमरमर की मूर्ति बनवा कर स्थापित की है। इस चित्र के विषय में यह भी प्रसिद्ध है कि यह उस समय का है जब गोसाईं जी बाहु-पीड़ा से ग्रस्त थे, इसीलिए इसमे एक हाथ पतला दिखाया गया है।

नागरी-प्रचारिणी सभा से गोसाईं जी का जो चित्र प्रकाशित हुआ है वह इससे मिलता जुलता है, परन्तु उसमें दोनों हाथ पतले बनाए गए हैं। संभवतः प्रतिलिपिकारों ने एक हाथ को दूसरे से पतला रखना मूल चित्रकार की असावधानी समझी हो। आजकल विद्वानों का मत इसी को असली स्वीकार करने की

ओर है । जब तक इसके विरुद्ध कोई प्रमाण नहीं मिलते तब तक हमारी भी प्रवृत्ति इसी को प्रामाणिक मानने की होती है। तप और वार्धक्य से क्षीण होने पर भी गोसाईं जी इस चित्र में सुन्दर दिखाई देते हैं।

गोसाईं जी की बाहरी रूपाकृति के विषय में चाहे हमारी धारणा अनिश्चय में फँसी हो परन्तु उनके वास्तविक व्यक्तित्व के विषय में अनिश्चय का कोई स्थान नहीं। उनका हृदय एक खुली पुस्तक है। उनकी रचनाओं के द्वारा हम उनके हृदय में प्रवेश कर उनके व्यक्तित्व के उस रहस्यमय आकर्षण को समझ सकते हैं जिसके द्वारा आज हिन्दुओं की ही नहीं मनुष्य-मात्र की श्रद्धा और भक्ति उनकी ओर खिंची जा रही है।

वे प्रकृति के सरल थे और शील के आगार थे। उनका शील जिसकी आभा से रामचरितमानस भी अभिमंडित है, बाहरी शिष्टाचार मात्र नहीं है। वह उनके अस्तित्व का अभिन्नांश है, उनके हृदय का विभव है। राम के गुणों ने उनके हृदय में बैठ कर सब दुर्गुणों और सांसारिक वक्रताओं के लिए अर्गला लगा दी थी। वैर और विरोध से वे दूर रहते थे।

प्राणि-मात्र से उनके हृदय का लगाव था और सभी के हित-साधन को वे लक्ष्य में रखते थे। यही कारण है कि छोटे से छोटे और बड़े से बड़े के घर में भी उनकी वाणी की गूँज सुनाई देती है। बाइबिल को छोड़ कर रामचरितमानस के समान सर्वप्रिय संसार में कदाचित् ही कोई दूसरा ग्रंथ हो। वह भी इसलिए कि उसे गोसाईं जी ने सब के लिए हमेशा को लिखा है। 'राममय' होने के कारण सब को वे सम-दृष्टि से देखते थे। इसी सम-दृष्टि में उनकी सहिष्णुता और क्षमाशीलता का भी रहस्य छिपा हुआ है। जब वे किसी अवस्था में भेद ही नहीं समझते थे तब किसी

के उन्हे बुरा कहने पर भी वे बुरा कैसे मान सकते थे? वे उस अवस्था मे बहुत ऊँचे उठ गये थे जहाँ भले और बुरे का भेद लोगो को चंचल कर देता है। कोई उनकी प्रशंसा करे अथवा निंदा, इससे उन्हें कोई मतलब नहीं रहता था।

साधु-संतो को भला बुरा कहने से निश्चय ही लोग अपनी ही वास्तविकता का परिचय देते हैं। उससे संतो का कुछ बन या बिगड़ नहीं सकता। इसी से किसी निंदक की उन्होने बुराई नहीं चाही। उनको यही सहिष्णुता भिन्न-भिन्न विरोधी धर्म-संप्रदायों के सामंजस्य-विधान मे प्रतिफलित हुई। उनके ग्रंथों से यह बात स्पष्ट ही है कि वे स्मार्त वैष्णव थे। इनके साथ मध्याह्नव्यापिनी रामनवमी को उनके रामचरितमानस के प्रारम्भ करने से यह बात और भी पुष्ट हो जाती है, क्योकि स्मार्त वैष्णव ही मध्याह्न में रामनवमी मानते है। साधारण मत से उदय-काल मे राम-नवमी मानी जाती है।

स्वयं वैष्णव होते हुए भी उन्होंने शैवों की निन्दा नहीं की बल्कि शिव और विष्णु दोनो की समानता का प्रतिपादन किया। वैष्णवो और शैवो का विरोध उन्हे अच्छा नहीं लगा। इस वैर को मिटाने के लिए उन्होने शिव को राम का अनन्य भक्त और राम का शिव का उपासक बनाया। उनके राम ने इस बात को स्पष्ट कर दिया कि 'शंकर प्रिय मम द्रोही, शिव-द्रोही मम दास', दोनो नरक के भागी हैं। जो एक का विरोधी हो वह दूसरे का भक्त नहीं हो सकता। राम भक्त का यह लक्षण है कि वह शिव का भी सेवक हो।

"बिनु छल विश्वनाथ-पद नेहू।
राम भगत कर लच्छन एहू॥"

एक कथानक तो उनको जैनो और हिन्दुओं के बीच भी सामंजस्य स्थापित करता-सा दिखाता है। हिन्दुओ को किसी

भी देवता की उपासना को अथवा किसी भी सम्प्रदाय को उन्होंने अपने सामंजस्य-विधान के बाहर नहीं छोड़ा है। विनय-पत्रिका में उन्होंने गणेश, सूर्य आदि प्रत्येक देवता की वंदना की है। यदि किसी मत से उनकी सामंजस्य-बुद्धि का विरोध हुआ तो वह वाम-मार्ग से। वह भी इसीलिए कि वाम-मार्ग उन्हें समाज की मर्यादा का उलंघन करता हुआ दिखाई दिया।

इसी प्रकार भूत-प्रेत पूजा को भी वे घृणा की दृष्टि से देखते थे। उनके मत में भूत-प्रेत-पूजकों को बहुत नीच गति मिलती है। बात यह है कि जो व्यक्ति जिसकी उपासना करता है उसी तक उसकी गति होती है। अपने ऊपरवालों की पूजा करने में तो कोई अर्थ है। उससे किसी सीमा तक उच्च रण ही होगा, अधःपात नहीं। परन्तु जो लोग मनुष्यों से भी पतित भूत-प्रेतों की पूजा करते हैं उनका अधःपात निश्चित है।

सात्त्विक वृत्ति के साथ विश्वास के संयोग से वे सब कुछ सम्भव समझते हैं। इसीलिए उन्होंने वणिक् कमलभव को यह उपदेश दिया था कि यदि किसी ऊँचे पेड़ के नीचे त्रिशूल खड़ा कर पेड़ पर से उस पर कूद जाओ तो अवश्य तुम्हें परमात्मा के दर्शन होंगे। यदि कोई कहे कि राम नाम के प्रभाव से पत्थर पर कमल उग आया तो वे उसे सही स्वीकार करने में आनाकानी न करेंगे–'राम प्रताप सही जो कहै कोउ सिला सरोरुह जाम्यो।' परन्तु राम की करामात छोड़ कर जब जहाँगीर ने उनसे अपनी करामात दिखाने को कहा तो उन्होंने साफ कह दिया कि यह बात झूठ है कि मुझ मे करामात है। रामनाम के सिवा मैं और कोई चमत्कार नहीं जानता क्योंकि जीवित मनुष्य के साथ अंध-विश्वास के संयोग से पाखंड की वृद्धि होती है जिसके विरुद्ध गोसाईं जी जन्मभर लड़ते रहे।

अवतार-वाद में भी, जो गोसाईं जी के सिद्धान्तो का प्रधान आधार स्तम्भ है, मनुष्य की ही पूजा होती है सही, किन्तु वह ईश्वरत्व के लिए किसी व्यक्ति की ओर से दंभपूर्ण दावा नहीं है, प्रत्युत मरणपर्य्यन्त न्यायनुकूल व्यतीत किए गए जीवन के महत्व की समाज की ओर से श्रद्धामय स्वीकृति है। वह एक पुरस्कार है जो व्यक्ति को नहीं उसकी स्मृति को ही मिल सकता है। उसका उपभोग करने के लिए व्यक्ति नहीं रहता केवल उसका व्यक्तित्व रह जाता है। भक्ति के आवेश में इस सिद्धान्त को भूल कर कहीं-कहीं गोसाईं जी राम के मुँह से ईश्वरत्व का दावा करा गए हैं। भक्ति का यह आवेश केवल इसलिए क्षम्य कहा जा सकता है कि यह प्राकृतजन का गुण-गान नहीं है, इतिहास नहीं है; वरन् युगों पीछे उन्हे समाज के द्वारा ईश्वरत्व मिल जाने के बाद एक भक्त की भावना है। इसी बात से राम एक दंभी राजा और तुलसीदास उनके चाटुकार कहे जाने से बच जाते हैं।

अपने प्रभु को जहाँ गोसाईं जी अधिक से भी अधिक महत्व देते है वहाँ अपने लिए वे छोटे से छोटा स्थान ढूंढ़ते हैं। विनय के तो वे मानो अवतार ही थे। दंभ उन्हें छू भी नहीं गया था। किस प्रकार छोटी अवस्था मे वे घर-घर टुकड़े माँगते फिरते थे, यह कहने में उन्हें कोई संकोच नहीं हुआ—

'बारे तें ललात बिललात द्वारे द्वारे दीन
जानत हौ चारि फल चारि ही चनक को।'

अपने प्रभु के सामने बार-बार अपनी दीनता का वर्णन करते हुए वे थकते ही नहीं थे। उत्कट कवि होते हुए भी वे अपनी गिनती कवियो मे नहीं करते थे। नम्रता के कारण वे अपने आप को सबसे निकम्मा समझते थे। बुरे लोगों में अपनी गिनती वे सब से पहले करते हैं। परन्तु क्या कभी वास्तविक

हीन व्यक्ति के हृदय में अपनी लघुता का इतना गहन और विशद अनुभव हो सकता है ? और जिसे यह अनुभव हो जाय वह क्या कभी लघु रह सकता है ? इस 'लघुत्व' के सामने सारी महत्ता वार देने योग्य है।

परन्तु यह सहिष्णुता, क्षमाशीलता और विनय व्यक्तिगत साधन-क्षेत्र के अन्तर्गत है। जहाँ समाज की मर्यादा भंग होने का प्रश्न आता वहीं गोसाईंजी उसे त्याग देते थे। वहाँ फिर वे शठे शाठ्य' की नीति का अवलंबन उचित समझते थे। 'कतहुँ सुधाइहु ते बड़ दोपू' कह कर उन्होंने उसी व्यावहारिक चातुर्य्य का अनुमोदन किया है। व्यक्तिगत साधना के क्षेत्र में पाखंड फैला कर जो लोग सामाजिक व्यतिक्रम का उपक्रम करते हैं उन्हे वे क्षमा नहीं कर सके।

उनकी विनय और लघुता की भावना ऐसी भी नहीं थी कि उनको पौरुपेय गुणों से दूर रखकर आत्म-सम्मान-रहित बिलकुल चाटुकार बना देती। संसार की कोइ भी शक्ति उनको उस अवस्था में न डाल सकती थी जिसमे मनुष्य कहने लगता है— 'हमहुँ कहब अब ठकुर सुहाती' इसके विपरीत 'पराधीन सपनेहुँ सुख नाहीं' का उनको गहरा अनुभव हुआ था।

भारत और भारतीय संस्कृति का, रामायण को वे जिसका संकलित संस्करण समझते थे, उन्हे औचित्यपूर्ण गर्व था। इसी संस्कृति ने भारत को अग्रणी बनाया था।

वे निःस्पृह व्यक्ति थे। लोभ से वे कोसों दूर थे। न किसी के मान को चाहते थे और न दान को। जहाँगीर ने उन्हें 'धन-धरती' देनी चाही, परन्तु वे राजा बादशाहों की कृपा के भूखे तो थे ही नहीं जो स्वीकार कर लेते। किसी के सामने हाथ फैला कर वे राम के दासत्व का अपमान नहीं करना चाहते थे।

अपने व्यक्तित्व के विस्तार से हिन्दू जाति और संस्कृति की रक्षा का अन्वर्थ विधान करके गोसाईं जी ने मानव-जाति के एक अंश विशेष का ही उपकार नहीं किया, प्रत्युत सारी मानव जाति का हित-साधन किया है। क्योंकि वास्तव मे एक जाति-विशेष के बीच विकसित होने पर भी हिन्दू संस्कृति सार्वभौम उपयोग की वस्तु है। सारे विश्व को अपना कर वह सारे विश्व की वस्तु हो गई है। उसे संकुचित अर्थ मे हिन्दू कहना उसके महदुद्देश्य का न समझना है। वह अविरोध के सिद्धान्त पर अवस्थित है। भारतीय संस्कृति की रक्षा में सारी मानव-जाति की रक्षा है।

प्रश्न और अभ्यास

१—वार्धक्य, चातुर्य, स्वातंत्र्य, औचित्य, सामंजस्य—ये भाववाचक संज्ञाएँ है। वृद्ध से वार्धक्य, चतुर से चातुर्य, उचित से औचित्य इत्यादि बने हैं।

२—अभिरुचि, अभिमण्डित, अभिनन्दनीय—इनमे "अभि" क्या है ?

३—प्रामाणिक, व्यावहारिक, सामाजिक, वास्तविक, सात्त्विक इन शब्दों में प्रकृति और प्रत्यय बताओ।

४—आकृति, प्रत्युत, सन्दिग्ध, पुरावृत्त, एकमात्र, वार्धक्य, अर्गला, सहिष्णुता, अग्रणी, इतिमर्य्यादा, निःस्पृह, सार्वभौम—इन शब्दों के अर्थ लिखो।

५—हृष्ट-पुष्ट, निश्चयपूर्वक, बाहुपीडा, रहस्यमय, सर्वप्रिय, उदयकाल, प्राकृतजन, सुखसमृद्धि, अन्वर्थ मे समासों का विग्रह करो और उनके नाम बताओ।

६—"महदुद्देश्य" मे सन्धि तोडो।

७—गोसाईं जी मे इतनी अधिक सहिष्णुता कैसे आ गई थी? उनकी सहिष्णुता के दो-एक उदाहरण दो।

८—तुलसीदासजी के सामञ्जस्यविधान के उदाहरण दो। उनकी सामञ्जस्य-बुद्धि का विरोध किससे हुआ और क्यों?

९—तुलसीदास के कौन-कौन-से गुणों का उल्लेख इस पाठ में किया गया है?

१०—नीचे लिखे वाक्यों का अर्थ स्पष्ट करके समझाओः—

(अ) उनका हृदय एक खुली पुस्तक है।

(ब) उनका शील बाहरी शिष्टाचार मात्र नहीं है, उनके अस्तित्व का अभिन्नांश है, उनके हृदय का विभव है।

(स) जीवित मनुष्य के साथ अन्ध विश्वास के संयोग से पाखंड की वृद्धि होती है, जिसके विरुद्ध गोसाईं जी जन्म भर लड़ते रहे।

(द) अवतारवाद में भी मनुष्य की ही पूजा होती है, किन्तु वह ईश्वरत्व के लिए किसी व्यक्ति की ओर से दम्भपूर्ण दावा नहीं है। प्रत्युत मरणपर्य्यन्त न्यायानुकूल व्यतीत किए गए जीवन के महत्त्व की समाज की ओर से श्रद्धामय स्वीकृति है।

२८—तक्षशिला के खंडहर

पहले पहल १८६३ ई० में जनरल कनिंघम साहब ने तक्षशिला के ठीक स्थान का पता लगाया था। वास्तव में यह हिन्दुस्तान की अत्यन्त आश्चर्यजनक खोजों में से एक थी। उन्होंने अनेक प्राचीन लेखों की छानबीन करके उक्त स्थान को निश्चित किया था। खोजने पर एक टूटे-फूटे स्तूप के अन्दर एक पत्थर मिला जिसके लेख से मालूम हुआ कि वह स्तूप तक्षशिला में ही बनाया गया था! बस तब उनका विचार और भी पक्का हो गया।

संसार मे शायद ही ऐसा कभी हुआ हो कि तक्षशिला के समान महानता और प्रसिद्धिवाला नगर लगभग १३०० वर्षों तक भूमितल से पूर्णतया लुप्त हो गया हो ; इतना ही नहीं, उस स्थान के बारे में उसके पास-पड़ौस में कोई गाथाएँ भी नही रह गईं । परन्तु वास्तव मे ऐसा ही हुआ । सन् ५०० ई० से लेकर जबकि श्वेत हूणों के द्वारा वह स्पष्टत: भस्माभूत और नष्ट कर दिया गया, ७० साल पहले तक उसके नाम तक का अस्तित्व नहीं रहा था।

विगत शताब्दी में १८६० से १८८० के बीच कुछ खुदाई की गई थी, परन्तु केवल १९१३ से ही सर जान मार्शल के तत्वावधान मे पुरातत्व-विभाग ने आश्चर्यजनक स्तूपों, मठों और समूचे नगरों को खोद निकालने का कार्य तत्परतापूर्वक प्रारम्भ किया। लगभग २० वर्ष तक कठोर परिश्रम किया गया। आज यात्री को लुभाने के कार्य मे तक्षशिला पोम्पियाई के साथ प्रतिद्वन्दिता करने लगा है। इसका आधुनिक अजायबघर अपने ढंग की एक ही चीज़ है। उसमे विश्वास न कर सकने योग्य आकर्षक खुदी हुई वस्तुएँ, गहने, सिक्के तथा अनगिनती अन्य वस्तुएँ भरी पड़ी हैं।

इन खुदाइयो ने तक्षशिला की महानता को सिद्ध कर दिया है। यदि केवल पत्थरो की बनावट का ही विचार किया जाय तो इसका जीवन-काल ईसा से ५०० वर्ष पूर्व से लेकर सन् ५०० ई० तक समझा जाना चाहिए। परन्तु यह बहुत कुछ सम्भव है कि स्थापना और भी पहले हुई हो। महाभारत मे राजा जन्मेजय के सम्बन्ध मे इसका जिक्र आता है। प्राचीन यूनानी और चीनी लेखको के अनुसार ईसा से ५०० वर्ष पूर्व ही अपने विश्वविद्यालय के कारण इस नगर की यथेष्ट प्रसिद्धि हो गई थी।

विभिन्न जातियों का शासन

अपने जीवन के एक हज़ार वर्षों मे तक्षशिला पर सात विभिन्न जातियों ने राज्य किया। सबसे पहले ईरानियों ने इस पर अधिकार जमाया। साइरस, डेरियस और ज़रक्सीज़ जैसे महान् नरेश उस जमाने में हुए; उसी काल मे भगवान् बुद्ध का जन्म और निर्वाण (ईसा से पूर्व ५६३–४८३) हुआ। उनके बाद सिकन्दर आज़म के सेनापतियों में यूनानी लोग आए। उन्होंने राजा पुरु को हराने के पहिले ही ईसा से ३२६ वर्ष पूर्व राजा अम्भी से तक्षशिला की पराधीनता स्वीकार करा ली थी। पर यूनानी लोग कुल जमा ६ वर्ष ही उत्तरी भारत में ठहर पाए। शीघ्र ही मगध के प्रसिद्ध चन्द्रगुप्त ने पञ्जाब को जीत लिया और उन्होंने मौर्य-साम्राज्य की नींव डाली।

इसी वंश मे भगवान् बुद्ध के अनुयायी तथा प्रसिद्ध प्रजा-पालक महाराजा अशोक हुए (ईसा से पूर्व २७३–२३२)। उनकी मृत्यु के बाद मौर्य-साम्राज्य शीघ्र ही नष्ट हो गया और बैक्टीरियन यूनानियों ने उत्तर दिशा से आकर अपना अधिकार जमाया। उन्होंने लगभग एक शताब्दी तक राज्य किया, परन्तु इतने ही थोड़े समय मे उन्होंने उत्तरी भारत पर अपनी यूनानी कला की छाप लगा दी। पर उन्हें भी शकों और पारथिनियनों ने पश्चिम मे आकर भगा दिया। जिन दिनों प्रभु ईसा मसीह का जन्म हुआ उन दिनों अरेकोशिया और तक्षशिला दोनों पर पार्थियन सरदार शासन कर रहे थे। इन्हीं सरदार के दरबार मे सन् ४० के लगभग प्रसिद्ध सन्त टॉमस उपस्थित हुए थे। सन् ४४ मे त्याग के अपोलोनियस भी तक्षशिला आए थे।

ईसा की पहली शताब्दी समाप्त भी न होने पाई थी कि मध्य एशिया के कुशन राजाओं ने तक्षशिला पर अपना शासन स्थापित

कर लिया। इस वंश के सबसे महान् राजा कनिष्क का राज्य (सन् १२८) मध्य एशिया से बंगाल तक फैला हुआ था। धीरे-धीरे इस साम्राज्य की भी अवनति हुई। सन् ४५५ ई० के लगभग श्वेत हूए हिन्दुस्तान पर लपके ; उन्होने कुशन वंश को ही समाप्त नहीं किया बल्कि सर्वनाश और कत्ले आम का हाहाकार मचा दिया। इस आक्रमण का तक्षशिला पर इतना बुरा प्रभाव पड़ा कि वह फिर कभी न सँभल पाया। सातवीं सदी में चीनी यात्री ह्वेनसॉग जब उसे देखने गए तो उन्होने सब मठो, विहारो और स्तूपो को खंडहरों के रूप में पाया था।

इतिहास से लुप्त

उक्त तिथि के बाद इतिहास तक्षशिला के बारे में कुछ नहीं बतलाता। जो किसी जमाने मे एक महान् नगर था, धीरे-धीरे उस पर मिट्टी जमने लगी, यहाँ तक कि एक इमारत का चिन्ह वहाँ न रहा और तक्षशिला का नाम तक भूल गए।

रावलपिंडी से लगभग ५० मील उत्तर की ओर ग्राण्ड ट्रङ्क रोड और रेलवे लाइन के समीप ही तक्षशिला के खंडहर अभी तक विद्यमान हैं। जिस उपजाऊ घाटी मे वे खंडहर स्थित हैं उसे हारो नदी ने हरा-भरा बना रखा है और पहाड़ियों का घेरा चारो ओर से उसकी रक्षा करता रहता है। इसी घाटी मे होकर मध्य एशिया, पश्चिमी एशिया और हिन्दुस्तान को मिलानेवाला सुप्रसिद्ध व्यापारिक मार्ग था। इस यात्रा-पथ से ही इस नगर का महत्व आँका जा सकता है।

इस घाटी मे तीन बिलकुल अलग-अलग बसे हुए नगरो के भग्नावशेषों का पता लगाया गया है। ये नगर एक दूसरे से लगभग ३॥ मील की दूरी पर बसे हुए थे। इनके सिवाय कई इकले-दुकले विहार और स्तूप भी मिले हैं। इनमें सबसे प्राचीन

नगर ऐसा कहा जाता है कि भीर नामक टीले के नीचे दबा पड़ा है। यह टीला अजायबघर और रेलवे स्टेशन के बिलकुल नजदीक है। यह स्पष्ट है कि यूनानियों के आने से कई शताब्दियो पहले यह नगर आबाद हो चुका था। ईसा से पूर्व दूसरी शताब्दी में यूनानियों ने यहाँ से राजधानी को उठाकर करीब १।। मील की दूरीवाले एक दूसरे नगर में पहुँचा दिया। उसे आजकल सिरकप कहते हैं।

प्राचीन काल की शिल्पकला

इस दूसरे सिरकप नाम के नगर की बाहरी दीवार अभी तक सारी की सारी देखी जा सकती है। इसकी लम्बाई ६००० गज है। इस जगह पर काफी खुदाई हुई है, जिसके फलस्वरूप इस पत्थर के बने नगर के मुहल्ले के मुहल्ले अपने मन्दिरों, बाजारों, सड़कों, दूकानों और मकानो सहित मानवीय आँखों द्वारा फिर से देखे जा सकते हैं। यहाँ का पत्थर का काम बहुत ही आकर्षक और मनोरंजक है। सबसे पुराने ढंग की दीवारें बड़े-बड़े शिला-खण्डों से बनी हैं जिनके बीच छोटे-बड़े, ऊँचे-नीचे पत्थर भी लगाए गए हैं। इनके बाद की बनी हुई जो दीवारें हैं उनके शिलाखण्डों के पृष्ठभाग काफी सुन्दरता से सँवारे गए हैं तथा बीच के छोटे पत्थर सुन्दर और कटे-छटे हैं, उनकी बनावट कुछ-कुछ रोमन ईंटों की-सी मालूम पड़ती है। इसके बाद ईसा की पहली शताब्दी में बनी दीवारों में कुछ अधिक बड़े शिला-खण्ड लगाए गए हैं। परन्तु उनके बीच की पाषाणमयी ईंटें छोटी, पतली और चिकनी हैं। अन्तिम ढंग की दीवारें और भी सुन्दर हैं। तीसरी, चौथी और पाँचवीं शताब्दी में उनका काफी चलन था।

देखने में ये सभी नमूने आकर्षक हैं। पर एक बात ध्यान देने योग्य है। अपने जमाने में ये इमारतें रंग-बिरंगे चूने और

पलस्तरसे ढकी रहती थीं और इसलिए अन्दर के पत्थर दिखाई नहीं पड़ते थे। कल्पना द्वारा हम उन दिनों के लकड़ी के बने दर्वाजों, खिड़कियों और सपाट छतों का चित्र अंकित कर सकते हैं। सिरकप नगर में यदि किसी नगर की जाँच की जाय तो पता लगेगा कि सब से ऊपर प्रारम्भिक कुशन युग के चिन्ह मिलेंगे; उनके नीचे शक युग का पता लगेगा और अन्त मे यूनानी काल के दो प्रकार के चिन्ह देखने को मिलेंगे, और तब कहीं जाकर भूमि का असली धरातल मिल पाएगा।

सिरकप के इन मकानों मे अनेको सिक्के, रसोई के बर्तन, खिलौने, घोड़ो की लगामें, मुड़ जानेवाली कुर्सियॉ तथा अन्य वस्तुएँ मिली हैं। यहाँ यूनानी ढंग का चाँदी का एक चम्मच मिला है; ठीक इसी ढंग का एक चम्मच पोम्पियाई में भी मिला था। इसके सिवा डायोनिसियस का एक चाँदी का बना सिर भी पाया गया है; सर जान मार्शल के विचार में अब तक हिन्दुस्तान में पाया जानेवाला यूनानी कला का यह सर्वोत्तम नमूना है।

सिरमुख नाम का तीसरा नगर सिरकप से करीब दो मील दूर है। सम्भवतः यह नगर कुशन सम्राट् कनिष्क के राज्यकाल में सन् १२५ ई० के करीब बसाया गया था। यहाँ अधिक खुदाई नहीं हो सकी है, क्योंकि यह जमीन अभी तक किसानों के अधिकार में है।

बौद्धधर्म की प्रधानता

इन एक हजार वर्षों के बीच बौद्ध-धर्म ही तक्षशिला का प्रधान धर्म रहा। इस घाटी में विशाल बौद्ध-विहारो, स्तूपो अथवा

पगोडाओं के खंडहर यत्र-तत्र बिखरे पड़े है। ये इमारतें बौद्ध लोगों ने भगवान् बुद्ध के किसी चिन्ह को अथवा किसी अन्य सन्त की स्मृति को सुरक्षित रखने के लिए बनाई थीं। बौद्ध लोगों की दृष्टि में स्तूप अथवा पगोडाओं का निर्माण करना बहुत ही पुण्य का कार्य है तथा इसके द्वारा मुक्ति प्राप्त करने में बहुत सहायता मिलती है।

कई स्तूप खोद निकाले गये है। इनमें से धर्मराजिक स्तूप शायद सबसे पुराना है। इसका निर्माण शायद प्रभु ईसा की जन्म-तिथि के लगभग हुआ था। इस मुख्य स्तूप के चारो ओर कई छोटे-छोटे स्तूप हैं; इनमें से कई एक तो खुद चुके हैं और उनमें कई महत्वपूर्ण वस्तुएँ भी मिली हैं। प्रत्येक स्तूप में साधारणतया एक छोटी सन्दूकची होती है, जिसमें मालाओं और जवाहरातो के सिवाय थोड़ी-सी हड्डियाँ भी रक्खी रहती हैं। इसी धर्मराजिक में एक अत्यन्त ही महवत्त्पूर्ण और अद्भुत वस्तु पाई गई है। एक बड़े बर्तन के अन्दर चाँदी का सुन्दर बर्तन पाया गया। उसके भी अन्दर एक लिखित चाँदी का पत्र और एक छोटी-सी सोने की डिबिया। सोने की उस डिबिया के अन्दर कुछ छोटी-छोटी हड्डियाँ मिलीं। मुड़े हुए काग़ज़ पर खरोष्ठी लिपि के अक्षर थे जिनसे पता लगता है कि उक्त वस्तुएँ स्वयं बुद्ध भगवान् से सम्बन्ध रखती है। ये अद्भुत वस्तुएँ ब्रह्म देश के बौद्धो को भेंट कर दी गईं और अब उनकी स्मृति रक्षार्थ मंडाले की पहाड़ी पर एक भव्य पगोडा बना दिया गया है। धर्मराजिक में फर्श के लिए पारदर्शी काँच के टाइलों का भी पता लगा है। कुछ का रंग चमकदार है; शेप काली, सफेद और पीली हैं। इस प्रकार की पाई जानेवाली भारतवर्ष भर में अपने ढंग की ये अनोखी वस्तुएँ हैं।

प्राचीन महानता

इनके अतिरिक्त जांदियाल, लालचक्र, वदलपुर, कुरमाल और भल्ला स्तूपो की भी खुदाई की गई है। इनमें से जांदियाल मे एक बड़े मन्दिर के खंडहर पाए गए हैं, तथा लालचक्र और वदलपुर मे कई मठ मिले हैं। परन्तु जौलविंन और मौहरा मोराडू मठों की खुदाई बड़ी मनोरंजक प्रमाणित हुई है। उत्तर-पश्चिमी भारत में अपने ढंग के ये वहुत ही अजीव मठ हैं। इनके प्रत्येक हिस्से की खुदाई हो चुकी है तथा अब थोड़ी-सी कल्पना-शक्ति द्वारा अनुमान किया जा सकता है कि अपनी महानता के दिनों मे उनकी क्या दशा रही होगी। उनकी दीवारें विभिन्न प्रकार के रंगों के चूने और पलस्तर से ढकी हुई थीं। उनमे जो लकड़ी लगाई गई थी उस पर काफी सुन्दर लिखाई तथा रंगसाजी की गई थी। इनके अतिरिक्त वुद्ध भगवान् की सैकड़ो मूर्तियो तथा अन्य कलापूर्ण वस्तुओ से उनको सजाया गया था। पत्थर और पलस्तर से बनी हुई मूर्तियाँ वहुत सुन्दर हैं; उन पर यूनानी प्रभाव की स्पष्ट छाप है। उन मूर्तियों को जो वस्त्र पहनाए गए हैं, उनको देख कर तबियत हरी हो जाती है।

इन सब में से किसी भी स्तूप का शिखर सुरक्षित नहीं रह पाया है। अस्तु, मोहरा मोराडू के एक कमरे के अन्दर एक छोटा-सा स्तूप पाया गया है। यद्यपि उसकी ऊँचाई केवल १२ फीट के लगभग है, फिर भी सब बातें पूरी तौर से दिखाई गई है। उसकी नींव का चबूतरा खूब चित्रित है, शीर्ष स्थान पर गुम्बज है, परन्तु उसके ऊपर एक शिखर है, जिस पर सात सुन्दर छत्र छाया किए हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि अपने वैभव के दिनों मे यह घाटी अत्यन्त आकर्षक और रमणीक रही होगी, क्योंकि जिधर भी आप दृष्टि डालते, आपको ये परियो जैसे शिखर

दिखाई पड़ते, जिनके कारण नीले आकाश का स्वरूप और भी मनोमोहक बन जाता रहा होगा।

प्रश्न और अभ्यास

१—तक्षशिला की खोज सबसे पहले किसने की ?

२—तक्षशिला किस प्रकार पौम्पियाई से प्रतिद्वन्द्विता करता है ?

३—तक्षशिला पर किन-किन जातियों का शासन रहा ? उनका संक्षिप्त परिचय लिखो।

४—तक्षशिला के निकट किन नगरों के भग्नावशेषों का पता लगा है ?

५—स्तूपों अथवा पगोडाओं का निर्माण किस लिए होता था ? किसी स्तूप अथवा पगोडा, जिसको तुमने देखा हो अथवा जिसके विषय में कुछ पढ़ा हो, का नाम लिखो।

६—तत्त्वावधान; पुरातत्त्व-विभाग; पौम्पियाई; प्रतिद्वन्द्विता, भग्नावशेष से क्या समझते हो ?

७—प्रजापालक, कल्पना-शक्ति, रक्षार्थ में समास बताओ।

२६—भारत-माता की स्मृति

(लेखक—श्री रसिकेन्द्र)

(१)

तरस-तरस कर रह जाते हैं,
सुरगण तुझमें तन धरने को।
परमेश्वर तक प्रकटित होते,
तुझमें लीलाएँ करने को॥
हैं समर्थ तेरी औषधियाँ,
कष्ट मृत्यु तक का हरने को।
शुष्क न कोई कर सकता है,
तेरे यश-रूपी झरने को॥
गिरी दशा तक में तव गौरव,
तेज जगत में है चमकाता।
कौन अधम होगा जो भूले,
तेरी स्मृति हे भारत-माता ?

(२)

सुखप्रद सलिल समीर समय पर,
सबको तू प्रदान करती है।
प्रकृति निरन्तर तुझे सजाती,
संगिनि हो सुषमा भरती है॥
भेद-भाव तू नहीं जानती,
सबको गोदी में धरती है।
स्वयं यातना तू सहती है,
पर 'औरों का' दुख हरती है॥

तुझ-सा पर उपकारी कोई,
नहीं विश्व में है दिखलाता।
कौन अधम होगा जो भूले,
तेरी स्मृति हे भारत-माता!

(३)

स्वर्ण-भूमि है, रत्न-राशि है,
कण-कण में कमला का घर है।
देती तू है अन्न निरन्तर,
जिस पर जीवन ही निर्भर है॥
बसते है रस सभी कहीं,
है नमक, कहीं पर तो शक्कर है।
सुन्दर फल-फूलों का घर-घर,
धन देकर होता आदर है॥
नदियाँ पूज्य पवित्र अनेकों,
स्पर्श-मात्र से पाप नशाता।
कौन अधम होगा जो भूले,
तेरी स्मृति हे भारत-माता!

प्रश्न और अभ्यास

१—पहले छन्द के चौथे चरण में यश की उपमा झरने से क्यों दी गई है?

२—दूसरे छन्द की पहली पंक्ति में क्या विशेषता है? उससे उसके भाव-सौन्दर्य की किस प्रकार वृद्धि हो गई है?

३—कमला किसे कहते हैं और क्यों ? इसके पर्यायवाची शब्द बताओ।
४—गुरु से गौरव; इसी प्रकार—कुरु से कौरव। पूजन से पूज्य अथवा पूजनीय; इसी प्रकार आदर से आदरणीय, मान से माननीय, स्मरण से स्मरणीय।



३०—पालतू पशु और पक्षी

(लेखक—श्री नरसिंहराम शुक्ल)

ईश्वर की सृष्टि में चार प्रकार के जीव हैं:—(१) अण्डज, (२) पिण्डज, (३) स्वेदज तथा (४) उद्भिज। अण्डज वे हैं, जो अण्डों से उत्पन्न होते हैं, जिनमें विशेषत: पक्षी हैं, परन्तु साँप की तरह दो एक पशु और भी हैं जो अण्डे से उत्पन्न होते हैं। कच्छप और मछली आदि भी अण्डज ही हैं। पिण्डज वे हैं जो गर्भ से यानी पेट से उत्पन्न होते हैं—इनमें मनुष्यों और पशुओं की गणना है। स्वेदजों में खटमल जुएँ आदि हैं, और उद्भिज वनस्पति कहलाते हैं।

ईश्वर की सृष्टि का सर्वश्रेष्ठ प्राणी मनुष्य है, उसके उपरान्त पशुओं का दर्जा है। यों तो चारों प्रकार की सृष्टियाँ एक दूसरे के आश्रित हैं, परन्तु मनुष्य और पशु का परस्पर अधिक सम्बन्ध है और एक प्रकार से यह कहना अत्युक्तिपूर्ण न होगा कि वे एक दूसरे के जीवन के लिए नितान्त आवश्यकीय हैं।

जिन देशों ने वैज्ञानिक उन्नति के बल पर कृषि आदि कार्यों के लिए पशुओं से काम न लेकर मशीन से काम लेना आरम्भ कर दिया है, वे भी दो बातों में पशुओं की अवहेलना नहीं कर सकते। दूध, घी, मक्खन, और मांस के लिए पशुओं की उन्हें भी आवश्यकता पड़ती है।

भारतवर्ष में तो पशुओं की उपयोगिता के सम्बन्ध में कुछ कहना ही नहीं है—पशुओं के अभाव में भारतवासियों का जीवन एक प्रकार से अपंगु-सा हो जायगा। यहाँ पशु खेती का काम करते हैं, व्यापार में सहायता पहुँचाते हैं, सामान एक स्थान से दूसरे स्थान को ले जाते हैं, कुएँ से पानी खींचते हैं, भोजन के काम आते हैं। ये सब आवश्यकताएँ सामान्य नहीं हैं।

एक विचार से पशु-जीवन मनुष्य-जीवन से कहीं अधिक उत्सर्गमय है। पशु जीते जी तो मनुष्य की सेवा करता ही है, मर जाने पर उसका मृतक शरीर भी मनुष्यों के काम आता है। छोटी जातिवाले उस मृतक पशु का मांस खाते हैं, उसकी हड्डियों से खाद बनती है, और चमड़े अनेकों काम आते हैं। हमारे कहने का अर्थ यह है कि पशु हमारे जीवन के लिए एक अत्यन्त आवश्यकीय वस्तु है। जब वे इतने आवश्यकीय हैं तब हमें उनके सम्बन्ध में कुछ भी ज्ञान न होना, उनके पालन-पोषण के सम्बन्ध में कुछ भी जानकारी न रखना, उनके रोग-निदान का कुछ भी अनुभव न रखना, कितनी बड़ी लज्जा की बात है! हम उनसे कितना अधिक अपना स्वार्थ सिद्ध करते हैं, यह बताने की बात नहीं है, फिर भी हम उन्हें कितना कष्ट देते हैं, उनसे कितना अधिक काम लेते हैं, यह तनिक सोचने की बात है। वे बीमार पड़ते हैं, उनकी दवा नहीं होती। उन्हे आधा पेट भोजन दिया जाता है, उनके रहने का स्थान भद्दा तथा खराब रखा जाता है। न उनकी सफाई होती है और न उचित देख-रेख!

पाश्चात्य देशों में इस सम्बन्ध में काफी उन्नति की गई है। वहाँ हर कस्बे में पशुओं के अस्पताल हैं। उन्हें भर पेट हरा चारा देने के लिए गोदाम बने हैं। वैज्ञानिक उपायों से उनके स्वास्थ्य की वृद्धि की जाती है। उनकी नसल सुधारी

जाती है। पर हमारे यहाँ कुछ भी नहीं होता। जिस देश में यह शिक्षा दी जाती हो कि—"दुःख तप्तानाम् प्राणिनाम् आर्त्तनाशनम्"* उस देश में पशुओं का जीवन इस प्रकार कष्टप्रद रहे या हो तो यह बड़े आश्चर्य की बात है।

पशुओं की दो प्रमुख श्रेणियाँ है—प्रथमतः सीधे सादे पशु, तथा दूसरे हिंसक पशु। मनुष्य एक ऐसा अद्भुत प्राणी है कि दोनों प्रकार के पशुओं से अपना मतलब साध लेता है।

शेर के चमड़े, घड़ियाल के चमड़े, गैंडे के सींग आदि बहुत उपयोगी होते हैं। परन्तु हिंसक पशु अधिकतर जंगलों में ही रहते हैं, वे बहुत कम परिस्थितियों में पालतू बनते हैं। फिर भी मनुष्य मनोरंजन तथा कभी-कभी आर्थिक लाभ के लिए जंगली पशुओं को भी पालतू बनाने का काम करता है। परन्तु सरकस, अजायबघर या बड़े आदमी ही हिंसक पशुओं को पालतू रूप में रख सकते हैं, जन साधारण नहीं।

पशुओं की उपयोगिता के सम्बन्ध में ऊपर थोड़ा-सा संकेत कर दिया गया है। नीचे हम एक तालिका उन उपयोगिताओं की देते हैं, जिनमें पशु काम आते हैं।

१—कृषि, २—वाणिज्य-व्यवसाय, ३—घी, दूध, मक्खन के साधन, ४—मांस, ५—चमड़ा, ६—हड्डी, ७—मनोरंजन, ८—सवारी ढोना और खींचना, ९—चौकसी-रखवाली, १०—धार्मिक कार्य और पूजा-पाठ, ११—दुर्गम स्थानों में आवागमन के साधन, १२—रोएँ और ऊन, १३—औषधि।

बहुत संभव है कि वे और प्रकार भी काम आते हैं।

कृषि के काम में विशेषतः बैल, घोड़े, खच्चर और भैंसे

---

*दुःखी प्राणियों का दुःख दूर करना चाहिए।

आते हैं। बकरी, गाय, भैंस, दूध देनेवाले पशु हैं। बकरी, कुछ चिड़ियाँ, हिरन आदि मांस के लिए उपयोगी समझे जाते हैं। शेर, हिरन, घड़ियाल विशेष चमड़ों के लिए तथा अन्य पशु साधारण चमड़े के लिए अत्यन्त उपयोगी हैं।

मनोरञ्जन का काम देनेवाले पशुओं में सभी पशु आ सकते हैं, परन्तु इनमें चिड़ियों की संख्या अधिक है। शुक, सारिका और मोर हमारे अधिक मनोरञ्जन करते हैं। नेउला, खरगोश, साँप, हिरन, तथा अन्य अनेक पशु मनोरंजन के साधन समझे जाते हैं। इसे जिसे देखना हो किसी अजायबघर को देखे।

घोड़े, हाथी, ऊँट और खच्चर सवारी के पशु कहे जाते हैं। कहीं-कहीं बैल और बकरी से भी सवारी का काम लिया जाता है। सरस्वती का मोर, शिव का बैल, गणेश का चूहा, विष्णु का गरुड़, महाकाली का शेर, लक्ष्मी का उल्लू, कार्तिकेय का कुत्ता वाहन माना गया है। रेगिस्तानों मे ऊँट यदि न हो तो यात्रा करना अत्यन्त कठिन या असम्भव हो जाय। तिब्बत में याक नामक बैल ही सवारी का काम देता है। बर्फिस्तानों मे हिरन और कुत्ते गाड़ी खींचते हैं। धोबी गधों पर भी सवारी करते हैं। चौकसी का काम करनेवाला सबसे अधिक उपयोगी पशु कुत्ता है, परन्तु आहट रखने मे कुत्ते से भी बढ़ कर बत्तख पक्षी होते हैं। मोर भी उस स्थान पर रखवाली के लिए रखे जाते हैं जहाँ साँप होते हैं और ठीक इसी कार्य के लिए नेउले का भी नाम आता है। कभी-कभी बिल्ली भी चूहों और साँपों से घरवालों की रक्षा करती देखी गई है। घोड़े और भैंस जहाँ रहते हैं, भूतों में विश्वास रखनेवालों का कहना है कि वहाँ भूत नहीं आते।

भारतवर्ष मे पशुओं में गाय, सूअर, साँप, नीलकण्ठ आदि धार्मिक पशु समझे जाते हैं। इन्हें मारना अधर्म समझा जाता

है। मुसलमान सूअर का मारना बहुत बड़ा अधर्म समझते हैं। दो-एक पशु ऐसे हैं जिनकी धार्मिक रूप से पूजा करके बाद को उनकी हत्या की जाती है, जैसे बकरी, सूअर के बच्चे, भैंसा आदि। दशहरे के दिन नीलकण्ठ का दर्शन किया जाता है।

मुलायम व सुन्दर ऊन और रोओं के लिए भेड़ें प्रसिद्ध हैं। कहीं-कहीं ये गोस्त के लिए भी पाली जाती हैं। तथापि उनकी सबसे बड़ी उपयोगिता उनका ऊन है। काश्मीर की बकरियों के रोएँ से पशमीना बनता है जो शीत में उपयोगी और कीमती समझा जाता है।

भारत, तिब्बत तथा कतिपय पहाड़ी मुकामों में पीठ पर सामान ढोने का भी काम पशु ही करते है। बैल, भैंस, बकरी, घोड़े, खच्चर, हाथी इस श्रेणी के अन्तर्गत हैं। ब्रह्म देश मे हाथी बड़ी-बड़ी लकड़ी को सिल्लियाँ खींच कर एक स्थान से दूसरे स्थान को ले जाते है।

कुछ पशु औषधि के भी काम आते हैं। क्षय रोग के रोगियों के पास बकरी बाँधने से कहा जाता है कि रोग कुछ घटता है। मुर्गी का अण्डा कमजोरी को दूर करता है बत्तख के पेट से नीचे सोने से बच्चो का एक बहुत बड़ा रोग जिसे हमारी देशी भाषा में जमोग या मिठवा कहते हैं दूर होता है। रीछ की फुफकार से नजर या टोना दूर होता है।

इन्द्रजालिको के मतानुसार कुछ पक्षियो के माँस भिन्न-भिन्न प्रकार की बीमारियो को दूर करते हैं। रोहू मछली (एक प्रकार की लाल बड़ी मछली) के दाँत की माला पहनने से बच्चो की आँख का रोहुआ रोग दूर होता है। साँप के तेल से चर्म रोग जैसे कुष्ट, दूर होता है। साँप के विष का एक नया उपयोग अब चल निकला है। कहा जाता है कि इस विष से पीठ का जहरीला

फोड़ा चंगा किया जा सकता है। शेर की चर्बी कमजोर नसों को मजबूत करनेवाली अचूक औषधि है। हिरन का सींग घीस कर लगाने से गिल्टी को फायदा पहुँचता है। हम ऊपर लिख आए हैं कि पशुओं की दो श्रेणियाँ होती है एक हिंसक और दूसरी साधारण और दोनों पालतू किए जा सकते हैं। परन्तु जन साधारण का जहाँ तक सम्बन्ध है—साधारण श्रेणी के ही पशुओं को दो कामों के लिए पाला जाता है। प्रथमतः खेती और सवारी के लिए जैसे हाथी, घोड़ा, ऊँट, बैल और खच्चर आदि। दूसरे दूध और मनोरंजन के लिए। बकरी, गाय, भैंस एकमात्र दूध के लिए पाले जाते हैं। हाँ, उनके गोबर खाद के लिए भी आवश्यक हैं मनोरंजन के लिए निम्नलिखित पशु पक्षी अब तक पालतू रूप मे देखे गये हैं—

१–कुत्ता, २–बिल्ली, ३–नेउला, ४–हिरन, ५–शुक (तोता), ६–सारिका, (मैना), ७–कबूतर, ८–बत्तख, ९–तीतर, १०–मोर, ११–खरगोश, १२–मछली, १३–बन्दर और १४–बुलबुल।

दरिद्रता तथा अज्ञानता के कारण भारतवासियो का जीवन अत्यन्त दुःखमय होता जा रहा है। खाने को जब भर पेट भोजन नहीं मिलता, तब मनोरंजन की सामग्री कौन जुटावे? पर विचार-पूर्वक देखने से यह ज्ञात हो जायगा कि यदि हम थोड़ी भी मनोरंजन की सामग्री जुटा लें तो हमारी मानसिक भूख, व्यग्रता, उलझन, अशान्ति की मात्रा मे बहुत कुछ कमी हो सकती है। पशु पक्षियों का पालना, बाग़बानी करना अथवा अन्य किसी प्रकार का शौक़ रखना एक प्रकार का मनोरंजन है।

कभी-कभी पालतू पशुओ से बहुत बड़े-बड़े काम निकल जाते हैं जो मनुष्य साधारणतया नहीं कर सकता। पहले भारत में और आज-कल यूरोप में कबूतर हरकारे का काम देते हैं।

राजा नल ने हंस के द्वारा अपनी प्रेयसी दमयन्ती के पास सन्देश भिजवाया था सुप्रसिद्ध गणिका शुक को राम-राम पढ़ाते-पढ़ाते स्वर्ग पहुँच गई।

कुत्ते चोरों से रक्षा करने के लिए अचूक साधन हैं। बिल्ली और कुत्तों के सम्बन्ध में हम अनेक बार सुन चुके हैं कि उन्होंने किस चालाकी और बुद्धिमानी से साँपों से लड़ाई की और अपने मालिक वा उसके बच्चे की जान बचाई। प्राचीन समय में पशु और पक्षियों के पालने की बहुत प्रथा थी। लोग बड़े चाव से उनका पालन करते थे, उनसे बहुत प्रेम करते थे। उनके लिए प्राचीन समय में उनके पालनेवालों ने जैसे त्याग किए हैं वैसे त्याग आज लोग अपने सगे भाई और बहिनों के लिए भी नहीं करते। प्राचीन समय के लोग केवल अपने पाले हुए ही पशु पक्षियों पर दया नहीं दिखाते थे वरन् अन्य पशु पक्षियों के लिए भी उनके प्यार और त्याग की भावना में भी कमी नहीं होती थी।

गज और ग्राह की कथा प्रत्येक घर में सुनी जाती है। भगवान् ने किस वेग से चल कर ग्राह से गज की रक्षा की, यह पढ़ते ही हृदय आनन्द से गद्‌गद् हो जाता है। राजा शिवि ने कबूतर की प्राण-रक्षा के लिए अपने शरीर का मांस स्वयम् काट-काट कर भेंट किया। महाराज जन्मेजय जब क्रुद्ध होकर सर्पों का विनाश करने लगे तब इंद्र एक तक्षक की रक्षा के लिए जन्मेजय के पास स्वयम् सिफारिश लेकर आए।

जिन्होंने महाभारत पढ़ा या सुना होगा उन्हें युधिष्ठिर और उनके स्वामिभक्त कुत्ते की कथा मालूम होगी। जब धर्मराज ने देखा कि युधिष्ठिर कुत्ते को साथ लेकर स्वर्ग के भीतर प्रवेश कर रहे हैं तब उन्होंने कहा कि आप इस कुत्ते के साथ स्वर्ग के भीतर

प्रवेश नहीं कर सकते, कुत्ते को बाहर छोड़ दीजिए। युधिष्ठिर महाराज ने कहा—मैं उस स्वर्ग मे, जहाँ कि मैं कुत्ते को साथ नहीं रख सकता, नहीं जाना चाहता। कितना बड़ा त्याग है! क्या ऐसे दृष्टांत आज भी मिलते हैं?

प्रश्न और अभ्यास

१—ईश्वर की सृष्टि में चार प्रकार के जीव कौन-कौन हैं?

२—पशु पक्षियों के प्रति हमारा क्या कर्त्तव्य है? उनकी उपयोगिताएँ क्या हैं? संक्षेप मे लिखो।

३—मनोरञ्जन के लिए कौन-कौन-से पशु-पक्षी पाले जाते हैं? इस पाठ मे दिए पशु-पक्षियों के अतिरिक्त क्या तुम कुछ नए नाम बता सकते हो?

४—नल और हंस, गणिका और शुक, गज और ग्राह, शिवि और कबूतर, इन्द्र और तक्षक सर्प, युधिष्ठिर और कुत्ता—इनकी कथाएँ संक्षेप में लिखो।

५—स्वदेश, मतानुसार, अशान्ति, स्वामिभक्त—में समास बतलाओ।

३१—लंदन शहर का वर्णन

(लेखक—रायबहादुर पण्डित लज्जाशंकर झा)

[आप मध्यप्रान्त के शिक्षा-विभाग के उच्च पदों पर रह कर और पेंशन पाकर आजकल हिन्दू-विश्वविद्यालय के टीचर्स ट्रेनिंग कालेज के प्रिन्सपल हैं। आपने हिन्दी में शिक्षा-विषयक अनेक पुस्तकें लिखी हैं।]

लंदन शहर अँगरेज़ी साम्राज्य की राजधानी है। इसके समान बड़ा नगर इस पृथ्वी पर दूसरा नहीं है। इसकी मनुष्य-संख्या सत्तर लाख के ऊपर है। केवल अमेरिका का न्यूयार्क नगर इससे बराबरी करने का दावा कर सकता है, परन्तु वह अभी बहुत पीछे है। न्यूयार्क की मनुष्य-संख्या कुल पैंतालीस लाख है, परन्तु वह शीघ्र उन्नति कर रहा है। इस समय तो, क्या मनुष्य-संख्या मे, क्या धन और व्यापार मे क्या सभ्यतासूचक अनेक संस्थाओं मे अँगरेज़ी साम्राज्य की राजधानी अर्थात् लंदन, एक अद्वितीय नगर हो रहा है।

ठाकुर गदाधरसिंह नामक संयुक्त-प्रांत निवासी एक हिंदुस्तानी सैनिक महाराज सप्तम एडवर्ड के राजतिलक के समय अन्य सैनिकों के साथ इँगलिस्तान भेजे गए थे। लंदन शहर के प्रथम दृश्य का वर्णन करते समय वह अपनी "एडवर्ड-तिलक-यात्रा" मे लिखते हैं कि "महाघोर अन्धकारमयी रजनी मे चपला की चमक से जिस भाँति नेत्रों को चकाचौंध होता है, वैसे ही लंदन महानगरी की जाज्वल्य सजीवता देख कर मेरी दशा हो गई। लंदन की अपूर्व शोभा और शक्तिमत्ता के सन्मुख इन्द्र की अमरावती की कदाचित लज्जित हो जायगी। इसकी प्रत्येक गली ऊँचे-ऊँचे महल और अट्टालिकाओं की मानों द्विकूल तरंगनी है, जिसकी इच्छा और प्रयत्नरूपी तीव्रधारा मे लक्षों नर-नारीगण बहे चले जाते हैं। लंदन वास्तव मे रूप-गुण का बड़ा भारी मेला, विशद-बुद्धि की हाट, जीवन-होड़ की विलक्षण द्युतशाला है।"

एक अमेरिका-निवासी ने इस विषय पर लिखा है कि मैंने पृथ्वी पर के प्रायः सभी बड़े-बड़े नगर देखे हैं, परन्तु लंदन शहर मे यह विचित्रता है कि वहाँ दिन-रात विना रुके भयंकर, परन्तु गम्भीर नाद जारी रहता है। सड़कों पर गाड़ी, घोड़ों,

बग्घियों, मोटरों, ट्राम आदि की मेले के समान, लगातार चौबीस घंटे आमदरफ्त रहती है। सड़क के इस पार से उस पार जाना अपने प्राणों को संकट में डालना है; जानेवाला जरा चूका कि उसके ऊपर से कुछ न कुछ निकल जायगा। परन्तु सड़कों पर इतनी भीड़ होने पर भी ऐसा बहुत कम होता है कि गाड़ियाँ लड़ जायँ अथवा मनुष्य कुचल जायँ। हर एक प्रकार का वाहन अपने नियत मार्ग से बिना औरों को अड़चन दिए चला जाता है।

इसका क्या कारण है ? यही कि उस शहर में सब कोई नियमों का पालन करते हैं। प्रत्येक मनुष्य और वाहन अपनी बाईं ओर दबा चला जाता है—मनुष्य पगडन्डियों पर और वाहन बीच सड़क पर; इस कारण आमने, सामने से आकर कोई टकराते नहीं। सड़कों के प्रत्येक संगम पर नीली वर्दी पहने एक पुलिसवाला खड़ा रहता है। उसके हाथ उठाते ही सब वाहन रुक जाते हैं। फिर कोई भी मनुष्य, चाहे वह बड़ा रईस क्यों न हो, चाहे उसे बड़ी जल्दी क्यों न हो, बिना पुलिसवाले का इशारा पाए अपना वाहन आगे न बढ़ावेगा। नीली वर्दी की आज्ञा सबको माननीय है। उसकी सहायता करने को छोटे-बड़े सभी तैयार रहते हैं। लोग जानते हैं कि पहरेवाला जो कुछ हुक्म देता है, वह सर्वसाधारण के लाभ के हेतु है। उसका कहना मानने ही से लंदन-सरीखे महानगर में आना-जाना भय-रहित हो सकता है।

इस नगर की पुलिस की जितनी प्रशंसा की जाय, सब थोड़ी है। लालच, दुष्टता और पक्षपात तो एक मामूली सिपाही को भी नहीं छू गए। अफसरों तथा सिपाहियों की यह अटल धारणा है कि पुलिस प्रजा की सेवक है और उसे वही करना

चाहिए, जिससे प्रजा की भलाई हो। ग़रीब से ग़रीब मनुष्य को सहायता देने में वे तत्पर रहते हैं और सदैव उससे नम्रता-पूर्वक बोलते हैं। दुष्ट लोगो को गिरफ्तार करते समय भी वे ज़बान नहीं चलाते और यही कहते हैं कि हमें आपको कष्ट देने में क्लेश होता है; परन्तु कानून की आज्ञानुसार ऐसा करना आवश्यक है। इस नगर मे दुष्ट लोगों की संख्या भी अधिक है, परन्तु उनको व्यर्थ क्लेश दिए बिना पुलिस उन पर पूरी निगरानी रखती है। जो परदेशी इँगलिस्तान जाता है, वह लौट आने पर मुक्तकण्ठ से वहाँ की पुलिस का यश गाता है। उसके उत्तम व्यवहार ही के कारण वहाँ की प्रजा अपने पुलिसवालों का इतना मान करती है।

लंदन शहर पृथ्वी भर के व्यापार का केन्द्र है। वहाँ लक्ष्मी पुत्रों की भरमार है। करोड़पति होना तो वहाँ कोई बात नहीं है। एक मज़दूर आदमी महीने में १०० से १५० रुपए कमा लेता है। संवत् १९५६ में जब हिन्दुस्तान मे भारी अकाल पड़ा था, तब यहाँ के पीड़ितों के लिए उस नगर के निवासियों ने चन्दा किया था, और दो-तीन दिन में ही कई करोड़ रुपए इकठे हो गए थे। इसी से उस नगर की लक्ष्मी का तथा वहाँ के निवासियों की धर्मबुद्धि का अनुमान हो सकता है। इस भूतल पर कोई बिरला ही देश ऐसा होगा जिसके निवासी, वहाँ व्यापार अथवा शिक्षा के अर्थ, थोड़े बहुत, न जा पहुँचे हों। हिन्दुस्तानी भी वहाँ हज़ार-पन्द्रह सौ से कम न मिलेंगे।

उस नगर की विशालता इसी से प्रकट होती है कि उसके बारह-तेरह मील के व्यास में कोई दो सौ साठ रेल के स्टेशन हैं और यदि उसकी हद के भीतर रेल की पाँतों की

समस्त लम्बाई नापी जाय तो ढाई सौ मील की लंबान निकलेगी। मकानों की संख्या नौ लाख है; गिरजाघरों तथा अन्य धर्मों के उपासनालयों की संख्या एक हज़ार छ: सौ है। वहाँ आठ हज़ार तो कलारियां हैं, और सत्तरह सौ चाय घर हैं। इन जलपान की दूकानों में रसद-पानी कितना उठता है? साल में पैंतालीस लाख मन आटा, साढ़े आठ लाख बैल, चालीस लाख भेड़, बछड़े और सूअर, नब्बे लाख मुर्गियाँ और अन्य पक्षी, चालीस लाख मन मछली और पचास-साठ लाख बोतलें शराब—ये सब केवल जलपान में खर्च होते हैं। प्रधान भोजन की बात अलग है। नगर में बिजली के प्रकाश का प्रबन्ध किया गया है, जिसमें प्रतिवर्ष छ: अरब रुपए खर्च होता है और शीतनिवारण के लिए साढ़े बत्तीस करोड़ मन कोयला लगता है।

इस नगर में बिजली का प्रकाश गली-गली और घर-घर में होता है। इस कारण रात्रि में प्राय: दिन का-सा प्रकाश रहता है। परन्तु दिन में कभी-कभी कुहरे का धुन्ध छा जाता है और इस कारण कभी-कभी उस समय पाँच-छ: गज़ की दूरी पर कुछ नहीं दीख पड़ता। ऐसा प्रसंग आने पर भी प्रकाश के प्रवन्धकर्ता बटन दबा कर सारे नगर में एक साथ विद्युत-प्रकाश कर देते हैं। मुख्य सड़कों पर ट्रामगाड़ियाँ रेल के समान पाँतों पर बिजली के बल से चलती हैं। मोटर-बसें भी मुख्य-मुख्य सड़कों पर मुसाफिर चढ़ाती-उतारती हैं। ये पेट्रोल नामक तेल के बल से चलती हैं और चालीस-पचास मुसाफिर तक चढ़ा सकती हैं। मुख्य-मुख्य स्थानों तथा अनेक घरों में टेलीफोन लगा हुआ है, जिसके द्वारा मनुष्य घर बैठे ही अपने दूरस्थ मित्र, अथवा व्यापारियों से भी बातचीत कर सकता है। रेलगाड़ी सड़कों पर तथा

ऊपर-नीचे जहाँ ठौर पाती हैं, दौड़ती-फिरती है। बस्ती घनी होने के कारण रेल को आने-जाने के लिए धरती पर ठौर नहीं मिलती। इसलिए घरों तथा सड़कों के नीचे धरती पोली करके उसके लिए मार्ग तैयार किए गए हैं और ये मार्ग नदी के नीचे भी हैं। इस प्रकार की रेल का ट्यूब रेलवे कहते हैं। सड़क पर से रेल के मार्ग तक उतरने के लिए बीच-बीच मे झूले बने हुए हैं, जिन्हे लिफ्ट कहते हैं और जो यन्त्र के बल से चढ़ते-उतरते हैं। ट्यूब रेलवे तक हवा पहुँचाने के लिए ऊपर पम्प लगे हैं, जिनके द्वारा ठूँस-ठूँस कर हवा नीचे भेजी जाती है।

लदन शहर टेम्स नदी के किनारे पर बसा हुआ है, जिसका पाट चौड़ा और पानी गहरा है। समुद्र-तट के निकट होने और टेम्स नदी में काफी पानी रहने के कारण लंदन एक विशाल बन्दरगाह भी है और कई कारणों से वह इस दुनिया का प्रसिद्धतम बन्दरगाह हो गया है। वहाँ रोज हजारों जहाज आते-जाते है और दूर से देखने पर टेम्स नदी के ऊपर मस्तूलों का जंगल मालूम होता है। जहाजों पर माल चढ़ाने-उतारने के लिए नदी-तट पर सैकड़ों धक्के (जहाजी स्टेशन) बने हुए है। यहाँ से पृथ्वी की आठों दिशाओं को माल जाता और वहाँ से आता है। लन्दन तथा इँगलिस्तान की भोजन-सामग्री का बहुत-सा भाग इसी बन्दरगाह पर पहुँचता है। यदि एक सप्ताह के लिए भी जहाजों का आना-जाना बन्द हो जायं, तो उस देश मे त्राहि-त्राहि मच जाय। इसीलिए ब्रिटिश साम्राज्य ने अपनी नाविक शक्ति इतनी प्रबल कर ली है कि इस दुनिया मे कोई भी राजशक्ति उससे समुद्री युद्ध मे टक्कर नहीं ले सकती।

टेम्स नदी के किनारे पार्लियामेंट का विशाल भवन है। यहाँ प्रजा की ओर से चुने हुए पञ्च एकत्रित होकर राज-सम्बन्धी कार्यों पर विचार करते हैं। और मन्त्रीगण विशाल ब्रिटिश राज्य की सब व्यवस्था, उसका राजकीय प्रबन्ध आदि इन्हीं पंचों की सम्मति के अनुसार करते हैं।

इस नगर मे बीच-बीच में विशाल चौक खुले छोड़ दिए गए है, जहाँ मकान नहीं बनने पाते और जहाँ हरी दूब, पेड़ आदि के सिवा कुछ नहीं रहता। ये अत्यन्त सुन्दर और रमणी स्थान हैं। जहाँ हजारों स्त्री-पुरुष और बालक आमोद-प्रमोद में अपना समय व्यतीत करते हैं। हाइड पार्क और ट्रफलगर स्कैयर नामक चौक सबसे सुन्दर और प्रसिद्ध हैं। ऐसे मैदानों को खुले छोड़ देने का अभिप्राय यही है कि लंदन-निवासियों को स्वच्छ हवा मिले और बालकों आदि को खेलने को स्थान मिले।

लंदन सरीखे धनाढ्य नगर में विशाल, सुन्दर तथा ऐतिहासिक इमारतों की कोई कमी नहीं। उनको देखते-देखते परदेशी यात्री की बुद्धि चकित हो जाती है। पार्लियामेंट भवन का वर्णन ऊपर हो चुका है। उसके सिवा निम्नलिखित स्थान देखने योग्य हैं:—

नैशनल गैलरी—यहाँ पृथ्वी भर के उत्तमोत्तम चित्रों का संग्रह है।

ब्रिटिश म्यूज़ियम अर्थात् अजायबघर—यहाँ पृथ्वी के एक द्वारे से लेकर दूसरे द्वारे तक विचित्र वस्तुओं का संग्रह है।

पुस्तकालय—यहाँ कई लाख पुस्तकों का संग्रह है।

बकिंघम महल—हमारे सम्राट् जब लंदन शहर में आते हैं तब यहीं रहते हैं।

विण्डसर की कोठी—यह स्थान लंदन शहर से कुछ हट कर टेम्स नदी के किनारे है। यह मुख्य राज्य-प्रासाद है।

वेस्ट मिनिस्टर एबे और सेण्टपाल नामक गिरिजाघर—इनके समान ही विशाल और सुन्दर गिरजे इस संसार मे विरले मिलेंगे। इँगलिस्तान के इतिहास में जितने नामी पुरुष हुए हैं, प्राय: उन सबकी क़ब्रें प्रथमोक्त गिरजाघर में हैं।

टेम्स नदी का पुल—इस नदी पर कई पुल हैं, परन्तु सबसे सुन्दर वाटलू नामक पुल है। इनमे से कुछ इस प्रकार से बने हैं कि बड़े जहाजो के आने-जाने के समय उठा दिए जा सकते हैं।

जन्तुशाला—यहाँ पर हर-तरह के प्राणी एकत्र किए गए हैं और दुनिया के प्राय: सम्पूर्ण प्राणियो का ज्ञान यहाँ जाने से हो जाता है।

लंदन नगर मे देखने योग्य स्थान इतने हैं कि कोई मनुष्य निठल्ला कई महीने बराबर घूमता रहे, तो भी वह सारे स्थान न देख सकेगा। परन्तु उसे पग-पग पर अँगरेज जाति की सभ्यता, वैज्ञानिक ज्ञान, कल-कुशलता, अतुल सम्पत्ति तथा परोपकार बुद्धि के उदाहरण मिलेंगे।

प्रश्न और अभ्यास

१—ठाकुर गदाधरसिंह ने लंदन शहर के विषय में क्या लिखा है?

२—क्या कारण है कि इतनी भीड़ होने पर भी लंदन में गाड़ियाँ एक दूसरे से नहीं लड़ जातीं और न मनुष्य ही कुचले जाते हैं?

३—लंदन शहर की पुलिस के विषय में तुम क्या जानते हो?

४—लंदन में हरएक देश के मनुष्य पाए जाते हैं, इसका क्या कारण है ?

५—पार्लियामेंट-भवन, नैशनल गैलरी, बकिंघम महल और वेस्ट मिनिस्टर एबे के विषय में जो कुछ जानते हो लिखो ।

(क) लंदन सरीखे धनाढ्य नगर में विशाल, सुन्दर तथा ऐतिहासिक इमारतों की कमी नहीं है ।

(ख) ठाकुर गदाधरसिंह नामक संयुक्त-प्रान्तनिवासी एक हिन्दुस्तानी सैनिक, महाराज सप्तम एडवर्ड के राजतिलक के समय अन्य सैनिकों के साथ इँगलिस्तान भेजे गए थे ।

२३—नाइल का युद्ध

(लेखक—श्रीयुत अखौरी कृष्णप्रकाशसिंह)

[यह पाठ अखौरीजी की 'नेलसन' पुस्तक से लिया गया है ।

नाइल (नील) उत्तरी अफ्रीका की एक नदी का नाम है । 'नाइल का युद्ध' सन् १७९८ में नाइल के मुहाने के पास समुद्रतल पर अँगरेज़ों और फ्रांसीसियों के बीच हुआ था । फ्रांस का अधिपति बनने के बाद नेपोलियन सारे संसार पर अपना आधिपत्य जमाना चाहता था । उसने सोचा कि अँगरेज़ों पर विजय प्राप्त कर लेने से संसार का बहुत बड़ा भाग अपने अधीन हो जायगा, लेकिन उसकी यह इच्छा पूरी न हो सकी । 'नाइल के युद्ध' में फ्रांसीसियों ने बुरी तरह हार खाई, जिससे नेपोलियन की शक्ति का बहुत कुछ ह्रास हुआ । फिर आगे चल कर ट्राफ़लगर के युद्ध में भी अँगरेज़ों की जीत हुई जिससे नेपोलियन की रही-सही शक्ति का पूरा-पूरा विनाश हुआ ।

इस पाठ में अँगरेज़ी नौ-सेना के अध्यक्ष नेलसन का वर्णन है। नेलमन इंगलैंड के सुप्रसिद्ध वीरों में से एक था।]

क्रोध से अन्धीभूत नेपोलियन अपने समस्त शत्रुओं का अवतार इँगलैंड को ही मान कर उसके मूलोच्छेद करने का उपाय करने लगा।

फ्राँसवालों ने अपने चुने-चुने जहाज़ों और सेनाओं का एक बेड़ा तैयार कर, ईजिप्ट (मिस्रदेश) देश होते हुए, हिन्दुस्तान आने का विचार कर लिया। हवाई घोड़े पर की सैर भी खूब ही होती है ; कभी तो सुवर्णमयी भारत-भूमि पर अकड़-अकड़ कर चलने का और कभी अपने मस्तक पर यूरोप का चक्रवर्ती-छत्र लगाने का सुख-स्वप्न नेपोलियन देखने लगा।

इस तैयारी की ख़बर इँगलैंड में पहुँची। वीरवर नेलसन केडीज़ से भारी जहाजों के बेड़े के साथ शत्रु का सामना करने को भेजे गए।

नेलसन अपने बेड़े के साथ अलकज़ांड्रिया पहुँचे। अँगरेज़ी बेड़े के पहुँचने के तीन ही दिन बाद फ्राँसीसी बेड़ा भी पहुँच गया था, परन्तु अँगरेज़ों को उनका कहीं पता नहीं लगा। नेलसन ने पुनः सैराक्यूज़ आकर लंगर डाल दिया। नौ-सो कोस का चक्कर लगा कर भी अँगरेज़ी बेड़ा शत्रुओं का कुछ पता न लगा सका। अपने असफल उद्योग से नेलसन घबरा रहे थे। एक दिन वह कहने लगे कि सैराक्यूज़ आने से मेरा दिल बैठा जाता है, कहीं इसी विफल मनोरथ में मैं मर न जाऊँ।

अबकी बार भी फिर टोह लगानेवाली नौकाएँ निकलीं और भाग्यवश शत्रु का सुराग़ पाकर लौटीं।

पहली अगस्त १७६८ को अन्वेषकों ने सूचित किया कि शत्रु का बेड़ा, अबूकिर-बे में, जो अलकज़ांड्रिया से १५ मील पूर्व की

ओर है, लंगर डाले हुए है। अब इतने दिनों का विफल प्रयास सफल हुआ; नेलसन ने, जो कई दिनों से सोच में पूरा भोजन नहीं करते थे, आज बड़े आनन्द से सब कप्तानों के साथ भोजन किया, आज मानो भावी समर-स्मरण से नेलसन का उत्तम-हृदय शान्त हुआ।

दोनों ओर की नौकाओं की संख्या बराबर थी; परन्तु फ्रांसीसी नौकाएँ बड़ी और अधिक बलशालिनी थीं।

फ्रांसीसी बेड़े पर आक्रमण करने के लिए अँगरेजी नौकाओं को एक ऐसे पानी के मुहाने से पार होना था जहाँ बालू में ही अटक जाने की सम्भावना अधिक थी, पहुँचना तो दूर रहा।

फ्रांसीसी सेनापति ब्रूआइज को यह विश्वास था, कि इस पिछले रास्ते से शत्रु का आना दुस्साध्य है, अतः वह उधर से निश्चिन्त-सा था। बेड़े के पीछे से शत्रु-आक्रमण करते हैं, यह नियम है। यह विचार कर फ्रांसीसी सेनापति उधर से ही आक्रमण रोकने का उपाय कर रहा था। परन्तु उसे क्या खबर थी कि नेलसन बालुकामयी भूमि पर भी जहाज पार कराने में अद्वितीय है।

इस समय वायु फ्रांसीसी बेड़े की ओर ही बह रही थी, अतः नेलसन को आक्रमण करने की और भी सुविधा मिली। इन्होंने अपनी आक्रमण-युक्तियाँ शीघ्र ही प्रत्येक कप्तान को संकेत द्वारा जतादीं।

नेलसन के अन्य सेनापति जब उनकी नौका पर इकट्ठे हुए तब उन्होंने कहा—"वीरो! पहले तुम विजय प्राप्त कर लो, फिर मनमानी लूट मचाओ, तुम्हें कोई न रोकेगा।" सेनापति यह सुनकर शीघ्र लड़ाई छेड़ने को उत्सुक होने लगे। एकने कहा, "महाशय! यदि हम लोग इस समर में विजय प्राप्त कर लें तो

संसार कितनी प्रशंसा करेगा ?" नेलसन ने हँसकर, कहा—"विजय पाने में 'यदि' जोड़ने की आवश्यकता नहीं है, हम लोग विजयी तो अवश्य होंगे, परन्तु इस लड़ाई से कोई भी बच कर विजय समाचार देने के लिए देश जायगा, इसमें अवश्य कुछ सन्देह है।"

साढ़े पाँच बजे सन्ध्या को समर के लिए पंक्तिबद्ध होने की आज्ञा नेलसन ने दी।

कप्तान हुड और फोले अपने 'ज़ेलस'* जहाज़ पर सावधानी से थाह लेते हुए आगे बढ़े। अध्यक्ष की नौका 'वैनगार्ड' * का पंक्ति मे छठा स्थान इस निमित्त रखा गया कि यदि आक्रमण-युक्ति को रद्द-बदल करने की आवश्यकता हुई तो वह (अध्यक्ष) यहाँ से पीछेवाली नौकाओं को ठीक कर लेंगे।

'वैनगार्ड' पर छः झंडे भिन्न-भिन्न स्थानों पर इसलिए फहरा रहे थे कि कहीं शत्रु के गोले से कुल झंडे एक ही बार में न उड़ जायँ। नेलसन को, चतुरता से रास्ते की वालुकामयी भूमि को साफ़ पार करते हुए देख, ब्रूआइज़ का माथा ठनका और भावी युद्ध का भयानक दृश्य उसकी आँखों के सामने घूम गया।

कप्तान फोले को इस समय एक और युक्ति सूझी। वह सावधानी से थाह लेता हुआ आगे बढ़ कर फ्राँसीसी पंक्ति की दूसरी नौका 'कांकरेंट' के सामने बाईं तरफ़ से जा भिड़ा, पीछे से अन्य चार जहाज़ पहुँच कर फ्राँसीसी बेड़े और समुद्र-कूल के बीच में जा डटे।

'वैनगार्ड' अर्थात् अध्यक्ष की नौका के अन्य नौकाओं के साथ जाकर शत्रु-दल के बेड़े को दाहिनी ओर से घेर लिया।

इस प्रकार फ्राँसीसी बेड़ा दोनों ओर से बद्ध हो गया। नेलसन की इस सराहनीय युक्ति से शत्रु की आगे की पाँच

---

*यह अँगरेज़ी जहाज़ों के नाम हैं।

नौकाओं का असहाय होकर आठ नौकाओं का सामना करना पड़ा। पीछेवाली नौकाओं को स्थानाभाव से आगेवाली नौकाओं की सहायता करने का मौक़ा ही नहीं मिलता था।

एक तो अँधेरी रात, दूसरे तोपों से निकलते हुए अविरल धुएँ से आकाशपट पर मानों एक दूसरे काले पट का चंदोवा तन गया था, हाथ से हाथ नहीं सूझता था, जहाँ देखो वहाँ ही अन्धकार का साम्राज्य था, ऐसे अन्धकार में एक अँगरेज़ी नौका 'मैजेस्टिक' भूल से अपने से कहीं बड़ी फ्राँसीसी अध्यक्ष की नौका से जा भिड़ी। जी-तोड़ लड़ाई हुई और 'मैजेस्टिक' मे आग लग गई।

एक घन्टे तक घनघोर लड़ाई होती रही। अँगरेज़ लोग अपने-अपने स्थान पर डटे रहे। इसी समय शत्रुदल का एक गोला नेलसन के सिर में आ लगा। "मैं मरा" कहता हुआ वीर नेलसन बेरी साहब की गोद में गिर गया। बड़ी शीघ्रता से लोगों ने उसे अस्पताल पहुँचाया।

डाक्टर इस समय एक नाविक की मरहम-पट्टी कर रहा था। वह उसे छोड़ कर अध्यक्ष को देखने के लिए आया, परन्तु धीर, वीर, उदार नेलसन यह कदापि सह न सके। उन्होने कहा—"डाक्टर! तुम मुझसे पहले गिरे हुए हमारे नाविकों की पट्टी ठीक कर दो, पीछे हमारे पास आना; मैं उनके जीवन को अपने जीवन से कहीं मूल्यवान् समझता हूँ।"*

---

*नेलसन की उदारता के और भी कई उदाहरण हैं। ट्राफ़लगर से युद्ध में जब नेलसन ज़ख्मी होकर गिरा और थोड़ी ही देर में मरनेवाला था, उस समय उसे ज़ोर की प्यास मालूम हुई। पानी का बर्तन मुँह से लगाने के समय उसने एक प्यासे सिपाही को सतृष्ण नेत्रों से बर्तन की ओर देखते हुए देखा। उसने झट वह बर्तन सिपाही को दे दिया और कहा, "लो, पानी पीओ, तुम्हारी आवश्यकता मेरी आवश्यकता से अधिक है।"

डाक्टर ने घाव की परीक्षा कर उसे प्राणघातक नहीं बतलाया। तुरन्त औषधि की पट्टिया का प्रयोग किया गया, परन्तु जयोत्सुक नेलसन को ऐसे समय में जब कि विजय-देव अपनी जयमाला लिए इधर-उधर डोलते-फिरते थे कब कान्ति मिल सकती थी।

अब अलग खड़ी हुई अँगरेज़ी नौकाएँ शीघ्रता से आगे बढ़ कर नूतन बल और उत्साह के साथ समर की कायापलट करना चाहती थीं। इन नौकाओं के आगे का 'कलोदेन' जहाज़ बालू में फँस गया। सेनापति वीर ट्रूब्रिज ने उद्धार के अनेक उद्योग किए परन्तु सभी निष्फल हुए। तब उन्होंने पीछे से आती हुई अन्य नौकाओं के बचाने के लिए अपनी नौका पर लाल रोशनी कर दी और उन्हें सकुशल रणक्षेत्र में पहुँचा दिया।

नए बल का पहुँचना था कि वीरों ने हुँकार-ध्वनि की। लड़ाई पुनः घनघोर होने लगी; तोपों के गोले उगलने से समुद्र भी मानो गर्म हो उठा। अब फ्राँसवालों के छक्के छूट गए। सेनापति ब्रूआईज़ की प्रधान नौका में आग लग गई। इस अग्नि के चट-चट, तड़-तड़, शब्द से दिशाएँ गूँज उठीं। अंधकार लोप हो गया। वीर सेनापति ब्रूआइज़ दो घाव खाकर इसी भयानक अग्नि में जल मरा।

भयानक कांड मचा। एक धड़ाके के शब्द के साथ जहाज़ टूकड़े-टुकड़े हो गया। इतने बड़े जहाज पर से केवल सत्तर मनुष्य अँगरेज़ नाविकों के उद्योग से बचाए गए।

नाइल के युद्ध में अँरेगजों की विजय हुई; प्रातःकाल देखा गया तो ६ कोस तक भग्न जहाज़ों के टुकड़े बिखरे हुए पाए गए और असंख्य मुर्दे जलपट पर तैरते हुए दिखाई दिए।

इस समय नेलसन के हर्ष का ठिकाना न रहा, अपने काँपते हाथ से विजय का समाचार लिखकर उन्होंने उसे स्वदेश भेजा।

प्रश्न और अभ्यास

१—इस युद्ध के समय फ्राँस देश का अधिपति कौन था? उसकी अभिलाषाएँ क्या थीं? अँगरेज़ों के साथ वह क्या बर्ताव करना चाहता था और क्यों?

२—नाइल का युद्ध कहाँ, कब, किसके बीच हुआ? प्रत्येक दल का अध्यक्ष कौन था?

३—किस युक्ति से अंगरेज़ों ने फ्राँसीसियों को हराया?

४—इस युद्ध से फ्राँस के बल पर क्या प्रभाव पड़ा?

५—इस पाठ से तुम्हे नेलसन के चरित्र के बारे में क्या मालूम होता है?

३३—मीराबाई के पद

(जन्मकाल—संवत् १५५५; मृत्युकाल सम्वत् १६०३)

[मीराबाई जोधपुर-राज्य के संस्थापक राठौर-वीर जोधाजी की पौत्री एवं महाराणा साँगा के ज्येष्ठ पुत्र कुँवर भोजराज की स्त्री थीं। मीराबाई बचपन से ही श्रीकृष्ण की भक्ति करती थीं। पति की मृत्यु से दुःखी होकर उन्होंने अपना समस्त ध्यान कृष्ण-भक्ति की ओर लगा दिया और साधु-सन्तों का सत्संग करने लगीं। यह बात उनके देवर को अच्छी न लगी और वे मीरा को अनेक प्रकार के कष्ट देने लगे। उन्हें विष-पान तक कराया गया, किन्तु भगवत्कृपा से मीरा

पर उसका कोई भी प्रभाव न पडा। अन्त में मीरा तीर्थ-यात्रा को निकल गईं और मथुरा, वृन्दावन आदि स्थानों में भ्रमण करती हुई, द्वारिका में स्थायी रूप से रहने लगी। वहीं उनका देहावसान हुआ।

हिन्दी की स्त्री-कवियित्रियों में मीरा का स्थान बहुत ऊँचा है। उनके हृदय में आराध्यदेव के प्रति जो अगाध प्रेम था, वह प्रत्येक पद से टपका पडता है। भाषा की सरलता और भावों की तन्मयता उनकी कविता का विशेष गुण है। यही कारण है कि उनके बनाए हुए भजनो का बहुत प्रचार है।

उनकी कविता की भाषा मिश्रित है जिसमें ब्रजभाषा और राजस्थानी—दोनों भाषाओं के शब्द मिले हुए है।]



राजरानी मीरा

(१)

चलो मन, गंगा-यमुना तीर।
गंगा जमुना निर्मल पानी, शीतल होत शरीर।
बंसी बजावत, गावत कान्हा* संग लिये बलबीर† ॥
मोर मुकुट पीताम्बर सोहै, कुण्डल झलकत हीर‡।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, चरन-कँवल पै सीर§॥

—:o:—

प्रश्न और अभ्यास

१—मीरा अपने 'मन' को सम्बोधित कर क्या कह रही हैं ?

२—कृष्ण के रूप का वर्णन अपने शब्दों में करो।

३—'कँवल' का शुद्ध रूप लिखो।

---

(२)

म्हारा ओलगिया॥ घर आया।
तन की ताप मिटी, सुख पाया, हिल मिल मंगल गाया।
घन की धुनि सुनि मोर मगन भया, यूँ मेरे आनन्द आया॥
मगन भई मिलि प्रभु अपना सूं, भौ* का दरद मिटाया।
चन्द कूं देखि कमोदनि फूलै, हरख भया मेरी काया॥
सब भगतन का कारज कीन्हा, सोई प्रभु मैं पाया।
मीरा विरहिन सीतल होई दुख दुंद◆ दूर न्हसाया ऽ॥

---

* कान्हो (कृष्ण)। † बलराम। ‡ हीरा। § सिर।

॥ प्रवामी अर्थात् प्रियतम। * भव सागर का। ◆ दुन्द (झगड़ा)
ऽ नष्ट किया।

प्रश्न और अभ्यास

१—म्हारा, मगन, भौ, दरद, कमोदनि, हरख, भगतन, कारज, दुन्द, नसाया—इनके शुद्ध रूप लिखो।

२—प्रियतम के मिलने पर विरहिणी को जो आनन्द होता है, उसकी तुलना इस पद में किन-किन से की गई है?

३—'दुख-दुन्द-दूर' में 'द' अक्षर का अनुप्रास है, इसी प्रकार अन्य पंक्तियों में अनुप्रास देखो।

---

(३)

भज मन चरन-कँवल अविनासी।
जेताइ दीसै धरनि* गगन विच, तेताइ सब उठ जासी†।
इस देही‡ का गरब न करना, माटी में मिल जासी॥
ये संसार चहर की बाजी§, साँझ पड़्याँ उठ जासी।
कहा भयो तीरथ-ब्रत कीने, कहा लिए करवत × कासी॥
कहा भयो है भगवा पहर्याँ, घर तज भये सन्यासी।
जोगी होइ जुगत नहि जानी, उलट जनम फिर आसी॥
अरज करौं अबला कर जोरे, स्याम तुम्हारी दासी।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, काटो जम की फाँसी ऽ॥

---

*पृथ्वी। †उठ जायँगे। ‡देह, शरीर। §चिड़ियों का खेल। ×करवत लेना—अर्थात् पुण्य-लाभ की आशा से आरे के नीचे प्राण दे देना। प्राचीन समय में लोग काशी जाकर ऐसा बहुत किया करते थे। ऽ यम यातना, बारंबार मरण का कष्ट।

प्रश्न और अभ्यास

१—इस संसार की उपमा 'चहर की बाज़ी' से क्यों दी गई है ?
२—मीरा ने तीर्थ-व्रत आदि को किस दशा में व्यर्थ बतलाया है ?
३—उपर्युक्त पद से क्या शिक्षा मिलती है ?

३४—राजा भोज का सपना

(लेखक—राजा शिवप्रसाद 'सितारे हिन्द')

[राजा साहब काशी के रहनेवाले थे। सरकार की ओर से आपको 'राजा' और 'सितारे हिन्द' की उपाधियाँ मिली थीं। हिन्दी से आपको विशेष प्रेम था। उसके प्रचार के लिए आपने बहुत परिश्रम किया और विविध विषयों पर लगभग ३५ पुस्तकें लिखीं। संयुक्त प्रान्त के सरकारी स्कूलों में आपकी ही बदौलत हिन्दी को स्थान मिला था। आजकल जिस 'हिन्दुस्तानी भाषा के लिए फिर से प्रयत्न हो रहा है, उसकी नींव भी राजा साहब ने डाली थी। ('हिन्दुस्तानी भाषा से तात्पर्य 'खिचड़ी हिन्दी' से है। राजा साहब ने 'खिचड़ी हिन्दी' के अतिरिक्त शुद्ध हिन्दी में भी पुस्तकें लिखी हैं।

हिन्दी गद्य को वर्तमान रूप बहुत कुछ आपही के प्रयत्न से प्राप्त हुआ है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र आप ही के दल के यशस्वी लेखक थे। राजासाहब को भारतेन्दुजी साहित्य गुरु मानते थे, इसी से आपका महत्त्व समझा जा सकता है।

हिन्दी के अतिरिक्त आप उर्दू के भी आदर्श लेखक थे। फ़ारसी और अँगरेज़ी भी अच्छी जानते थे।]

राजा उसे देखते ही काँप उठा और लड़खड़ाती-सी जबान से बोला कि हे महाराज! आप कौन हैं, और मेरे पास किस प्रयोजन से

आए हैं। उस दैवी पुरुष ने बादल की गरज के समान गंभीर उत्तर दिया कि मैं सत्य हूँ, मैं अन्धों की आँखें खोलता हूँ, मैं उनके आगे से धोखे की टट्टी हटाता हूँ, मृगतृष्णा के भटके हुओं का भ्रम मिटाता हूँ और सपने के भूले हुओं को नींद से जगाता हूँ। हे भोज! * यदि कुछ हिम्मत रखता है तो आ और हमारे तेज के प्रभाव से मनुष्यों के मन के मन्दिरों का भेद ले। इस समय तो हम तेरे ही मन को जाँच रहे हैं।

राजा के जी पर एक अजब दहशत-सी छा गई, नीची निगाह करके गर्दन खुजाने लगा। सत्य बोला—भोज! तू डरता है? तुझे अपने मन का हाल जानने में भी भय लगता है। भोज ने कहा कि नहीं इस बात से तो नहीं डरता क्योंकि जिसने अपने तईं नहीं जाना उसने फिर जाना ही क्या। सिवाय इसके मैं तो आप ही चाहता हूँ कि कोई मेरे मन की थाह लेवे और अच्छी तरह से जाँचे। मारे व्रत और उपवासों के मैंने अपना फूल-सा शरीर काँटा बनाया, ब्राह्मणों को दान-दक्षिणा देते-देते सारा खजाना खाली कर डाला, कोई तीर्थ बाक़ी न रक्खा, कोई नदी या तालाब नहाने से न छोड़ा। ऐसा कोई आदमी नहीं है जिसकी निगाह में मैं पवित्र पुण्यात्मा न ठहरूँ।

सत्य बोला, ठीक, पर भोज! यह तो बतला कि तू ईश्वर की निगाह मे क्या है? हवा में बिना धूप त्रसरेणु कभी दिखलाई देते हैं? पर सूरज की किरण पड़ते ही कैसे अनगिनती चमकने लग जाते हैं? क्या कपड़े के छाने हुए मैले पानी मे किसी को कीड़े मालूम पड़ते हैं पर जब खुर्दबीन† शीशे को लगाकर देखो तो

---

* धार नगर के विद्वान्, उदार, धर्मात्मा और पराक्रमी राजा थे, इनके विषय में बहुत सी कथाएँ "भोजप्रबन्ध" आदि पुस्तकों में हैं।

† (फ़ारसी) सूक्ष्मवीक्षण यन्त्र।

एक-एक बूँद में हज़ारों जीव सूझने लग जाते हैं। बस जो तू उस बात को जानने से, जिसे अवश्य जानना चाहिए, डरता नहीं तो आ, मेरे साथ आ, मैं तेरी आँखें खोलूँगा।

निदान सत्य यह कह के राजा को मन्दिर के उस बड़े ऊँचे दरवाज़े पर चढ़ा ले गया कि जहाँ से सारा बाग़ दिखलाई देता था और फिर वह उससे यों कहने लगा कि भोज! मैं अभी तेरे पाप-कर्मों की कुछ भी चर्चा नहीं करता क्यों कि तूने अपने तईं निरा निष्पाप समझ रक्खा है। पर यह तो बतला कि तूने पुण्य-कर्म कौन-कौन-से किए हैं जिनसे सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर सन्तुष्ट होगा।

राजा यह सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ। यह तो मानों उसके मन की बात थी। पुण्य कर्म के नाम ने उसके चित्त को कमल-सा खिला दिया, उसे निश्चय था कि पाप तो मैंने चाहे किया हो चाहे न किया हो पर पुण्य मैंने इतना किया है कि भारी से भारी पाप भी उसके पासंग में न ठहरेगा।

राजा को वहाँ उस समय सपने में तीन पेड़ बड़े ऊँचे-ऊँचे अपनी आँख के सामने दिखाई दिए। फलों से लदे हुए कि मारे बोझ के उनकी टहनियाँ धरती पर झुक गई थीं। राजा उन्हें देखते ही हरा हो गया और बोला हे सत्य! यह ईश्वर की भक्ति और जीवों की दया अर्थात ईश्वर और मनुष्य दोनों की प्रीति के पेड़ हैं, देखो फलों के बोझ से धरती पर झुके जाते हैं। ये तीनों मेरे ही लगाए हैं।

—पहले में तो वह सब लाल-लाल फल मेरे दान से लगे हैं और दूसरे में वह पीले-पीले मेरे न्याय से और तीसरे में यह सब फल मेरे तप का प्रभाव दिखलाते हैं। मानों उस समय चारों ओर से यह ध्वनि राजा के कानों में चली आती थी कि धन्य हो महाराज!

धन्य हो ! आज तुम-सा पुण्यात्मा दूसरा कोई नहीं, साक्षात धर्म के अवतार हो, इस लोक में भी तुमने बड़ा पद पाया है और उस लोक में भी तुम्हें इससे अधिक मिलेगा। तुम मनुष्य और ईश्वर दोनों की आँखों में निर्दोष-निष्पाप हो, सूर्य के मण्डल में लोग कलंक बतलाते हैं पर तुम एक छींटा भी नहीं लगाते।

सत्य बोला कि भोज ! जब मैं इन पेड़ों के पास से आया था, जिन्हें तू ईश्वर की भक्ति और जीवों की दया का फल बतलाता है, तब तो उनमें फल-फूल कुछ भी नहीं था, निरे ठूँठ से खड़े थे। यह लाल, पीले और सफ़ेद फल कहाँ से आ गए ? यह सचमुच इन पेड़ों में फल लगे हैं, या तुझे फुसलाने और खुश करने को किसी ने उनकी टहनियों से लटका दिए हैं ? चल उन पेड़ों के पास चल कर देखें तो सही।

मेरी समझ में तो यह लाल-लाल फल, जिन्हें तू अपने दान के प्रभाव से लगे बतलाता है, यश और कीर्ति फैलाने की चाह अर्थात् प्रशंसा पाने की इच्छा ने इस पेड़ में लगाए हैं। निदान ज्यों ही सत्य ने उस पेड़ से छूने को हाथ बढ़ाया, राजा सपने में क्या देखता है कि वह सारे फल जैसे आसमान से तारे गिरते हैं एक आन की आन में धरती पर गिर पड़े। धरती सारी लाल हो गई। पेड़ों पर सिवाय पत्तों के और कुछ न रहा।

सत्य ने कहा, राजा ! जैसे कोई किसी चीज़ को मोम से चिपकाता है उसी तरह तूने अपने भुलाने की प्रशंसा पाने की इच्छा से ये फल इस पेड़ पर लगा लिए थे।

सत्य के तेज से वह मोम गल गया, पेड़ ठूँठ का ठूँठ रह गया, जो कुछ तूने दिया और किया सब दुनिया के दिखलाने और मनुष्यों से प्रशंसा पाने के लिए, केवल ईश्वर की भक्ति और जीवों की दया से तो कुछ भी नही दिया। यदि कुछ दिया हो या

किया हो तो तू ही क्यों नहीं बतलाता। मूर्ख! इसी के भरोसे पर तू फूला हुआ स्वर्ग में जाने को तैयार हुआ था।

भोज ने एक ठंढी साँस ली, उसने तो औरों को भूला हुआ समझा था पर वह सबसे अधिक भूला हुआ निकला। सत्य ने उस पेड़ की तरफ हाथ बढ़ाया जो सोने की तरह चमकते पीले-पीले फलों से लदा हुआ था। सत्य का हाथ पास पहुँचते ही इसका भी वही हाल हो गया जो पहले का हुआ था। सत्य बोला कि राजा! पेड़ में ये फल तूने अपने भुलाने को स्वार्थ सिद्ध करने की इच्छा से लगा लिए थे। कहनेवाले ने ठीक कहा है कि मनुष्य, मनुष्य के कर्मों से उसके मन की भावना का विचार करता है और ईश्वर मनुष्य के मन की भावना के अनुसार उसके कर्मों का हिसाब लेता है।

तू अच्छी तरह जानता है कि यही न्याय तेरे राज्य की जड़ है, जो न्याय न करे तो फिर यह राज्य तेरे हाथ में क्यों कर रह सके। जिस राज्य में न्याय नहीं वह तो बेनींव का घर है, बुढ़िया के दाँतों की तरह हिलता है, अब गिरा, अब गिरा। मूर्ख तू ही क्यों नहीं बतलाता कि यह तेरा न्याय स्वार्थ सिद्ध करने और सांसारिक सुख पाने की इच्छा से है अथवा ईश्वर की भक्ति और जीवों की दया से।

भोज की पेशानी पर पसीना हो आया, आँखे नीची कर लीं, जवाब कुछ न बन पड़ा। तीसरे पेड़ की पारी आई। सत्य का हाथ लगते ही उसकी भी वही हालत हुई। राजा अत्यन्त लज्जित हुआ। सत्य ने कहा कि मूर्ख! यह तेरे तप के फल कदापि नहीं, इनको तो इस पेड़ पर तेरे अहंकार ने लगा रक्खा था। वह कौन-सा व्रत या तीर्थ-यात्रा है, जो तूने निरहंकार केवल ईश्वर की भक्ति और जीवों की दया से किया हो।

तूने यह तप इसी वास्ते किया कि जिसमें अपने तईं औरों से अच्छा और बढ़के विचारे। ऐसे ही तप पर गोबरगनेश! तू स्वर्ग मिलने की उम्मीद रखता है पर यह तो बतला कि मन्दिर की उन मुँडेरों पर वे जानवर से क्या दिखलाई देते है। कैसे सुन्दर और प्यारे मालूम होते है, पर तो उनके पन्ने के हैं और गर्दन फीरोजे की, दुम में सारे किस्म के जवाहिरात जड़ दिये हैं।

राजा के जी में घमंड की चिड़िया ने फिर फुरफुरी ली, मानो बुझते हुए दिए की तरह जगमगा उठा। जल्दी से जवाब दिया कि सत्य यह जो कुछ तू मन्दिर की मुँडेरों पर देखता है मेरे संध्या वन्दन का प्रभाव है। मैंने जो रातो जाग-जाग कर और माथा रगड़ते-रगड़ते इस मन्दिर की देहली को घिस कर ईश्वर की स्तुति-वंदना और विनती-प्रार्थना की है वही अब चिड़ियों की तरह पंख फैला कर आकाश को जाती है, मानो ईश्वर के सामने पहुँच कर अब मुझे स्वर्ग का राजा बनाती हैं।

सत्य ने कहा कि राजा! दीनबन्धु करुणासागर श्रीजगन्नाथ जगदीश्वर अपने भक्तों की विनती सदा सुनता रहता है और जो मनुष्य शुद्ध हृदय और निष्कपट होकर नम्रता और श्रद्धा के साथ अपने दुष्कर्म्मों का पश्चात्ताप अथवा उनके क्षमा होने का टुक भी निवेदन करता है वह उसका निवेदन उसी दम सूर्य-चाँद को वेध कर पार हो जाता है। फिर क्या कारण कि यह सब अब तक मन्दिर की मुँडेर ही पर बैठे रहे। आ चल, देखें तो सही हम लोगों के पास जाने पर आकाश को उड़ जाते हैं या उसी जगह पर परकटे कबूतरों की तरह फड़फड़ाया करते हैं।

भोज डरा लेकिन सत्य का साथ न छोड़ा। जब मुँडेर पर पहुँचा तो क्या देखता है कि सारे जानवर, जो दूर से ऐसे दिखलाई देते थे, मरे हुए पड़े हैं, पंख नुचे-खुचे और बहुतेरे बिल्कुल सड़े हुए यहाँ तक कि मारे बदबू के राजा का सिर भिन्ना उठा। दो-एक ने जिनमें कुछ दम बाक़ी था, जो उड़ने का इरादा भी किया तो उनका पंख पारे की तरह भारी हो गया और उन्हें उसी ठौर दबा रक्खा। तड़फा ज़रूर किए पर उड़ने ज़रा भी न दिया।

सत्य बोला, भोज ! बस यही तेरे पुण्य कर्म हैं, इन्हीं स्तुति-वन्दना और विनती-प्रार्थना के भरोसे पर तू स्वर्ग में जाया चाहता है ? सूरत तो इनकी बहुत अच्छी है पर जान बिलकुल नहीं, तूने जो कुछ किया है केवल लोगों को दिखलाने को, जी से कुछ भी नहीं। जो तूने एक बार जी से पुकारा होता कि दीनबन्धु दीनानाथ दीनहितकारी ! मुझे पापी महाअपराधी, डूबते हुए को बचा और कृपा दृष्टि कर, तो वह तेरी पुकार तीर की तरह तारों के पार पहुँची होती। राजा ने सिर नीचा कर लिया, उत्तर कुछ न बन आया।

प्रश्न और अभ्यास

१—इस पाठ की भाषा में क्या विशेषता तुम्हें ज्ञात होती है ?

२—वर्तमान खड़ी बोली और इस भाषा में क्या अन्तर है, जहाँ भेद जान पड़ता है वहाँ परिवर्तन करो।

३—कहानी की भाषा कैसी होनी चाहिए, इस कहानी में यह कहाँ तक घटित होता है ?

४—इन्हें अब किस रूप में लिखा जाता है ?

भोज डरा लेकिन सत्य का साथ न छोड़ा।

उनका पंख ·····हो गया और उन्हे उसी ठौर पर दबा रक्खा।

तड़फ़ा ज़रूर किए पर उड़ने ज़रा भी न दिया।

राजा के जी में घमण्ड······जगमगा उठा।

इसी प्रकार के अन्य वाक्य चुनो और उनमें यथोचित परिवर्तन करो।

५—इस कहानी से क्या उपदेश मिलता है, उस पर तुम्हारा क्या विचार है।

६—राजा को पेड़ और पक्षी क्यों दूसरे रूपों में दीखते थे ?

७—इस पाठ के उर्दू शब्दों के स्थान पर हिन्दी के उपयुक्त शब्द रक्खो।

८—अपने वाक्यों में प्रयुक्त कर भावार्थ लिखो:—

ठंढी साँस लेना, बे नींव का घर है, आन की आन, पासंग में न ठहरना, आँखें खोलना।

६—ये कैसे शब्द हैं, इनके पर्यायवाची शब्द लिखो—

तईं, पासंग, धरती, निरे, सपने, टुक, परकटे।

१०—किन अर्थों में प्रयुक्त हुए हैं, भिन्न-भिन्न अर्थों में प्रयुक्त करो—

नए, मारे, हरा, पद, आन दम, सही।

११—इसी प्रकार की एक कहानी तुम भी लिख कर किसी पत्रिका के लिए भेजो।

३५—सूरदास के पद

[सूरदास सारस्वत ब्राह्मण थे। आपका जन्म-काल सम्वत् १५४० के लगभग और मृत्युकाल सम्वत् १६२० के लगभग माना जाता है। आप महाप्रभु वल्लभाचार्य के शिष्य थे और उनकी आज्ञा से नित्यप्रति अपने उपास्य देव भगवान कृष्ण की स्तुति में भजन बना कर गाया करते थे। आपका प्रसिद्ध ग्रंथ 'सूरसागर' इन्हीं भजनों का संग्रह है। महाप्रभु के पुत्र एवं उत्तराधिकारी गोस्वामी विट्ठलनाथ ने आठ महात्माओं की एक अष्टछाप स्थापित की थी। अष्टछाप के सभी कवि उच्चकोटि के कवि थे। सूरदास उन सब में अग्रगण्य थे। बाल प्रकृति और विरह-सम्बन्धी बातों का बहुत ही स्वाभाविक और सजीव वर्णन सूरदास ने किया है गोस्वामी तुलसीदास के अतिरिक्त हिंदी का कोई कवि उन तक नहीं पहुँच पाता और वात्सल्य और वियोग-शृंगार के वर्णन में तो वे तुलसी से भी आगे निकल जाते हैं। आपकी रचना ब्रजभाषा में है।]

(१)

कहन लगे मोहन मैया-मैया।
पिता नन्द सों बाबा बाबा, अरु हलधर सों भैया॥
ऊँचे चढ़ि चढ़ि कहत जसोदा, लै-लै नाम कन्हैया।
दूरि कहूँ जनि जाहु लला रे, मारेगी काहू की गैया॥
गोपी ग्वाल करत कौतूहल, घर-घर लेत बलैया।
मनि-खंभन प्रतिबिंब बिलोकत, नचत कुँवर निज पैया॥
नन्द जसोदा जी के उर तें इह, छवि अनत* न जैया‡॥
'सूरदास' प्रभु तुम्हरे दरस को, चरनन की बलि गैया॰॥

---

*अन्यत्र; ‡जाती है; ॰गया।



महात्मा सूरदास

प्रश्न और अभ्यास

१—यशोदा कृष्ण को दूर खेलने जाने से मना क्यों करती थीं ?

२—मनि, कुँवर, अनत, दरस के शुद्ध रूप लिखो।

३—अन्तिम चरण मे कवि अपनी क्या इच्छा प्रकट करता है ?

---

(२)

हरि अपने आगे कछु गावत।
तनक तनक चरनन सों नाचत, मनहीं-मनहि रिझावत।
बाँह उठाइ काजरी धौरी, गैयन टेरि बुलावत॥
माखन तनक आपने कर लै, तनक बदन मे नावत।
कबहुँ चितै प्रतिबिंब खंभ मे, लवनी* लिये खवावत†॥
दुरि देखत जसुमति यह लीला, हरखि अनन्द बढ़ावत।
'सूर' स्याम के बाल-चरित ये, नित देखत मन भावत॥

प्रश्न और अभ्यास

१—इस पद मे बालक की किस स्वाभाविक मनोवृत्ति का वर्णन हुआ है ?

२—यशोदा कृष्ण की यह बाल-लीला छिप कर क्यों देखती थी ?

---

*नवनीत; मक्खन। † प्रतिबिम्ब को बालक समझकर उसे खाने को देते हैं।

(३)

ऊधो, इतनी कहियो जाइ।
अति कृस-गात भईं ए तुम बिन परम दुखारी गाइ॥
जल समूह बरसत दोउ आँखें, हूँकति लीन्हे नाँउ।
जहां-जहां गोदोहन कीन्हो, सूँघति सोई ठाँउ॥
परति पछार खाइ छिन-ही-छिन अति आतुर ह्वै दीन।
मानहुँ 'सूर' काढ़ि डारी हैं बारि मध्य तें मीन॥

प्रश्न और अभ्यास

१—कृस, नाँउ, छिन के शुद्ध रूप लिखो।

२—कृष्ण के वियोग का गायों पर क्या प्रभाव पडा है?

३—गायों की व्याकुलता की उपमा किससे दी गई है?

३६—पानी से बिजली

वैज्ञानिक नियमानुसार हम एक प्रकार की शक्ति को दूसरे प्रकार की शक्ति मे परिवर्तित कर सकते हैं। बिजली एक प्रकार की शक्ति है, इसलिए यदि हमे किसी प्रकार की अन्य शक्ति दे दी जाय तो हम उसका बिजली की शक्ति में परिवर्तन कर सकते हैं। यदि पानी का कुछ समूह किसी ऊँचाई से गिराया जाय तो वह शक्ति से नीचे गिरता है। उस शक्ति के द्वारा बड़े-बड़े काम हो सकते हैं। जब श्रीगङ्गा हिमालय की ऊँचाई से हरिद्वार के निकट मैदान में नीचे आती है तब वे अपनी शक्ति से पर्वतो के बड़े-बड़े टुकड़ो को चकनाचूर कर, बालू के रूप मे बहाकर, हजारों मील दूर तक पहुँचा देती हैं। जितना बड़ा जल का समूह हो और जितना ही ऊँचाई से वह समूह गिरे उतनी ही अधिक उसमे

शक्ति होती है। यदि समूह कम हो तो शक्ति की उत्पत्ति के लिए ऊँचाई अधिक होनी चाहिए अथवा ऊँचाई कम होने पर समूह अधिक होना चाहिए। यदि समूह और ऊँचाई दोनों काफी हों तो बात ही क्या है। फिर तो शक्ति खूब ही अधिक होती है; जैसे अमेरिका की नियागरा नदी वा मैसूर-राज्य में कावेरी नदी। इन दोनों स्थानों पर पानी का समूह भी खूब है और उसके गिरने की ऊँचाई भी। इस कारण इन स्थानों पर इनके झरने से बड़ी शक्ति उत्पन्न होती है।

नदियों के झरनों से इस प्रकार उत्पन्न होनेवाली शक्ति से किसी न किसी रूप में काम तो आदिकाल से ही लिया जाता रहा है। पहाड़ों पर जानेवाले यात्रियों ने ऐसे झरनों की शक्ति से पनचक्की को चलते हुए देखा होगा। झरने की धारा ऊँचाई से लाकर एक पहिए के पट्टों पर डाली जाती है जिससे पट्टों पर आघात होने से पहिया चलता रहता है और इञ्जन की तरह आटा पीसने का या ऐसा ही कोई अन्य काम करता है। यदि इसी पहिए के धुरे में बिजली की मशीन, जिसे डाइनमो कहते हैं, लगा दी जाय तो वह मशीन तेजी से चल कर बिजली पैदा कर देती है। इस तरह पानी की शक्ति बिजली की शक्ति में परिवर्तित हो जाती है। फिर इस बिजली की शक्ति को तार-द्वारा सैकड़ों मील ले जाकर और उससे बिजली की दूसरी मशीन-मोटर को चलाकर अनेक प्रकार के काम लिए जा सकते हैं।

सर्द और पहाड़ी देशों में नदी के झरनों की शक्ति को बिजली में परिवर्तित कर बड़े-बड़े काम किए जाते हैं। यूरोप के नार्वे, स्विट्जरलैंड इत्यादि पहाड़ी देशों में इँगलैंड की तरह कोयले की खानें नहीं हैं, जिससे वहाँ कारखाने नहीं चल सकते थे। परन्तु अब इन देशों की बड़ी-बड़ी झीलों से झरने नीचे

गिरा कर और उन झरनों की शक्ति से सस्ती बिजली उत्पन्न कर बड़े-बड़े उपयोगी पदार्थ बनाने के कारखाने चलाते हैं, जिनकी बदौलत वे देश बहुत धनवान् हो रहे हैं।

ठंढे देशों में झरने लगभग वर्ष में बारह मास जारी रहते हैं, परन्तु हमारे गर्म देश मे हिमालय के पहाड़ी हिस्सो को छोड़ कर झरने गर्मी की ऋतु मे या तो बिलकुल ही बन्द हो जाते हैं अथवा इतने छोटे और कमजोर हो जाते हैं कि उनसे बिजली की शक्ति इन दिनों नहीं उत्पन्न हो सकती। इसलिए हमारे देश में अधिकतर हिमालय के झरनों से अभी तक बिजली की शक्ति उत्पन्न की जाती थी, जहाँ गर्मी के दिनों मे भी पहाड़ की चोटी पर बर्फ गलने से झरने चलते रहते हैं। ऐसे कारखाने काश्मीर, शिमला, मसूरी तथा दार्जिलिंग मे नगरो की रोशनी के लिए हैं। मैसूर-राज्य मे भी काबेरी नदी के एक बड़े झरने से बिजली उत्पन्न करके उस राज्य की सोने की खानो में ले जाते हैं।

हमारे देश मे दक्षिण प्रान्तों मे वर्षा बहुतायत से होती है—वर्षा-ऋतु के चार महीनों मे दो सौ इञ्च से भी अधिक पानी बरस जाता है, जो बड़ी-बड़ी नदियों और नालों के रूप मे बह कर समुद्र में चला जाता है। इस पानी से लाभ के साथ-साथ बहाव-द्वारा हानि भी होती है। बम्बई के प्रसिद्ध व्यापारी जमशेद जी ताता को अचानक यह बात सूझी कि वर्षा-काल के इस पानी को बम्बई इलाके के पर्वतो की घाटी मे बन्द कर, इनके झरने बनाकर, बिजली की शक्ति पैदा करने का काम क्यो न लिया जाय। इस युक्ति को काम में लाने के विचार में उन्होंने कई वर्ष बिताये और यद्यपि स्वयं वे वर्षा के इस महान् जल-समूह को बाँधकर क़ाबू मे लाने के पूर्व ही मृत्यु को प्राप्त हुए, किन्तु अपने योग्य पुत्रो के लिए वे ऐसा

उम्दा मसौदा बना कर छोड़ गए कि उसके द्वारा आज वास्तव में पूना के समीप पर्वतों पर वर्षा के पानी को बाँध कर और फिर उससे झरने बनाकर बिजली उत्पन्न की जाती है जो ताँबे के तार-द्वारा पचासों मील की दूरी को पार कर बम्बई में जाती है। यह बिजली कपड़ों के बड़े-बड़े कारखानों को चलाने के काम आती है।

इस प्रकार के झरने से उत्पन्न होनेवाली बिजली का पहला कारख़ाना बम्बई नगर से ४० मील की दूरी पर पूना की ओर खपोला नामक स्थान में है। बम्बई से पूना को रेल पर जाने-वाले यात्री रास्ते में बिजली के तार से लदे हुए बड़े खंभों को देख सकते हैं। लोनावाला नामक स्थान के निकट घाटियों के बीच तीन बड़े-बड़े मज़बूत बाँध बाँधकर उनमें पानी जमा किया जाता है। इन झीलों को नहर-द्वारा मिलाकर और फिर लोहे के बड़े-बड़े नलों द्वारा पानी को पहाड़ के नीचे लाकर बिजली की मशीनें चलाई जाती हैं और उनसे बिजली पैदाकर बम्बई को ले जाते हैं। इस प्रकार पचास हज़ार घोड़ों की शक्ति उत्पन्न कर उससे बम्बई में चालीस बड़े-बड़े कारख़ाने चलाए जाते हैं। बची हुई शक्ति-द्वारा ट्राम चलती है और शहर में रोशनी भी की जाती है। बिजली की इस शक्ति के कारण बम्बई ऐसे नगर, में जहाँ कोयला बंगाल की दूर खानों से लाया जाता था, अब डेढ़ लाख टन कोयले की बचत प्रति-वर्ष होती है। कोयले को लाने के लिए रेल के आठ हज़ार वैगनों की जरूरत पड़ती थी, उनकी भी बचत हुई।

प्रश्न और अभ्यास

१—अमेरिका की नियागरा और मैसूर में कावेरी से कौन-सा काम लिया जाता है और क्यों ?

२—शीत-प्रधान तथा पहाड़ी देशों में किस प्रकार बिजली उत्पन्न की जाती है ?

३—बिजली की मशीन का नाम क्या है ?

४—यूरोप के किन-किन देशों में बिजली के द्वारा उपयोगी वस्तु बनाने के कारख़ाने खोल दिए गए हैं ? इन स्थानों में इँगलैंड की तरह पहले कारख़ाने क्यों नहीं खुल सके थे ?

५—जमशेदजी ताता ने वर्षा के पानी का कौन-सा उपयोग किया ?

६—"साल में दो सौ इञ्च पानी बरसता है" और "एक लाख घोड़ों की ताक़तवाली बिजली" का क्या अभिप्राय है ?

७—पहले पैराग्राफ़ में जो व्यक्तिवाचक संज्ञाएँ तथा क्रिया-विशेषण आए हैं, उनकी पदव्याख्या करो।

३७—पवित्र तीर्थ

(लेखक—श्रीवियोगी हरि)

[वियोगीजी ब्रजभूमि, ब्रजभाषा और ब्रजपति के अनन्य उपासक हैं। पुराने कृष्णोपासक भक्त कवियों की भाँति आपने बहुत से रसीले पदों की रचना की है। यद्यपि यह युग ब्रजभाषा का नहीं है तथापि आपकी रचनाएँ इतनी सुन्दर हुई हैं कि उनका पठित जनता में काफ़ी प्रचार है। आपने 'वीर सतसई' नामक एक बड़ा काव्य दोहों में लिखा है, जिस पर हिन्दी-साहित्य सम्मेलन से आपको १२०० रु० का पुरस्कार मिला है। निम्नलिखित दोहे 'वीरसतसई' से ही लिए गए हैं।

लोगों की यह धारणा थी कि ब्रजभाषा में वीर-रस की कविताएँ लिखी ही नहीं जा सकतीं, क्योंकि यह भाषा बहुत ही मधुर है और वीर-काव्य के लिए सर्वथा अनुपयुक्त है, किन्तु वियोगीजी ने ब्रजभाषा में वीर-रस से भरा हुआ 'वीर सतसई' नामक काव्य लिखकर लोगों की इस धारणा को भ्रम-पूर्ण सिद्ध कर दिया है।]

(१)

अरे फिरत कत बावरे ! भटकत तीरथ भूरि ।
अजों न धारत सीस पै सहज सूर-पग-धूरि ॥

(२)

बसत सदा ता भूमि पै तीरथ लाख-करोर ।
लरत-मरत जहँ बाँकुरे विरुझि बीर वर जोर ॥

(३)

जगी जोति जहँ जूझकी, खगी खड्ग खुलि झूमि ।
रँगी रुधिर सो धूरि, सो धन्य-धन्य रण-भूमि ॥

(४)

तहँ पुष्कर, तहँ सुरसरी, तहँ तीरथ, तप त्याग ।
उठ्यौ सुबीर-कबन्ध१ जहँ, तहँई पुण्य-प्रयाग ॥

(५)

मंगर-सौंहैं सूर जहँ, भये भिरत चकचूरि ।
बडभागनु तें मिलति वा रण-आँगन की धूरि ॥

(६)

कै कृपान की धार, कै अनल कुण्ड कौ ठाट ।
एही बीर-बधून के, द्वै अन्हान के घाट ॥

(७)

रण-बेला सतपर्व-सी अभिमत-फल दातार ।
सहस-जान्हवी-धार लौं सुभट-हेतु असि धार ॥

१-बिना सिर का धड़

(८)

सुभट-सीस-सोनित-सनी समर-भूमि ! धनि-धन्य !
नहिं तो-सम तारण-तरण त्रिभुवन तीरथ अन्य ॥

(९)

नमो-नमो कुरु-खेत ! तुव महिमा अकथ अनूप ।
कण-कण तेरो लेखियतु सहस-तीर्थ-प्रतिरूप ॥

प्रश्न और अभ्यास

१—लेखक ने सच्चा तीर्थस्थान किसे बतलाया है ? क्या तुम उससे सहमत हो ? कारण सहित उत्तर दो ।

२—वीर-स्त्रियों के स्नान योग्य लेखक ने दो घाट कौन-कौन-से बतलाए हैं ?

३—कुरुक्षेत्र की इतनी महिमा क्यों गाई गई है ?

४—तीरथ, सीस, जोति, योग के शुद्ध रूप लिखो ।

३८—युद्ध की उत्तेजना

(मानसी और अजय)

मानसी—कौन ? अजय

अजय—हाँ, मानसी ! तुम यहाँ अकेली क्यों हो ?

मानसी—मैं गाती थी और सोचती थी ।

अजय—क्या सोचती थी ?

मानसी—यही सोचती थी कि मनुष्य बड़ा ही दीन है । मेवाड़ के युद्ध में मुझे यही एक सब से बड़ी शिक्षा मिली कि मनुष्य

बड़ा ही दुर्बल है। तलवार के एक ही वार से वह जमीन पर गिर पड़ता है, जरा-सा ज्वर आते ही वह बालकों की तरह असहाय हो जाता है। हाय! जिसके रक्त में हो मृत्यु का बीज मिला हुआ है वह एक दूसरे से प्रेम न करके परस्पर घृणा क्यों करता है? अजय! तुम टक लगाए मेरा मुँह क्यों देख रहे हो?

अजय—तुम्हारे मुँह पर मैं आज भी वही स्निग्ध ज्योति देख रहा हूँ जो मैंने उस दिन देवार के युद्ध क्षेत्र में देखी थी। उस दिन वहाँ अन्धेरे में तुम मूर्तिमयी दया हो जान पड़ती थीं। उसी दिन मेरा उन्मुख प्रेम असीम निराशा की लम्बी साँस में मिल गया।

मानसी—अजय! निराशा कैसी?

अजय—बतलाऊँ, कैसी निराशा? मैंने समझ लिया कि तुम इस संसार की स्त्री नहीं बल्कि स्वर्ग की देवी हो। तुम्हारी आत्मा की तीव्र ज्योति को संसार सहन नहीं कर सकेगा, इसी विचार से ईश्वर ने उसके ढँके रखने के लिए तुम्हारे इस सुन्दर शरीर को आवरण-स्वरूप बनाया है। मैं तुम्हारे साथ प्रेम करने के योग्य नहीं हूँ। हाँ, मैं तुम्हारे प्रति भक्ति कर सकता हूँ। उस भक्ति के बदले में थोड़ी-सी—बहुत ही थोड़ी-सी करुणा चाहता हूँ। क्या तुम मेरी इच्छा पूरी करोगी?

(रानी का प्रवेश)

रानी—अजय! तुम्हें इस प्रकार, एकांत में, हमारी कन्या के साथ बातचीत न करनी चाहिए!

अजय—मैं क्षमा माँगता हूँ।

रानी—(मानसी से) जाओ, अन्दर जाओ।

[एक ओर से अजयसिंह और दूसरी ओर से मानसी चली जाती है]

रानी—खूब अच्छी तरह समझ लिया है। यदि अजय के साथ मेरी मानसी का ब्याह हो जाता तो बहुत अच्छा होता। लेकिन यह कभी हो सकता है? नहीं। हो ही नहीं सकता। (कुछ दृढ़ होकर) और जो बात हो नहीं सकती, उसकी चिन्ता ही क्यों की जाय?

(राणा अमरसिंह आते हैं)

राणा—तुमने मानसी को कुछ कहा सुना है?

रानी—नहीं तो। क्यो क्या हुआ?

राणा—वह रो रही है।

रानी—पागल कहीं की! मैंने रोने की कौन-सी बात कही थी? आप तो अपनी लड़की का हाल कुछ देखते नहीं, और वह स्वयं कुछ समझती नहीं।

राणा—तुम जानती हो वह कौन है?

रानी—कौन है?

राणा—हम नहीं जानते कि वह कौन है। हम तो अभी तक उसे पहचान ही नहीं सके। कोई नहीं कह सकता कि वह कौन है और कहाँ से आई है। देखो, आगे से कभी मानसी को कुछ न कहना। स्वर्ग की एक किरण दया करके इस लोक मे उतर आई है। अगर तुम कुछ कहोगे तो वह रूठ कर चली जायगी, (रानी निराशा प्रकट करती हुई जाती है। राणा एक ऊँचे आसन पर बैठते हैं और आकाश की ओर देखते हुए कहते है) यह जीवन भी एक स्वप्न है। यह आकाश कैसा नीला, स्वच्छ और गहरा है! इसके नीचे उदार मेघ उड़ रहे हैं। प्रकृति के जीवन मे समुद्र की तरह लहरें उठती हैं और फिर बैठ जाती हैं। आकाश मे बादल गरजते है। पृथ्वी पर जल बरस कर बह जाता है। और इसके बाद पहले की तरह सब शांत और स्थिर हो जाते हैं।

(गोविन्दसिंह आते हैं)

राणा—कौन ? गोविंदसिंह जी, कहिए इस समय अचानक कैसे आए ?

गोविंद—महाराज ! मेवाड़ पर फिर से आक्रमण करने के लिए मुगलों की नई सेना आई है।

राणा–आगई ? यह तो हम पहले से ही जानते थे कि केवल देवार के युद्ध से इस युद्ध की समाप्ति नहीं होगी। सारे राज-पूताने को मुग़ल जब तक न उजाड़ देंगे तब तक न मानेंगे।

गोविंद—महाराज ! क्या कारण है कि अभी हम लोगों की ओर से कुछ भी तैयारी नहीं हुई ?

राणा—क्यों, तैयारी की आवश्यकता ही क्या है ? युद्ध करने से क्या होगा ?

गोविंद—महाराज, तब तो मुग़ल आकर मेवाड़ पर तुरन्त ही अधिकार कर लेंगे।

राणा—जब उनका इतना आग्रह है तब फिर इसमें हर्ज-क्या है ?

गोविंद—क्या किसी प्रकार का उद्यम, प्रयत्न या प्रतिवाद किए बिना ही—

राणा—लेकिन इन सब बातों की आवश्यकता ही क्या है ? देवार के युद्ध में हमारे प्रायः आधे से अधिक सैनिक नष्ट हो चुके हैं। अब मुग़लों के साथ लड़ने के लिए हमारे पास सेना ही कहाँ है ?

(सत्यवती आती हैं)

सत्य०—महाराज ज़मीन फोड़ कर सेना निकल आवेगी। सेना की आप चिन्ता न करें।

राणा—कौन ? चारणी ?

सत्य०—हाँ महाराज, मैं चारणी हूँ। मैंने सुना है कि मुग़ल फिर मेवाड़ पर आक्रमण करने आए हैं। पर मैं देखती हूँ कि मेवाड़ अभी तक निश्चिन्त और उदासीन है। मैंने समझा कि कदाचित् अभी तक महाराज की निद्रा भंग नहीं हुई, इसी से मैं महाराज को निद्रा भंग करने के लिए आई हूँ।

राणा—चारणी ! अब हमारी युद्ध करने की इच्छा नहीं है अबकी बार हम संधि करेंगे।

सत्य०—यह क्यो महाराज ? देवार के युद्ध की विजय के उपरांत संधि क्यो ? क्या महाराज उस गौरव के शिखर पर से फिसल कर अपमान के गहरे गड्ढे मे जाएँगे ?

राणा—चारणी ! देवार की विजय की बात छोड़ दो। देवार में हमारी जीत अवश्य हुई है; पर जानती हो, वह जीत किस प्रकार हुई है ? उसमे हमारे लगभग आधे सैनिक मारे गए हैं। इतने वीरों का रक्त बहाकर हमने वह विजय प्राप्त की है।

सत्य०—महाराज ! यह कोई चिन्ता और दुःख की बात नहीं है। वीरों का रक्त ही जाति को उर्वर करता है। जिस देश मे वीर मरते है, उस देश के लिए दुःख नहीं करना चाहिए; किन्तु दुखो उन देशों के लिए होना चाहिए जहाँ वीर नहीं मरते।

राणा—लेकिन हम तो देखते हैं कि यदि एक बार हमने और भी युद्ध किया, तो भी उसका कोई फल न होगा। इन मुट्ठी भर सैनिकों को लेकर विश्व-विजय दिल्ली-सम्राट् की सेना के विरुद्ध खड़े होना पूरा-पूरा पागलपन है।

सत्य०—महाराज ! यदि इसको पागलपन कहते हैं तो भी इसका स्थान सारी विवेचनाओं और सारे विचारों से

बहुत ऊँचा है। सारा विश्व इसी पागलपन के पैरों पर आकर लोटता है। स्वर्ग से एक गरिमा आकर इस पागलपन के माथे पर मुकुट पहनाती है। जिसे महाराज पागलपन कहते हैं, क्या उस पागलपन के बिना आज तक किसी ने कोई बड़ा काम किया है?

राणा—लेकिन इस युद्ध का अन्तिम परिणाम निश्चित मृत्यु—

सत्य०—महाराज! राणा प्रतापसिंह के पुत्र के लिए यह समझना कठिन न होगा कि अधीनता श्रेष्ठ है या मृत्यु। क्या मरने के भय से हम अपना रत्न डाकुओं के हाथ में सौंप दें? रत्न से भी कहीं बढ़ कर अपने इस सर्वस्व, पूर्व-पुरुषों के संचित और अनेक शताब्दियों के स्मारक को क्या केवल प्राण-भय से बिना युद्ध किए ही सौंप दें? अगर वह लेना ही चाहता हो तो मर-कट कर ले। और निश्चित मृत्यु की तो बात ही क्या? वह क्या सभी को एक दिन न आवेगी?

राणा—चारणी! तुम कौन हो? तुम्हारे वाक्यों में गर्जन, तुम्हारे नेत्रों में बिजली और तुम्हारी अंग भंगी आँधी है। सूर्य्य के समान प्रकाशमान, जल प्रताप के समान प्रबल, वज्र के समान भीषण, तुम कौन हो? तुम केवल चारणी तो नहीं हो!

सत्य०—महाराज! यदि आप पूछते ही हैं तो मैं बतलाये देती हूँ। अब मुझे अपने आपको छिपाने की अधिक आवश्यकता नहीं है। मैं राणा प्रतापसिंह के भाई सगरसिंह की कन्या सत्यवती हूँ।

राणा—हैं! तुम राजा सगरसिंह की कन्या हो?

सत्य—महाराज! यह परिचय देते हुए मेरा सिर लज्जा

से झुका जाता है। तो भी पिता के पापों का प्रायश्चित्त इस कन्या से जहाँ तक हो सकता है, वह करती है। मेरे पिता अपने भतीजे को सिंहासन के उतारनेवाले के लिए चित्तौर के दुर्ग मे कल्पित राणा बन कर बैठे हुए हैं; और मैं उन्हीं की कन्या होकर उन्हीं के विरुद्ध मेवाड़-वासियों को उत्तेजित करती फिरती हूँ। मैं लोगों को यह बतलाती फिरती हूँ कि सगरसिंह मेवाड़ के कोई नहीं हैं, वे केवल मुग़लों के ख़रीदे हुए दास हैं। महाराज! मेवाड़ के लिए मैं अपना सुख, पिता और पुत्र आदि सब कुछ छोड़ कर जंगलों और तराइयों मे चारणी बन कर उसकी महिमा गाती फिरती हूँ। क्या आप मेरे उसी प्रिय मेवाड़ को बिलकुल तुच्छ और अनावश्यक पदार्थ की तरह नष्ट हो जाने देंगे? (सत्यवती की आंखों मे जल भर आता है, उसका गला रुँध जाता है, वह अपनी आंख पोंछती है।)

राणा—शान्त हो बहन! तुम हमारी बहन और राज-कन्या हो। तुम जिस देश के लिए अपना जीवन उत्सर्ग कर सकती हो, उसके लिए उस देश का राजा तुम्हारा भाई भी अपने प्राण दे सकता है। गोविंदसिंहजी! युद्ध के लिए प्रस्तुत हो जाइए और सेना तैयार कीजिए।

———

प्रश्न और अभ्यास

१—मानसी कौन थी और उसे युद्ध में क्या शिक्षा मिली थी?

२—सत्यवती राणा अमरसिंह की कौन थी और उसने राणा को युद्ध के लिए क्यों उत्तेजित किया था?

३—'स्वर्ग की किरण' का क्या अभिप्राय है?

४—"तुम्हारे मुँह पर मैं आज भी वही ज्योति देख रहा हूँ, जो मैंने उस दिन देवार के युद्ध मे देखी थी।" यह किस प्रकार का वाक्य है ? इसका विश्लेषण करो।

३६—चित्रकूट में श्रीराम

(लेखक—श्री जयशंकर 'प्रसाद')

['प्रसाद' जी वैश्य जाति के थे। आपका जन्म काशी में सम्वत् १९४६ में हुआ था। आपने हिन्दी मे नवीन युग का सूत्रपात किया है। अतुकान्त कविता और रहस्यवाद-सम्बन्धी कविता का आपने ही आरम्भ किया। आपकी प्रतिभा सर्वतोन्मुखी थी। कवि होने के अतिरिक्त आप उच्च-कोटि के नाटककार, गल्पलेखक और उपन्यासकार भी थे। गद्य-काव्य भी आपने लिखा है। भावों की मौलिकता एवं भावुकता आपकी रचना के विशेष गुण हैं। आपकी भाषा संस्कृत-गर्भित और भाव के सर्वथा अनुकूल होती है।

आपके मुख्य-मुख्य ग्रंथ ये हैं.—

कविता—कानन-कुसुम, झरना, चित्राधार।

नाटक—राज्यश्री, विशाख, जनमेजय का नागयज्ञ, अजातशत्रु, चन्द्रगुप्तमौर्य, स्कन्दगुप्त, कामना, एक घूँट।

कहानी—प्रतिध्वनि, आकाशदीप, आँधी, छाया।

उपन्यास—कंकाल।

(१)

उदित कुमुदिनी-नाथ हुए प्राची में ऐसे।
सुधा-कलश रत्नाकर से उठना हो जैसे॥

धीरे-धीरे उठे नई आशा-से मन मे।
क्रीड़ा करने लगे स्वच्छ स्वच्छन्द गगन मे॥

(२)

चित्रकूट भी चित्र-लिखा-सा देख रहा था।
मन्दाकिनी*-तरंग उसी से खेल रहा था॥
स्फटिक-शिला-आसीन राम वैदेही ऐसे।
निर्मल जल मे नील कमल-नलिनी हो जैसे॥

(३)

निज प्रियतम के संग सुखी थी कानन मे भी।
प्रेम भरा था वैदेही के आनन में भी॥
मृग-शावक के साथ मृगी भी देख रही थी।
सरल विलोकन जनकसुता से सीख रही थी॥

(४)

निर्वासित थे राम, राज्य था कानन मे भी।
सच ही है श्रीमान् भोगते सुख वन मे भी॥
चन्द्रातप‡ था व्योम, तारका रत्न जड़े थे।
स्वच्छ दीप था सोम,✧ प्रजा तरुपुञ्ज खड़े थे॥

(५)

शांत नदी का स्रोत§ बिछा था अति सुखकारी।
कमल-कली का नृत्य हो रहा था मनहारी॥

---

*चित्रकूट के पास बहनेवाली एक नदी। ‡चांदनी। ✧ चन्द्रमा।
§ धारा।

बोल उठा जो हंस देख कर कमल-कली को।
तुरत रोकना पड़ा गूँज कर चतुर अली* को॥

(६)

हिली आम की डाल ज्यों नवल हिंडोला।
आह कौन है ?—पंचम स्वर से कोकिल बोला॥
मलयानिल प्रहरी-सा फिरता था उस वन में।
शांति शान्त हो बैठी थी कामद† कानन में॥

(७)

राघव बोले देख जानकी के आनन को—
स्वर्ग-गंगा का कमल मिला कैसे कानन को ?
नील मधुप‡ को देख वहीं उस कंज-कली ने।
स्वयं आगमन किया,–कहा यह जनकलली ने॥

(८)

बोले राघव—प्रिये, भयावह-से इस वन में।
शंका होती नहीं तुम्हारे कोमल मन में ?
कहा जानकी ने हँस कर—उसको है क्या डर।
जिसके पास प्रवीण धनुर्धर ऐसा है सहचर ?

(९)

कहा राम ने—अहा, महल मन्दिर मन भावन।
स्मरण न होते, कहो, तुम्हें वे क्या अति पावन॥

---

* भौंरा। † कामनाओं को पूरी करने वाला। ‡ काला भ्रमर (यहाँ श्रीरामचन्द्र)।

रहते थे झनकार-पूर्ण जो तन नूपुर से।
सुरभि-पूर्ण* पुर होता था जिस अन्तःपुर से॥

(१०)

जनक-सुता ने कहा—नाथ, यह क्या कहते हैं?
नारी के सुख सभी साथ पति के रहते हैं॥
कहो उसे, प्रिय प्राण, अभाव रहा फिर किसका?
विभव-चरण का रेणु तुम्हारा ही है जिसका॥



प्रश्न और अभ्यास

१—श्री राम-जानकी की बातचीत अपने शब्दों में लिखो?

२—चित्रकूट की शोभा का वर्णन, उपर्युक्त पाठ के आधार पर संक्षेप में करो?

३—इस पाठ में जो उपमाएँ आई हों, उन्हें ढूँढ़ कर लिखो?



४६—बाघ से भिड़न्त

(लेखक—पं० श्रीराम शर्मा बी० ए०)

[शर्मा जी एक कुशल शिकारी एवं हिन्दी-भाषा के सफल लेखक हैं। हिन्दी-साहित्य में शिकार सम्बन्धी पुस्तकों का सर्वथा अभाव था; आप इस विषय पर लेख एवं पुस्तकें लिखकर साहित्य के इस अंग की पूर्ति कर रहे हैं। आपकी वर्णन शैली बड़ी सजीव और भाषा विषय के अनुकूल होती है।]

* आमोदित।

सायङ्काल के चार बजे थे। स्कूल से लौट कर घर में गरम-गरम चाय पी रहा था। छोटी लड़की अपनी भोली और पाक दृष्टि से, पास ही बैठी, खिलौना खेल रही थी—"बाबूजी! इछे भी चाय दे दो, थंद लग रही है।" मैं कुछ कहना ही चाहता था कि किसी ने बाहर से पुकारा "मास्टर साहब! मास्टर साहब! जरा बाहर आइए। एक आदमी आया है। बाघ की खबर लाया है।" बाघ का नाम सुन कर मैं उछल पड़ा। चाय का पियाला वहीं-का-वहीं रख कर झट से बाहर आया।

देखा तो बाहर पश्मीना की चादर ओढ़े मेरे शिकारी मित्र पं० लक्ष्मीदत्त थपलियाल खड़े हैं, और उनकी बगल में एक हाड़ का कंकाल—बूढ़ा खड़ा है। उसकी मुखाकृति उसकी अन्तर्वेदना की द्योतक थी। कष्ट, विपत्ति और समय के उलट फेर ने उसकी गति, तूफान में फँसे जहाज की-सी, कर दी थी।

चिन्ता ने कौतूहल का स्थान लिया, और बातचीत से मालूम हुआ कि बाघ ने टिहरी से कुछ दूर एक साथ ही दो गायों का वध किया है।

एक तो दिन-भर की थकावट, दूसरे कुसमय और तिस पर कड़ाके का जाड़ा—तबियत बाहर निकलने को न करती थी, पर उस बूढ़े की आँखों में एक खिंचाव था, जो हृदयतन्त्री के तारों को अपनी ओर खींच रहा था।

वह खिंचाव, किसी कम्पायमान, भावी आशंका से भयभीत, बलि-पशु की आँखों से निकलती हुई मूक-याचना का खिंचाव-सा था। उसकी आँखें कह रही थीं कि यदि तुम हृदयहीन नहीं हो, तो हमारी रक्षा करो।

वन-बीहड़-सहचरी बन्दूक उठाई। कारतूस जेब में डाले और लक्ष्मीदत्तजी तथा बूढ़े किसान को साथ लेकर जंगल की

राह ली। चला जाता था और मन-ही-मन सोचता जाता
कि संसार में जीवन-संग्राम-समस्या बड़ी विकट है। मनुष्य
लेकर कीड़े-मकोड़े-तक उदर-पूर्ति के लिए एक दूसरे के खून
प्यासे होते हैं। यदि कोई मनुष्य किसी पशु को मारता है
पापी कहलाता है, पर जब बाज़ और बाघ चिड़िया और गा
मारते हैं, तब हम केवल यह कह कर ही चुप हो जाते हैं
'जीवो जीवस्य भोजनम्' अर्थात 'जीव ही जीव का भोजन है
कल्पनाशक्ति अपनी उड़ान में हिंसा के मूल तत्व के विश्लेषण
की ओर उड़ रही थी कि बूढ़े ने कन्धे पर हाथ रख कर कहा—
'मालिक, ऊपर देखो। ठीक उस डांडे पर मेरी बड़ी गाय म
पड़ी है। और वहाँ से चार फर्लांग पर पहाड़ की दूसरी ओ
दूसरी गाय पड़ी है।'

बूढ़े की बात सुनकर दार्शनिक विचारों ने अपनी राह ली
और बाघ मारने की सूझी। लक्ष्मीदत्त जी और मुझ मे चार-पाँ
मिनट के लिए परामर्श हुआ। परामर्श क्या था एक प्रकार
युद्ध-कानफरेन्स*-सी थी, जिसमे अपने शत्रु की सब चालों
ख़याल किया गया।

बाघ ने दो गायें मारी थी, परामर्श से हम लोग इस नती
पर नहीं आए थे कि एक ही बाघ ने दो गायों को मारा है
सम्भव है मारा हो। पहली गाय को मारने के पश्चात् य
किसी प्रकार वह वहाँ से भगा दिया गया होगा, तो उसने दूसर
गाय को मार्ग मे पाकर पेट की अग्नि शान्त करने के लि
मार डाला होगा। यह भी सम्भव था कि दूसरी गा
को किसी दूसरे बाघ ने मारा हो। मेरी राय यही थी औ
लक्ष्मीदत्त जी ने मुझे जनरल‡ मानकर मेरा आर्डर† माना।

* युद्ध सम्बन्धी सलाह सभा। ‡ जनरल = अधिपति। † आर्ड
= आज्ञा।

दो बाघों की आशंका से हम लोगों ने अपने दल को दो भागों में विभाजित किया। लक्ष्मीदत्त जी तो दूसरी गाय की लाश की ओर चले, जो सामने डॉडे पर मरी पड़ी हुई गाय से चार फर्लांग दूर गॉव की ओर थी। मैं डॉडे की ओर चला। मैंने निश्चय किया कि समय अधिक हो जाने पर लाश पर आज बैठना ठीक नहीं क्योंकि बैठने के लिए स्थान दिन में चार बजे तक बन जाना चाहिए था, जिससे बाघ को किसी बात का शक न हो।

बाघ जंगल का कूटनीतिज्ञ चाणक्य है। छोटी-सी हिलती पत्ती से, आसन बदलने से और कोई-कोई तो कहते हैं कि पलक की आवाज़ तक से बाघ अपने शत्रु को निकट समझ लेता है और फिर लाश पर नहीं आता। इस लिए बाघ को मारने के लिए झाड़ी और कांटो से जो स्थान बनाते हैं वे दिन में चार बजे तक बना लेते हैं और बनाते समय कुछ आदमियों को इधर-उधर बैठा देते हैं, जिससे बाघ यह समझे कि किसान घास काट रहे हैं; जब शिकारी छिप कर बैठ जाते हैं, तब और लोग बातें करते चले जाते हैं, जिससे बाघ समझे कि घास काटने वाले गए और भोजन निरन्तर पड़ा है। ऐसा होने पर भी बाघ एकदम शिकार पर नहीं आता। छिप-छिप कर और रुक-रुक कर चारों ओर देख-देख कर एक-एक गज़ बढ़ता है।

लक्ष्मीदत्त जी बूढ़े के साथ छोटी गाय की लाश की ओर चले। हम दोनों को गॉव में मिलना था।

मुझे एक मील के लगभग पहाड़ की चोटी पर पहुँचना था और समय तंग हो रहा था। जंगल में बाघ अपने शिकार पर ४, ५ बजे ही आ जाता है, इसलिए मैं बड़ा चौकन्ना होकर चल रहा था। पहाड़की चोटी पर डूबते हुए सूर्य की लाल किरणों

ग़ज़ब ढा रही थीं। जीवन-ज्योति इसी प्रकार अन्तिम प्रकाश करके अनन्त में लीन हो जाती है। दार्शनिक विचारो को फिर रोका और जीवन एवं मृत्यु—बाघ के शिकार का प्रश्न सम्मुख आ गया।

रात्रि के आगमन के चिह्न चारो ओर दृष्टिगोचर हो रहे थे। चिड़ियाँ झाड़ियो में चहचहा रही थीं। किसान थके माँदे घर को लौट रहे थे। बाघ का अपने शिकार पर आने का यही समय होता है। मैं चढ़ाई पर एक-एक पैर सँभाल कर रख रहा था। कहीं चुपचाप बाघ दिखाई पड़ जाय और बाघ मुझे न देख पाये, तो फिर एक बार जीवन पर बाज़ी लगा कर फ़ायर* कर दी जाय।

बाघ और शिकारी जब घात लगा कर चलते हैं तब उनकी आकृति देखने योग्य होती है। मनुष्य तो मनुष्य की श्रेणी और सद्भावनाओ और भावुक विचारों के जगत से गिर कर पशु ही हो जाता है। स्नायु खिचे हुए, पुट्ठे जकड़े हुए, ख़ूनी आँखें चारों ओर देखती हुई, कान चौकन्ने—संसार की सब बातों, बाल-बच्चो, देश और राजनीति को भूलकर—शिकारी एक विचित्र प्राणी हो जाता है।

कड़ी चढ़ाई पर मैं इसी दशा मे चला जाता था। कभी-कभी रुक कर इधर-उधर देखता भी जाता था। कि कहीं देवी के वाहन के दर्शन हो जाँय, तो मनोरथ सिद्ध हो। आधी चढ़ाई चढ़ने के उपरान्त में एक चट्टान के किनारे रुका और गृद्ध-दृष्टि से डांडे की चोटी की ओर देखने लगा। एक झाड़ी के आस-पास चिड़ियाँ कुछ विचित्र रूप से चिड़चिड़ा रही थी। उधर जो देखा तो हृदय की धड़कन एकदम बढ़ गई। सामने तीन

---

* फ़ायर करना—गोली दागना।

सौ गज पर झाड़ी के सहारे बाघ खड़ा हुआ दिग्दर्शन कर रहा था और चिड़ियाँ अपनी शक्ति-भर उस पर असन्तोष प्रकट कर रही थीं। मेरे पास रायफिल* न थी—बन्दूक़ थी। रायफ़िल न लाने की मूर्खता पर अपने को हजार बार कोसा, क्योंकि बारह नम्बर बन्दूक़ की मार इतनी दूर नहीं जाती।

बाघ थोड़ी देर उपरान्त अपने शिकार की ओर शाही ठाठ से चला। मैंने अपना मार्ग छोड़ कर, कुछ चक्कर काट कर, पहाड़ की चोटी पर पहुँचने की ठानी, जिससे कि बाघ पर बगल से, छिपकर, फ़ायर किया जा सके। बाघ मुझसे तीन सौ गज ऊपर था। वह पहाड़ के ऊपर से ही अपने शिकार की ओर जा रहा था। मैंने आगे बढ़ कर उसके रास्ते में जाना चाहा।

दोनों को एक ही स्थान पर पहुँचना था। जिस प्रकार दो गलियों से और भिन्न दिशाओं से चलकर लोग गलियों के चौराहे पर मिलते हैं और जब तक आमने-सामने नहीं आ जाते, तब तक एक दूसरे को नहीं देख सकते, ठीक इसी प्रकार मैं इस विचार से मोड़ की ओर चला कि कहीं पीछे से पचास—साठ गज़ पर बाघ दिखाई पड़े और अवसर हो तो उसे मारने की चेष्टा करूँ। यह केवल अन्दाज ही अन्दाज था। यह स्वप्न में भी विचारा न था कि अन्दाज इतना ठीक निकलेगा।

जूते को उतार कर मैं ऊपर को लपका। जूते इसलिए उतार दिए कि तनिक भी आहट न हो। जब पहाड़ की चोटी का मोड़ पचास-साठ गज रह गया, मैं धीरे-धीरे एक-एक पैर गिनकर बन्दूक की नली बगल में दबाए और हाथ बन्दूक के

---

* रायफिल = एक प्रकार की बन्दूक़ जिसकी नली में खाँचे बने होते हैं।

घोड़े पर रक्खे हुए आगे बढ़ा। ख़्याल था कि इतनी देर में बाघ मोड़ पार कर गया होगा, और मैं मोड़ पर पहुँच कर उसके मार्ग को काट कर छिप कर बैठ जाऊँगा, पर ज्योंही मैं मोड़ पर शिकारी आसन से पहुँचा, त्योंही दूसरी ओर से बाघ आगया। मैंने पहले बाघ को देखा, जंगल मे स्वतन्त्र-रूप से अभिमान के साथ, मस्त चाल से चलते हुए मैंने बाघ को इतने समीप से कभी पहले न देखा था। झुकी हुई अधखुली आँखें, श्वेत दाँतो से कुछ बाहर निकली हुई लाल जीभ और ग़ज़ब के पुट्ठे—ऐसे पुट्ठे जैसे प्रत्येक युवक के होने चाहिएँ--साक्षात् यमराज की मूर्ति मेरे सामने आगई।

हृदय की धड़कन तो कुछ सैकण्डों के लिए न मालूम कितनी तीव्र होगई। बाघ से मुझे सहसा भय नहीं लगता पर इस आकस्मिक स्वागत के लिए मैं तैयार न था। लौटने का भी समय न था। ऐसे अवसरों पर मनुष्य बुद्धि से काम नहीं ले सकता। ऐसे अवसर उसे बुद्धिहीन कर देते हैं। सोचने का भी समय तो घर और सभा-समितियों मे ही हुआ करता है। ऐसे अवसर पर मनुष्य को सहायक पशु-बुद्धि ही होती है और प्रेरक कोई विशेप शक्ति।

ज्योही बाघ की दृष्टि मुझ पर पड़ी, त्यों ही वह गर्ज कर पिछले पाँव खड़ा हो गया। बाघ मेरे इतने समीप था कि मैं बन्दूक की नाल से उसे छू सकता था पहले तो मैं काँपा और यह भान हुआ मानो हृदय, नीचे पैरों की ओर भीतर ही भीतर सरक रहा हो। यह आकस्मिक मुठभेड़ का कारण था। बाद को निराश-जन्य साहस अथवा उद्वेग ने मुझे मृत्यु का सामना करने योग्य ऐसे बना दिया, जैसे हिरन अपने बचाव

का कोई उपाय न पाकर दौड़ना छोड़ कर, मारने को उतारू हो जाता है।

मैंने समझलिया कि चाहे मैं फायर करूँ अथवा न करूँ—बाघ मुझे मार ही देगा और मेरे मरने की ख़बर स्त्री, बच्चों, घरवालों और इष्ट-मित्रों को मेरे शरीर की बची-खुची हड्डियाँ और मूक बन्दूक़ देंगी और इस जीवन का अन्त—जिसका आदर्श पवित्र देश-सेवा तथा निरीह किसानों का पथ-प्रदर्शक होना बना रक्खा था। इस प्रकार अकेले पहाड़ और पत्थरों में, जो हज़ारों वर्ष से ऐसे ही काण्ड देखते हुए हृदय-हीन होगए हैं, होगा।

उधर बाघ ने भी समझा कि यह दो पैर का प्राणी काली-काली लोहे की वस्तु लिए उसकी जान के खातिर आया है। उसके खून का प्यासा है। उस के मुंह से ग्रास छीने तो छीने पर उसकी जान का गाहक है। यह दो पैर का जीव इस प्रकार अपमान करके उसे मारने आया है; यह नहीं हो सकता। इस अपमान और धृष्टता का एक ही उत्तर था। और वह यह कि वह अपने शत्रु की हस्ती मिटादे।

इधर मैंने ख्याल किया कि यदि फायर किया तो बाघ गिरते हुए भी एक चोट करेगा और यदि वह मेरे खून को न भी पी सकेगा तो नीचे खड्ड में तो गिरा ही देगा। खड्ड में एक मील नीचे गिरने पर मेरे अन्त का पता भी कोई न देगा। इसलिए घोड़ा चढ़ाये खड़ा था कि पहले मैं आक्रमण न करूँगा। यदि बाघ मुझ पर झपटा तो फायर करूँगा और आत्म-रक्षा के लिए जो कुछ बन पड़ेगा, करूँगा। बन्दीगृह में जब दारा का सिर काटने के लिए औरंगज़ेब के भेजे हुए आदमी आए तो दारा के पास शाक काटने का चाकू था।

दारा उसी से लड़ा। तलवार के सामने उसकी कुछ न चली, पर दारा वीर की भाँति लड़ता ही रहा। प्रत्येक युवक का यही कर्त्तव्य होना चाहिए। इस कर्म-विपाक-विमर्श के लिए न तो समय ही था और न उस समय दिमाग़ ही।

एक मिनट तक हम दोनो डटे रहे। बाघ गुर्रा रहा था। उसकी आँखों से ज्वाला-सी निकल रही थी। न मैंने फ़ायर किया, न उसने आक्रमण। यह मिनट एक युग के समान था। अन्त मे बाघ एकदम मुड़कर भागा। ज्योंही वह मुड़ा, मैंने समझा कि बस मेरे ऊपर आया। बन्दूक दाग़ ही तो दी जंगल गूँज गया। गोली बाघ के पेट मे लगी। मैंने बाघ को गिरते देखा। बन्दूक़ छोड़ मैं नीचे को दौड़ा, पर गिरकर लुढ़कने लगा। जिस बात का डर था, वही हुई। खड्ड की ओर मै फ़ुटबाल की भाँति ढरकने लगा। चालीस पचास गज़ लुढ़का हूँगा कि हृदय दहलानेवाली बाघ की गरजन कान पर मालूम हुई।

मौत के अनेक बहाने होते हैं और जीवन-रक्षा के अनेक सहारे। यदि जीवन होता है तो मनुष्य पहाड़ की चोटी से गिरकर बच जाता है और मरने के लिए सीढ़ियो से गिरना काफी है। मुझे बचना था। भगवान् को यही मंजूर था कि मैं बचा रहूँ। सामने खड्ड की ओर तेजी के साथ लुढ़कने के मार्ग में एक चीड़ का वृक्ष था। होश-हवास तो था ही। आठ-दस गज़ ऊपर से पेड़ देख लिया। उसी ओर जाने के लिए हाथ-पैर पीटे और पेड़ से आकर टकराया। पीछे से बाघ के घसिटने की सरसराहट हो रही थी। पेड़ से ठोकर खाकर रुका, झटपट ऊपर चढ़ा। इतने ही में

विद्युत्गति से बाघ भी आगया। उसने उचक कर मुझ पर पञ्जा मारा। उसके पञ्जे में मेरा नैकर* आगया। नैकर फट गया और मैं ऊपर-ऊपर निकल गया। बाघ की कमर टूट गई थी इसीलिए वह पेड़ पर न चढ़ सका।

पेड़ पर ऊपर बैठ कर दम ली और चोट और खून की ओर ध्यान गया। पेड़ के नीचे बाघ पड़ा हुआ अन्तिम श्वास ले रहा था।

रात्रि के नौ बजे तक जाड़े में उस पेड़ पर टँगा रहा। लक्ष्मीदत्तजी ने आठ बजे तक प्रतीक्षा की और वह भी इसलिए कि शिकारी और भिखारी का कुछ ठिकाना नहीं कि कहाँ जा निकलें। छः बजे नहीं तो सात बजे तक मुझे पहुँचना चाहिए था। इसलिए चिन्तित होकर एक लालटेन और दो आदमियों को लेकर वे मेरी खोज में निकले और नौ बजे मुझे पेड़ पर टँगा पाया और बाघ को नीचे मरा हुआ देखा। बड़ी कठिनता से मुझे उतारा। बन्दूक़ की तलाशी प्रातःकाल के लिए छोड़ी गई। उस बूढ़े ने बाघ के न मालूम कितनी लातें मारीं और उसके बाप-दादों को गालियों से कोसा।

घर लौटकर थोड़ी-बहुत सेंक-सॉक की; गुड़ के साथ दूध पिया। गृहिणी ने उस दिन ऐसी सेवा की मानों मुझे बाघ ने घायल कर दिया हो।

---

* नैकर (या हाफ़ पैण्ट) घुटने तक लम्बी एक अँगरेज़ी पोशाक होती है, जिसे स्काउट या पुलिसमैन प्रायः पहनते हैं।

प्रश्न और अभ्यास

१—"मौत के अनेक बहाने होते हैं और जीवन-रक्षा के अनेक सहारे" इस उक्ति का समर्थन उदाहरण देकर करो।

२—वन-बीहड़-सहचरी; जीवन-संग्राम-समस्या; उदरपूर्ति; मृत्यु-बाघ; निराशा-जन्य; निरीह; कर्म-विपाक-विमर्श; इनमें समासों का विग्रह करो और उनके नाम लिखो।

३—लाश पर बैठना ठीक नहीं; समय तंग हो रहा था—इनसे क्या अर्थ समझते हो?

४—विद्युत्-गति, गृद्ध-दृष्टि, देवी-वाहन, पशु-बुद्धि का अर्थ समझा कर लिखो।

५—ग़ज़ब ढाना; दिग्दर्शन करना, शाही ठाठ से चलना, हस्ती मिटाना; हाथ पैर पीटना; दम लेना; अन्तिम श्वास लेना—इनको वाक्यों में प्रयोग करके इनका अर्थ समझाओ।

६—सँक साँक, थके-माँदे, होश-हवास—ऐसे मुहाविरेदार शब्दों का ध्यानपूर्वक अध्ययन करके उनकी एक सूची बनाओ।

७—नीचे लिखे वाक्यों का विश्लेषण करो:—

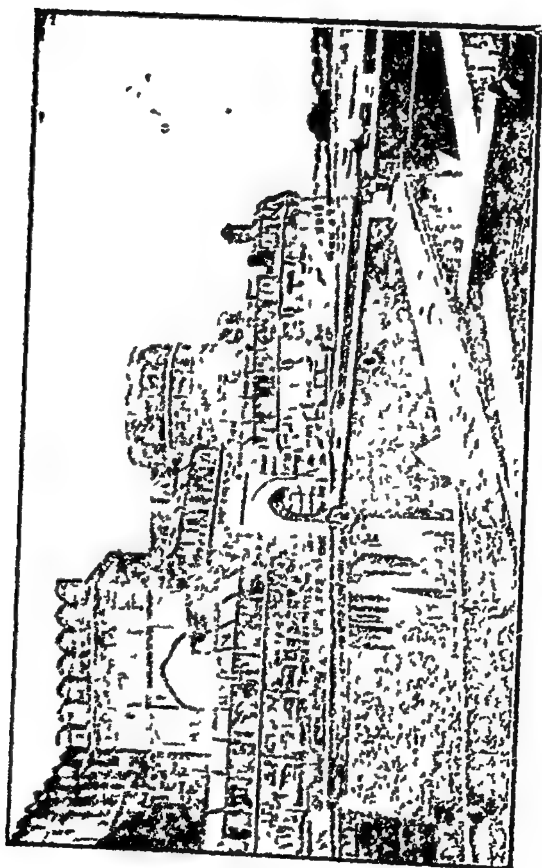
(अ) "इसलिए बाघ को मारने के लिए झाडी और काँटों के जो स्थान बनाते हैं· ··उसका भोजन निरन्तर पडा है।"

(ब) 'जिस प्रकार दो गलियों से और भिन्न दिशाओं चलकर लोग गलियों के चौराहे पर मिलते हैं·· ··तो उसे मारने की चेष्टा करूँ।

(स) "मैंने समझ लिया कि मैं फ़ायर करूँ अथवा न करूँ बाघ मुझे मार ही देगा··· ···ऐसे ही काण्ड देखते हुए हृदय-हीन हो गए हैं, होगा।"

४१—आगरे का क़िला

(लेखक—श्री पीताम्बर झा)



आगरे का क़िला

मुगल सम्राट् का दुर्ग मिटी स्टेशन से एक मील से भी कम दूरी पर है। दुर्ग के विषय में बहुत-सी बातें मैं अपनी पाठ्य-पुस्तकों में

पढ़ चुका था, इसलिए निकट रहने के कारण पहले आगरा-दुर्ग ही देखना स्थिर किया।

शहर से बाहर निकलते ही मेरी दृष्टि यमुना पुलिन पर स्थित गगन-स्पर्शी उस विशाल दुर्ग-प्राचीर पर पड़ी। निर्निमेष नयनो से उत्सुकतापूर्वक उस ओर देखता रहा। सहसा ताँगा दुर्ग-अञ्चल मे यमुना किनारे सड़क पर पहुँच गया। मुग़ल सम्राट् अकबर के उस अनुपम दुर्ग को आज भी अच्छी अवस्था में देख कर मुझे कम आश्चर्य नहीं हुआ। सदियों से शीत, ताप, वर्षा और वायु का संघर्ष सहते रहने पर भी वह उसी रूप मे खड़ा है। भूकम्प के धक्के सह कर भी विचलित नहीं हुआ है। इसी से उसकी मजबूती का पता लग सकता है।

दुर्ग की मजबूत दीवारें अब भी उसी रूपी मे खड़ी हैं। प्रवेश-द्वार पर दर्शकों की भीड़ लगी हुई थी। कुछ गौरांग-प्रहरी अस्त्र-शस्त्र से लैस प्रवेश-द्वार पर खड़े थे। प्रवेश-टिकट लेकर भीतर जाना पड़ता था। मैं भी एक टिकट खरीद कर भीतर चला और प्रहरी को टिकट दिखा कर आगे बढ़ा।

प्रवेश-द्वार

दुर्ग के प्रवेश द्वार पर काठ और लोहे के बने हुए बड़े ही विशाल और मज़बूत फाटक लग हुए हैं। उनकी मजबूती का इसी से पता लग जाता है कि सदियों का बना हुआ फाटक आज भी उसी रूप मे रक्षा-कार्य कर रहा है। कजली-युक्त उसकी विशाल भीम काया देखते ही प्राचीनता का आभास देने लगती है। द्वार से भीतर जाने के लिए तिरछा सुरंग-सा मार्ग है। प्राचीर की चौड़ाई इतनी अधिक है कि प्रवेशद्वार से भीतर घुसने मे कई सैकिण्ड लग जाते हैं। उसकी इतनी अधिक चौड़ाई उसकी मजबूती को बढ़ा रही है।

भीतर प्रवेश करते ही एक विशाल प्रांगण मिलता है, जिसके मध्य दो एक नीम के वृक्ष देख पड़ते हैं। इसी प्रांगण के पार्श्व भाग में कैदियों के कत्ल करने का तहखाना और मुग़ल सम्राट शाहजहाँ का वह वन्दी-गृह है, जिसमे उसे उसके सपूत औरंगजेब ने बन्द करके शाही सिंहासन पर अपना अधिकार जमाया था। आज वह वन्दी-गृह और भी भयावह रूप धारण कर भूतप्रेतो का क्रीड़ा-सदन बना हुआ है। उस ओर पाँव रखते भी भय मालूम होता है। उसके आस-पास और भी कितने ही भवन बने हुए हैं, जिनमे सैकड़ों परिवार सुख और शान्तिपूर्वक अपना समय बिता सकते हैं। उनकी विशालता और भव्यता देखते ही बनती है, किन्तु वे सबके सब खाली रह कर अपनी भव्यता को भयानकता मे परिणित कर रहे हैं। जहाँ कभी वैभव की गंगा लहरें मारती थीं आज वहाँ सूनी-विहूनी श्मशान-भूमि की भयंकरता उदासी के अञ्चल मे छिपी लोटती है।

शाही महल

इस प्रांगण को पार कर शाही महलों की ओर जाने की इच्छा हुई। शाही महल शाहंशाह के सब महलो से सुन्दर बना हुआ है। जिसके पार्श्व में बेगमो का रनिवास, दरबारे खास और शृङ्गार भवनादि बने हुए हैं। यद्यपि उसकी श्री नष्ट हो गई, फिर भी उसकी अलौकिकता की आभा दर्शकों की आँखों के आगे अपना रूप खड़ा कर ही देती है। शाहजहाँ के खास महल को दरीचियों से उसकी प्रियतमा मुमताज़ बेगम का वह समाधि-मन्दिर (ताज-महल) अपनी अपूर्व शोभा पसारता हुआ यमुना पर सगर्व सिर उठाए खड़ा दीखता है। रनिवास में कुछ ऐसे पत्थरों की ईंटे देखने को मिलीं जो सूर्य के प्रकाश और लैम्प की रोशनी को भी अपने बीच से पार कर देती हैं, अर्थात वे पारदर्शक हैं।

मोती मसजिद

शाही महल के पार्श्व में शाहजहाँ की बनवाई हुई मोती मसजिद है। उसके भीतर जाकर उसकी अनुपम शोभा देखी। समूची मसजिद कीमती संगमरमर की बनी हुई है, उसकी अभिनवता दर्शकों की आँखों पर जादू का जाल पसार देती है। इतनी पुरानी मसजिद बिलकुल नई जैसी मालूम होती है। उसकी मजबूती देखते ही बनती है। सब कुछ होते हुए भी अपने लूटे हुए वैभव के अभाव में वह सिसकती-सी मालूम हुई। आज भी उसकी सफाई उसी के अनुकूल है, दो एक मौलवी उसकी देख-रेख को अब भी रहते हैं। वे उसकी सफाई और पवित्रता का पूर्ण ध्यान रखते हैं। दर्शकों से उसकी विशेषता का वर्णन करते हैं। सूर्य की किरणें मसजिद की अमल-धवल काया पर खूब फबती थीं। उसके आकर्षक रूप को देख कर वहाँ से लौटने की इच्छा ही नहीं होती थी।

दरबारे आम

जहाँ मुग़ल सम्राट् अपने मन्त्रियों के साथ बैठ कर शासन-सम्बन्धी कार्यों के विचार-विनियम मे लगे रहते थे, उसको दरबारे आम कहते हैं। प्रजा का भाग्य निर्णय वहाँ होता था, वहाँ पर किए विचारानुसार कोई रंक से राजा और कोई राजा से रंक बनाया जाता था। संगमरमर के नक्काशीदार खम्भों पर यह विशाल दरबारे आम बना हुआ है। सम्राट् के बैठने के लिए मञ्च बना हुआ है, जिस पर सोने का तख्त ताऊस (मयूर सिंहासन) सजा रहता था। अब तो उसका आभास भी नहीं दिखाई पड़ता, परन्तु अब भी जिस रूप मे वह खड़ा है उसी से उसके अतीत गौरव का अनुमान किया जा सकता है।

उस पर की हुई नक्काशी से भारतीय शिल्प-कला-विशारदों की शिल्पकला का पता लगता है। दरबारे आम का फ़र्श भी चिकने संगमरमर के चौखूटे खण्डों से जुड़ा हुआ है। हज़ारों मनुष्यों का बैठने का स्थान है। वर्त्तमान एसेम्बली भवन जैसे बन्द घर में उस समय दरबारे आम नहीं होता था। उसके चारों ओर खुला स्थान था, यद्यपि दुर्ग के भीतर रहने से वह भी सुरक्षित था। किन्तु मेरे विचार से आज कल जिस रूप में शासन-सभा बैठती है वही ठीक और विशेष सुन्दर है।

अन्यान्य भवन

दुर्ग के भीतर और भी कितने ही विशाल भवन बने हुए हैं। आधे दुर्ग में सरकारी सैनिक रहते हैं, इसलिए उस ओर जाने की आज्ञा नहीं मिली। कुछ भवन भग्नावस्था में पड़े हुए देखे गए जिनकी मरम्मत सरकार की ओर से होती दिखाई पड़ी। दुर्ग के भीतर के भवनों की संख्या और दुर्ग के विस्तार को देखने से पता लगा कि यदि कई छोटे-बड़े गाँवों को दुर्ग के भीतर रख दिया जाय, तो भी स्थान खाली रह सकता है। दुर्ग के भीतर ही राज-प्रासाद, रनिवास, गुप्त परामर्श भवन (दरबारे ख़ास), प्रधान विचारालय, सैनिकों की छावनी, मसजिद, सामन्तों के निवास मन्दिर, जेलखाना, फाँसीगृह, अस्तबल, पीलख़ाना, खेलकूद का मैदान, और विविध प्रकार के आमोद-प्रमोद के भवन बने हुए हैं। दुर्ग इतनी ऊँची भूमि पर बना हुआ है कि वहाँ के भवनों के भीतर से चारों ओर मीलों तक की चीजें दिखाई पड़ती हैं। प्राचीर के कंगूरों पर भीमकाय तोपें रखी रहती थीं। जो समय पड़ने पर शत्रुओं की अपार सेना को कभी अग्नि उगल कर भस्म कर देती थीं। यद्यपि इस वैज्ञानिक युग में दुर्ग के भीतर कोई सुरक्षित नहीं

दुर्ग प्राचीर

रह सकता, वायुयान के आविष्कार ने उसकी महत्ता को भी नष्ट कर दिया है, पर उस युग में दुर्ग ही शत्रुओं से बचने के लिए राजाओं की विशेषरक्षा के साधन थे। दुर्ग के पूर्व मे कज्जल जल प्रवाहिनी कालिन्दी की अथाह जल धारा प्रवाहित होती थी और उसके कलित कूल पर विशाल दुर्ग अपनी अभिनव छटा पसार रहा था। लेकिन उसकी यह अतीत गौरव-गाथा पुस्तकों में पढ़ने को ही रह गई। अब यमुना सूखी सिक्ताओ को अपनी विशाल छाती पर पसारे पड़ी है, उसकी क्षीणधारा टेढ़ी-मेढ़ी रेखा-सी उसके बीच लिपटी हुई दिखाती है। अब न वह समय है और न वह समाँ है।

इन सब दर्शनीय भवनो का निरीक्षण कर लेने के बाद दुर्ग प्राचीर की बनावट देखने गया। दुर्ग के चारो ओर किनारे पर कई बुर्ज बने हुए हैं, जिन पर बैठ कर इधर-उधर का दृश्य देखा जा सकता है। दुर्ग का बाहरी प्राचीर मजबूत पत्थर की चट्टानों का बना हुआ मालूम होती है। उसकी जुड़ाई मजबूत मसाले से की गई है, तभी तो सदियो से वह उसी रूप में खड़ी है। प्राचीर के पत्थर खण्ड लाल मालूम होते थे, इसका मुझे पता नहीं लगा कि यथार्थ में वे उसी रंग के पत्थर थे या उन पर कोई रंग चढ़ाया गया था। मेरे विचार से दिल्ली के लाल किले से भी यह अधिक मजबूत मालूम होता है।

दुर्ग की परिखा

पूर्व के दुर्ग की ओर यमुना की अगाध धारा प्राचीर से लग कर प्रवाहित होती थी, किन्तु अब उसका वह रूप नहीं है। प्राचीर से लग कर सड़क बनी हुई है और तीन ओर प्राचीर के पार्श्व में अगाध खाई है। उस समय यमुना से नहर द्वारा

खाइयाँ भर दी जाती होगी। यद्यपि खाई किनारे की मिट्टी के गिरने से अधिक छिछली हो गई है, परन्तु उस समय जब दुर्ग अपने असली रूप मे रहा होगा, इसकी भयावहता भी देखते ही बनती रही होगी। खाई मे जल भरा रहने से दुर्ग के भीतर प्रवेश करना असम्भव रहा होगा—परिखा मे अथाह जल और उसके किनारे गगन-स्पर्शी प्राचीर। आजकल परिखा भी सूखी पड़ी रहती है। हाँ वर्षा के समय यमुना की बढ़ती हुई बाढ़ से भले ही वह जल पूर्ण हो जाती हो। दुर्ग के दक्षिण और पश्चिम की ओर अनेको बड़े-बड़े वृक्ष दिखाई पड़ते हैं। आगरा नगर वहाँ से कुछ दूर है। शहर से बाहर रहने पर भी नित्य ही दर्शकों की भीड़ दुर्ग-द्वार पर लगी रहती है। यदि प्रत्येक खण्ड का अध्ययनपूर्वक निरीक्षण किया जाय तो दुर्ग के भीतर के पदार्थों के देखने मे कई दिन लग जाएँ। सुना जाता है कि इस दुर्ग की बहुत-सी चीजें उठ कर दिल्ली के लाल किले मे पहुँचा दी गई थी।

शाही महलों की शिल्प कलाएँ

शाही इमारतों के भीतर की कारीगरी देखने से आश्चर्य-चकित हो जाना पडता है। पत्थर पर बेल बूटे और फूल पत्तियों की बनावट देख कर आज भी दर्शकों की आँखें धोखा खा जाती हैं। भ्रम हो जाता है कि असली फूल पत्तियाँ तो नहीं हैं। हाथ मे छूकर बहुतों को भ्रम निवारण करते देखा। संगमरमर की जालीदार दरीचियाँ देख कर आश्चर्य होने लगता है। उसकी चित्रकारी देख कर गर्व होता है, उस समय के भारतीय शिल्पकला-विशारदों की कला पर।

इस तरह आगरा दुर्ग के बाहर-भीतर के दर्शनीय दृश्यों को भली भाँति देख कर, मैं ताजमहल को देखने का विचार करते हुए आगे बढ़ा और दुर्ग से बाहर आया।

प्रश्न और अभ्यास

१—प्रवेश-द्वार के निकटवर्ती भवनों का वर्णन करो।

२—शाही महल की विशेषता अपने शब्दों मे लिखो।

३—मोती मसजिद किस प्रकार दर्शकों की आंखों पर जादू का जाल पसार देती है ?

४—आजकल के एसेम्बली भवन तथा मुग़ल काल के दरबारे आम में क्या भेद है।

५—दुर्ग के भवनों की शिल्प-कला पर एक छोटा-सा लेख अपने शब्दों में लिखो।

६—अन्यान्य; भग्नावस्था; विचारालय; भीमकाय; गौरव-गाथा में समास बताओ।

७—इस पाठ के आधार पर एक लेख लिखो जिसमें किसी भव्य-भवन का वर्णन हो।

४२—ये गजरे तारों वाले

(लेखक—श्रीरामकुमार वर्मा, एम० ए०)

[श्रीरामकुमार वर्मा हिन्दी के एक होनहार कवि हैं। आप मध्य-प्रान्त के रहनेवाले हैं और इस समय प्रयाग विश्व-विद्यालय मे हिन्दी के अध्यापक हैं। आपकी कविता श्री सुमित्रानन्दन पन्त आदि की तरह बिल्कुल नई शैली की नहीं होती बल्कि पं० अयोध्यासिंह आदि की शैली में ही आपने विषय आदि की दृष्टि से कुछ नवीनता लाने का उद्योग किया है। आपकी कल्पनाएँ बहुत ही आकर्षक होती हैं। यह सुन्दर कविता आपके 'अञ्जलि' शीर्षक संग्रह से ली गई है और आपकी सर्वोत्कृष्ट रचनाओं में से एक है।]

इस सोते संसार के बीच,
जग कर, सज कर, रजनी वाले !
कहाँ बेचने ले जाते हो,
ये गजरे तारों वाले ?
मोल करेगा कौन,
सो रही हैं उत्सुक आँखें सारी ?
मत कुम्हलाने दो,
सूने-पन में अपनी निधियाँ न्यारी।
निर्झर के निर्मल जल में,
ये गजरे हिला-हिला धोना।
लहर हहर कर यदि चूमे तो,
किंचित विचलित मत होना।
होने दो प्रतिबिम्ब विचुम्बित,
लहरों ही में लहराना।
'लो मेरे तारों के गजरे',
निर्झर-स्वर में यह गाना।
यदि प्रभात तक कोई आकर,
तुम से हाय, न मोल करे।
तो फूलों पर ओस-रूप में,
बिखरा देना सब गजरे।

प्रश्न और अभ्यास

१—जिस दृश्य का कवि ने वर्णन किया है उसको अपने शब्दों में संक्षेप में लिखो।

२—"रात्रि" के सम्बन्ध में यहाँ क्या कल्पना की गई है ?

३—"निर्झर के निर्मल जल में" आदि पक्तियों का क्या भाव है ?

४—रजनी, उत्सुक, निधि, न्यारी, विचलित, प्रतिबिम्ब, स्वर—इनका अर्थ लिखो।

५—विचलित, प्रतिबिम्ब—विचुम्बित; निर्झर-स्वर; ओस-रूप—इनमें समासों का विग्रह करो और उनके नाम लिखो।

४३—पञ्जाब-केशरी महाराजा रणजीतसिंह

जन्म और शैशव

सन् १७८० ई० की दूसरी नवम्बर को झींद के महाराजा जगपतिसिंह की पुत्री राजकुंवरि को हमारे चरित्रनायक के प्रसव करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। आपके पिता महासिंह अधिकतर लड़ाइयो में ही लगे रहा करते थे। इस कारण बालक रणजीत को शैशवावस्था से ही उनके साथ रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। युद्ध-विद्या-विशारद होने का यही कारण है। एक बार उनके पिता मञ्चर पर आक्रमण कर रहे थे। घमासान युद्ध हो रहा था कि शत्रु-पक्ष में से एक व्यक्ति, जिसका नाम हशमतखाँ था, निकल कर रणजीतसिंह के हाथी पर चढ़ आया। तलवार खींच कर वह बालक को मारने ही को था कि एक वीर सिख ने उसका शिर धड़ से जुदा कर दिया। बालक की प्राण-रक्षा होगई। यदि हशमतखाँ अपने

उद्योग में कृतकार्य हो जाता तो न मालूम भारतवर्ष का मान-चित्र आज किस प्रकार का होता। चेचक रोग में उनकी एक आँख जाती रही थी। इसी कारण कुछ लोग उन्हें काणा रणजीत भी कहा करते थे।

शासनाधिकार

पिता के स्वर्गवासी होने पर सन् १७६२ ई० में बारह वर्ष की अवस्था में राज्य की बागडोर महाराजा रणजीतसिंह के हाथ में आई। ऐसी अवस्था में, जब कि बालक प्रायः हौओं से डर जाया करते हैं, रणजीतसिंह कुशलता-पूर्वक राज्य-विस्तार करने लगे।

गुरु गोविन्दसिंह अपने तपोबल से सिक्खों में अदम्य उत्साह उत्पन्न कर गए थे। धार्मिक-शिक्षा के प्रभाव के कारण वे इतने निडर हो गए कि मुग़लों की शक्ति और संख्या से परिचित होने पर भी उनके राज्य में हस्तक्षेप किया करते थे। इस उत्साह को उपयोग में लाने का महाराजा रणजीतसिंह उपाय सोचने लगे। ऐश्वर्य-युक्त और रण-कुशल सिक्ख जाति को एक राष्ट्र में परिवर्तित करने के लिए महाराजा रणजीतसिंह ने अथक उद्योग किया, अनेक कठिनाइयों का सामना किया और अन्त में सफल हुए।

राज्य-प्रबन्ध

महाराजा रणजीतसिंह राज्य-प्रबन्ध करने में बड़े कुशल थे। सिक्खों को उन्होंने युद्ध-विद्या में पारंगत बना दिया था। उनके पास पहले तो घुड़-सवार सेना ही अधिक थी। उस समय घुड़-सवार सेना ही अधिक उपयोगी समझी जाती थी, किन्तु पीछे में उन्होंने पदातिक सेना भी यथेष्ट संख्या में भरती कर ली थी। उनकी सेना में फराँसीसी और इटैलियन पदाधिकारी

भी नियुक्त थे। जनरल बैन्टूर और एलार को अपनी सेना में शिक्षा देने के लिए नियुक्त कर दिया था। बैन्टूर इटली का रहनेवाला था। इस वीर ने अपने युद्ध-कौशल के कारण ही बड़ी ख्याति प्राप्त की थी। नेपोलियन के साथ स्पेन और इटली की चढ़ाई में भी यह रहा था। एलार भी नैपोलियन का एक जनरल था, परन्तु जब नैपोलिन के भाग्य ने पलटा खाया, विजय-लक्ष्मी ने उसके प्रति उदासीनता दिखलाई तभी इन लोगों को नैपोलिन की नौकरी से हाथ धोने पड़े। वहाँ से निराश होकर ये लोग फ़ारिस और मिश्र होते हुए भारतवर्ष में आये और महाराजा रणजीतसिंह की सेना मे नियुक्त हो गए। इन्होंने अपना कार्य भली प्रकार सम्पादन किया और सदैव रणजीतसिंह को अपनी कार्य-कुशलता से प्रसन्न रक्खा।

महाराजा रणजीतसिह का मनुष्य की प्रकृति पहिचान लेने का बड़ा अनुभव था। मनुष्य का मुख देख कर ही वे ताड़ जाते थे कि यह किस ढंग का है। उनके नियत किये पदाधिकारियों ने कभी विरोधी-भाव धारण नहीं किया। अपने समय के सबसे बड़े राजनीतिज्ञ थे। उनका स्वभाव बड़ा दयापूर्ण था। अपराध करने पर पदाधिकारियों को पदच्युत तो कर देते थे, किन्तु अन्य किसी प्रकार का दण्ड नहीं देते थे। पराजित शत्रुओं पर भी दयाभाव रखते थे। कभी उनके साथ कठोर वर्ताव नहीं करते थे। जिन सरदारों की रियासतें उन्होंने छीनी थी, उनको भी अच्छे-अच्छे पदों पर नियुक्त कर दिया था। मुसलमान सरदारों और नवाबों के साथ भी उनका वर्ताव बड़ा प्रीति-पूर्ण था। मुल्तान के नवाब उनके परम मित्र थे।

शौर्य और प्रताप

अब यह देख कर आश्चर्य है कि भारतवर्ष में फ्रांस



पंजाब-केशरी महाराजा रणजीतसिंहजी

वालों का अधिकार तीन या चार छोटी-छोटी जगहों पर है। किन्तु उस समय यह बात न थी। नैपोलियन का डर हर एक राष्ट्र को लगा हुआ था। अँगरेज़ लोग भी इस चिन्ता से विमुक्त नहीं थे। फारिस पर अधिकार कर भारत को फ्रांस का एक उपनिवेश बना लेने की नैपोलियन की आकांक्षा को वे सदैव भयभीत होकर सुना करते थे इसलिए उन्होंने मैटकाफ साहब को रणजीतसिंह से सन्धि करने के लिए भेजा था। रणजीतसिंह ने उत्तर दिया—"मैं सन्धि करने के लिए उद्यत हूँ, किन्तु शर्त यह है कि सतलज की उत्तरी और दक्षिणी सभी रियासतों पर मेरा आधिपत्य स्वीकृत हो।" अँगरेज़ इस बात से सन्तुष्ट नहीं हुए, इसलिए उस समय सन्धि न हो सकी। कुछ समय के पश्चात् अँगरेज़ों को फराँसीसियों का डर जाता रहा। पीछे से सन् १८०६ ई० की २५ वीं अप्रैल को महाराजा रणजीतसिंह और अँगरेज़ों में सन्धि हो गई जिसमें सतलज नदी रणजीतसिंह के राज्य की दक्षिणी सीमा स्वीकृत हुई।

अनेक आक्रमण करने के पश्चात् सन् १८१८ में मुल्तान उनके अधिकार में आगया। सन् १८१९ ई० में उसने काश्मीर को विजय कर अपने राज्य में मिला लिया। पेशावर के लिए भी उन्हें कई युद्ध करने पड़े। अन्त में सन् १८२३ ई० में पेशावर से भी उन्हें कर मिलने लगा। सन् १८३३ ई० में पेशावर और डेराजात शाहशुजा ने रणजीतसिंह को दे दिए।

रोग और मृत्यु

वृद्धावस्था में एक बार महाराजा रणजीतसिंह को लकवा मार गया था। फकीर अज़ीज़ुद्दीन, जो इनके हकीम थे, उनकी औषधि किया करते थे। गवर्नर जनरल आकलैण्ड ने भी अपने

यहाँ के एक डाक्टर को भेजा, परन्तु उन्होंने उसका इलाज करना उचित न समझा। उस समय अँगरेज अफगानिस्तान पर चढ़ाई करने की तैयारी कर रहे थे, अतएव रणजीतसिंह से मिलने के लिए लार्ड आकलैण्ड स्वयं लाहौर पधारे थे। जब महाराजा रणजीतसिंह ने देखा कि रोग असाध्य है और जीवन के दिन अधिक नहीं हैं तो उन्होंने खारकसिंह को अपना उत्तराधिकारी बनाकर ध्यानसिंह को उनका कोषाध्यक्ष बनाया। पचीस लाख रुपये नानकाना के अनाथ निर्धनों को दान किए। और भी अनेक प्रकार के दान-पुण्य किये। मृत्यु की घड़ी समीप आई और यह पुरुष रत्न, अद्वितीय राजनीतिज्ञ, वीरशिरोमणि जिसको कि अँगरेज पंजाब-केशरी कहा करते थे, २७ जून सन् १८३६ ई० के दिन इस असार संसार से सदा के लिए विदा हो गया।



प्रश्न और अभ्यास

१—रणजीतसिंह का बाल्य-काल किस प्रकार व्यतीत हुआ ?

२—रणजीतसिंह ने कौन-कौन-से सुधार किए ?

३—रणजीतसिंह का चरित्र-चित्रण अपने शब्दों में करो।

४—शैशवावस्था; तपोबल; युद्ध-कौशल; पद-च्युत; अद्वितीय; राजनीतिज्ञ—में विग्रहसहित समास बतलाओ।



४४—भारत नारद सम्मिलन

[रीवाँ राज्य में नईगढ़ी के जागीरदार ठाकुर गोपालशरणसिंह हिन्दी के बड़े प्रेमी हैं। आप स्वयं ही खड़ी बोली में सुन्दर रचना करते हैं। आपकी कविताओं का संग्रह 'माधवी' नाम से प्रकाशित हुआ है। प्रस्तुत कविता इसी संग्रह से ली गई है। इस कविता में कवि ने भारत और नारद की कल्पित बात-चीत द्वारा भारत की वर्तमान दशा का चित्र खींचा है तथा उसके प्राचीन गौरव की याद दिलाई है।]

निज प्रिय पुत्र भी न देते हैं हमारा साथ,
कहो, हम जग में भरोसा करें किनका?
है समाज का न ध्यान, देश दशा का न ज्ञान,
आन है न इनको, बुरा है हाल इनका।
कैसे ये हटायेंगे हमारा दुख-भार भला,
उठता न आज इनसे है एक तिनका।
भगवान् कैसे भला उनका करेंगे कभी,
भाई के रुधिर से रंगा है हाथ जिनका?

भोग चुके भारत-निवासी हैं विशेष क्लेश,
तो भी देश का वे कभी ध्यान हैं न धरते।
जन्म इस युग में लिया है किन्तु कुछ लोग,
दसवीं सदी में हैं निवास सदा करते।
पले हमीं से हैं सदैव पर कुछ लोग,
दम हरदम ही अन्य देशों का भरते।
सुत हैं हमारे पर जीते न हमारे लिए,
और न हमारे लिए वे कदापि मरते।

घर की कलह का न तार कभी टूटता है,
फिर किस भाँति सुख-शान्ति रहे धाम में?

हम क्या बतावें जरा जाकर तुम्हीं मुनीश !
देखो लोग कैसे रहते हैं यहाँ ग्राम मे ?
कैसे उस देश की भलाई हो जहाँ सदैव,
देती दिखलाई है ढिलाई सब काम में ?
होते हैं अनेक नित्य हिन्दू-धर्म में अधर्म,
है यहाँ न सच्चा धर्म-भाव इसलाम में ॥

देख कर हिन्दुओं की विविध कुरीतियों को,
जान तुम सकते हो हमारी दशा आज की।
दूध-मुहें बच्चों का विवाह यहाँ होता नित्य,
हालत बुरी है इस पतित समाज की।
बाल विधवाओं का न हाल कुछ पूछो मित्र,
वह है हमारे लिए बात बड़ी लाज की।
अपने सगे भी हैं अछूत कहलाने लगे,
आई है विनाश-घड़ी जाति के जहाज की ॥

शोचनीय हालत हमारी पुत्रियों की सदा,
उर में हमारे और शोक उपजाती है।
जनती नहीं है अब जननी सपूत यहाँ,
गृह में कभी न गृह-देवी मान पाती हैं।
जाल में फँसी मलीन मीन के समान दीन,
नारियों को देख आँख भर-भर आती है।
यदि अबलाओं की सुधरती नहीं है दशा,
लाज ही समाज की हमारे अब जाती है ॥

क्या-क्या बतलावें हम देख लो तुम्हीं मुनीश !
काल ने हमारा हाल कैसा कर डाला है।
देखकर हीनता अभागी-निज सन्तति की,
जलती हमारे उर में कराल ज्वाला है।

क्या करें किसी प्रकार मिटता कसाला नहीं,
कर दिया शोक ने हमारा गात काला है।
ऐसो घनघोर घटा छाई है विपत्तियों की,
दीखता मुझे न किसी ओर भी उजाला है॥

सुनो मुनिपुङ्गव ! हमारा यह कंठ कीर,
रटता सदैव राम-सीता राम-सीता है।
मुरली-मनोहर को भूलें हम कैसे कभी,
दी हमें जिन्होंने यह ग्रन्थ-रत्न गीता है।
दिन-रात प्यार से उन्हीं को याद कर,
हृदय हमारा दिव्य प्रीत-सुधा पीता है।
जीवित उन्हीं की कल-कीर्ति रखने के लिए,
परम अभागा यह देश अभी जीता है।

हैं कहाँ प्रसिद्ध रण-धीर वरवीर भीष्म,
उर में हमारे अब भी है मान जिनका ?
शूरों के शिरोमणि कहाँ हैं धनुर्धारी पार्थ,
करते सभी हैं दिव्य-गुण-गान जिनका ?
मुनिदेव ! हैं कहाँ हमारे शिवराज आज,
हमको सदैव रहता है ध्यान जिनका ?
किस शुभ लोक में प्रताप हैं प्रतापवान,
हमको सदा है बड़ा अभिमान जिनका ?

कई सदियों तक रमा ने किया वास यहाँ,
अब क्या उन्होंने सर्वथा हमें भुलाया है।
रूठ कर हमसे चलीं वे जब गईं,
तब से ज़रा भी सुख हमने न पाया है।
भूल गई भारती भी भाग्य-हीन भारत को,
उसके बिना ही यह अन्धकार छाया है।

क्या रहा हमारे पास हमने गमाया सब,
रह गई काया और केवल मद-माया है ॥

सुनकर भारत के मुख से व्यथा की कथा,
अतिशय शोक हुआ नारद के मन में।
बोले प्रेम-पूर्वक वे "मत घबराओ मित्र,
आयेगा नया बल तुम्हारे कृशतन में।

होगी पूर्व जैसी फिर उन्नति तुम्हारी शीघ्र,
विद्या, बुद्धि, पौरुष में, जीवन में, धन मे।"
देकर प्रबोधन सभी प्रकार भारत को,
दूसरे दिवाकर-से वे गये गगन मे ॥

प्रश्न और अभ्यास

१—अमुक पुरुष नारद है, इसका क्या अर्थ हो गया है ?

२—पहला छन्द किसके शब्द हैं और किसके कहे गए हैं ?

३—'जीते भी मरे हैं और जीवित हैं मर के' इसका भाव स्पष्ट करो।

४—भारत ने नारद से जो अपनी दशा का वर्णन किया हैं, उसे संक्षेप में गद्य में लिखो।

५—'मुरली मनोहर को भूलें हम कैसे कभी' इस पंक्ति में किसकी ओर सन्केत है ?

६—नीचे लिखे शब्दों के विग्रह सहित समास बताओ:—
देश-दशा, भारत-निवासी, हिन्दू-धर्म, सुखशान्ति।

७—अन्तिम छन्द का वाक्य-विग्रह करो।